काल

पानी

सारडा पुस्तकालय
(संजीवनी वा. क. केन्द्र)
क्रमांक 361

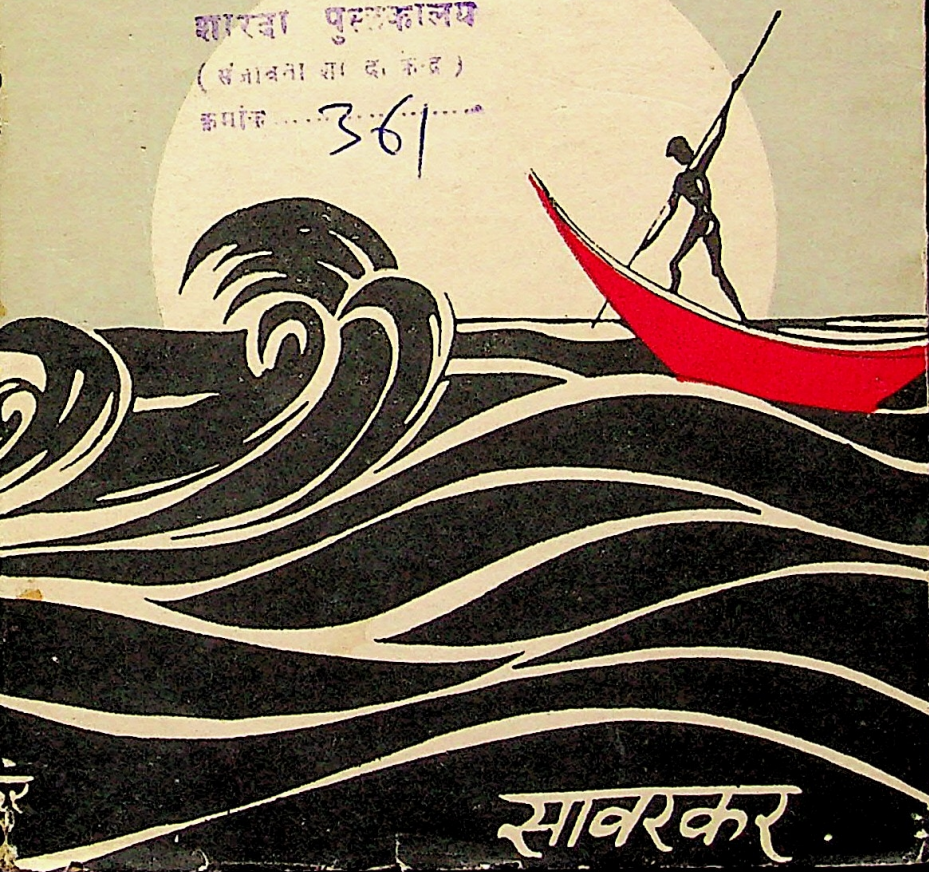

सावरकर

शारदा पुस्तकालय
(संजीवनी शा. द. केंद्र)
क्रमांक 361

भारत-पेपर बैंक संस्थान
मुंबई

काला पानी

सावरकर

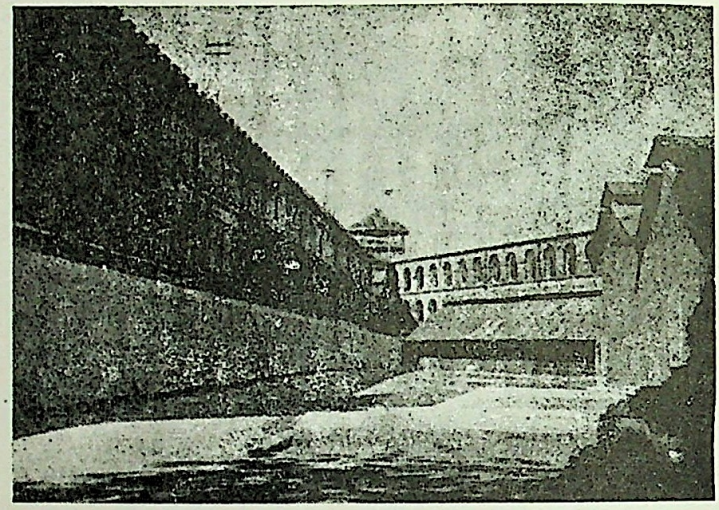

एक आजन्म कारावासी क्रान्तिकारी द्वारा अण्डमान के बन्दी जीवन के कुछ रहस्यमय पहलुओं का उपन्यास के रूप में स्वयं ही प्रस्तुतीकरण ।

काला पानी

(उपन्यास)

PUSTAKALYA AVEM VACHNALAYA
VISHAG, J&K Sahayata Simiti.
Acc no. 1323

विनायक दामोदर सावरकर
गोमान्तक-मोपला उपन्यासों एवं अन्य अनेक क्रान्तिकारी
ग्रंथों के रचयिता

हस्ती-पेपर बैक संस्करण
मूल्य रु० -20-00

राजधानी ग्रन्थागार, नई दिल्ली

मूल्य : चालीस रूपये (४०-००) संस्करण १९८८

स्वातन्त्र्यवीर सावरकर की जन्म-शताब्दी के अवसर
पर हिन्दी में सावरकर साहित्य का ग्यारहवाँ पुष्प

© शां० शि० सावरकर (बाल सावरकर)

अनुवादक : दत्तात्रेय तिवारी (उपाख्य : सतीश विद्यालंकार)

प्रकाशक : रामतीर्थ भाटिया (संचालक)
राजधानी ग्रन्थागार
59/H-IV, लाजपत नगर, नई दिल्ली-110024

मुद्रक : कुमार आफसेट प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली-110032

KALA PANI (Hindi Fiction) By V. D. Savarkar

प्रकाशकीय

'काला पानी' वीर सावरकर जी की अनुपम रचना है, उनका जीवन संघर्ष-पूर्ण रहा है एवं उनका अद्वितीय बलिदान एवं साहस भी जग-जाहिर है। यह हमारा सौभाग्य है जो हमारे द्वारा ही हिन्दी में उनके अधिकांश साहित्य का प्रकाशन हुआ है। इस वर्ष 1983-84 में उस महापुरुष एवं क्रान्तिद्रष्टा की जन्म-शताब्दी मनाई जा रही है। इसी अवसर पर सावरकर साहित्य का यह नवीन पुष्प पाठकों को समर्पित है।

अण्डमान के बन्दी जीवन की द्वन्द्वात्मक पार्श्वभूमिकाएँ कैसी विचित्र हैं। द्वीप में जेल तो जेल किन्तु जेल के बाहर का भी एक विचित्र संसार है, इन्हीं रोमांचकारी घटनाओं को रोचक शैली में प्रस्तुत किया गया है। वास्तव में सावरकरजी के बन्दी-जीवन की पूरी कहानी—"माझी जन्म ठेप" (मूल मराठी) में सरकार ने जप्त कर ली थी, किन्तु एक क्रान्तिकारी ने प्रत्युत्तर में कुछ करना है उसी सन्दर्भ में जेल-जीवन एवं अण्डमान द्वीप के जन-जीवन का चित्रण उन्होंने उपन्यास के रूप में प्रस्तुत किया है।

इससे पूर्व हम दो पुस्तकों में पाठकों को बता चुके हैं कि वीर सावरकर संसार के पहले ऐसे क्रान्तिकारी लेखक हैं जिनकी सबसे अधिक रचनाएँ किसी विदेशी सत्ता ने मानो—साम्राज्यवाद का प्रतिद्वन्द्वी मानकर जप्त की हैं। उनका यह उपन्यास भी गोमान्तक के समान एक निकट अतीत का ऐतिहासिक उपन्यास है। हिन्दी में यह कृति पहली बार संपूर्णरूप में प्रस्तुत की जा रही है।

अनुवादक की ओर से

महान् क्रान्तिकारी सावरकर की यह 'काला पानी' रचना उनकी अन्य कृतियों की तरह ही सोद्देश्य, मातृभूमि भारत के प्रति भक्ति, स्वधर्म के प्रति अटल अनुरक्ति और भारतीय संस्कृति की शक्ति और हिन्दुत्व के प्रति आस्था की अभिव्यक्ति करने वाली है। सावरकर ही ऐसे भारतीय हैं जिन्हें ब्रिटिश सरकार ने सर्वाधिक लम्बी अवधि के लिए कारावास दिया था। इस कृति में उन्होंने 'काले पानी' के रूप में ज्ञात अन्दमान जेल का बड़ा मार्मिक और सजीव चित्रण किया है।

परजातियों की हत्या, निर्दोष महिलाओं के साथ बलात्कार आदि दुष्कार्य विधर्म के अभिन्न अंग हैं। इसकी जो प्रतीति अन्य यूरोपीय लेखकों को वर्षों बाद हुई, उसे भी सावरकर की दूरदृष्टि ने बहुत पहले ही देख लिया था। इस दृष्टि में इस पक्ष को उन्होंने बड़े संयत और स्पष्ट रूप में उभारा है।

मानवीय जीवन की पाशविक वृत्ति के रोंगटे खड़े करने वाले विवरण के साथ इसमें मनुष्य के मनुष्यत्व की भावना को भी प्रवृद्ध करने की प्रेरणा है।

अन्दमान के आदिवासियों की स्थिति का, उनके साथ भारतीय अस्मिता के एकीकरण की यदि किसी ने सर्वप्रथम आवाज़ उठाई है तो वह सावरकर ही हैं और उन्होंने इस रचना में इस बात को बड़ी प्रमुखता से लिखा है।

अनुवाद में न चाहते हुए भी उनके महान् दार्शनिक विचारों का कुछ संक्षिप्तीकरण करना पड़ा है, पर विचारों में अविच्छिन्नता को कायम रखा गया है। इस दार्शनिक पक्ष से सावरकर जी का क्रान्तिकारी, धार्मिक व सामाजिक दृष्टिकोण सामने आता है।

दृष्टव्य :

पाठको की सुविधा के लिये, इस पुस्तक के विषय में "ग्रथं सार" आरंभ की अपेक्षा कुछ कारणों से पुस्तक के अन्त में दिया गया है। अतः पाठक यदि उसे पहले अध्ययन कर लें तो उनको पुस्तक का सार समझने में सुविधा होगी। यह उपन्यास एक प्रकार से ऐतिहासिक एवं संस्मरणात्मक कृति है—अन्दमान काला पानी के कई रहस्य हैं जो प्रथम बार किसी लेखक ने बड़े साहस के साथ उद्घाटित किये हैं।

●

१. मालती

'माँ सुनाओ ना मुझे कोई गाना, सुनाओ ना। देख ! मैं तो तुझे इतने सुरीले गाने सुनाती हूँ मगर तू ऐसी है कि मुझे एक भी गाना नहीं सुनाती।' मालती ने यह बात झूले पर एक और ऊँची पेंग लेते हुए रमाबाई से बड़े लाड से कही।

'मेरी बेटी ! एक गाना ही क्या, मैं तो तुझे एक लाख गाने सुनाती, पर अब तेरी माँ का स्वर तेरी तरह सुरीला नहीं रहा है। केले के धागों से गेंदे के फूलों की माला गूँथी जा सकती है, परन्तु जूही के फूलों की माला गूँथने के लिये रेशम का कोमल धागा ही चाहिये। नहीं तो माला के फूल ही नष्ट हो जायेंगे। प्यार-भरे गाने तेरे मीठे स्वर में होने के कारण बड़े प्यारे लगते हैं। इसीलिये ऐसे प्यारे गाने तुम लड़कियों को ही गाने चाहिये और हम माताओं को सुनना चाहिये। मैं यदि गाना गाऊँ भी, तो टूटे तार वाली सितार की तरह गाने की मधुर तान तो खत्म हो ही जायगी और साथ ही मेरी फटी आवाज सुनकर तुझे हँसी भी आयगी।'

'हँसी आती है तो आने दे। हँसूँगी तो मजा तो आयगा ? मुझे मजा औरआनन्द देने के लिए ही सही, तुझे दो-चार गाने सुनाने ही होंगे। देवता के सामने गाने और स्तोत्र कैसे कई-कई घण्टे तक बोलती है ? तब मुझे नहीं लगता कि तेरी आवाज फटी हुई है ? परन्तु मेरे लिये दो-चार गाने सुनाने के लिये तेरी सितार के तार टूट जाते हैं। यदि माँओं को केवल लड़कियों के गाने ही सुनने का होता तो बताओ माँओं के गाने के लिए कोई गाने क्यों बनाता ? परन्तु माओं के गाने के लिये कितने ही प्रेमीले गाने रचे गए हैं। मुझे भी कछ याद हैं।'

'माँ बनने पर उन्हें तू अपने बच्चों को सुनाना।' मन-ही-मन हँसते हुए रमाबाई ने कहा।

लाज से सिमटी-सी धीमे स्वर में रूठते हुए मालती ने कहा : 'मैं स्वयं ही मन करेगा तो गाऊँगी, नहीं मन करेगा तो नहीं गाऊँगी। तू तो नहीं सुनायगी न कोई सुन्दर सा गाना ?' यह कहने के साथ ही माँ से चिपटकर उसके गालों से अपने पतले होठों को सटाकर वह किशोरी अनुनय-विनय करने लगी।

'बोल, गाना क्यों नहीं सुनाती ? तू मेरी माँ है ना ? यदि तू ही नहीं गायगी तो बता मुझे और कौन माँ के लाडभरे गाने सुनायगा ?'

'तू मेरी माँ है ना ! अपनी इकलौती पुत्री के इन लाडभरे शब्दों को सुनते ही रमाबाई के हृदय में वात्सल्य का ऐसा उफान आया कि उसके मन में आया कि वह किसी पिता की तरह अपनी उस सुन्दर पुत्री के मुख को अपनी छाती से लगा ले। मालती के मुख पर चुम्बनों की बौछार करने के लिये उसके होंठ फड़कने लगे। माँ का प्यार जितना उत्कट होता है वह यौवनावस्था में पदार्पण करने वाली अपनी कन्याओं के लिए व्यवहार में उतना ही संकोची हो जाता है।

मालती के गालों से सटे हुए अपने मुख को पीछे करके उसकी माँ ने उस वयप्राप्त पुत्री के मुख को दोनों हाथों से पकड़कर उसे क्षणभर देखा और धीरे-से अपने हाथ हटाते हुए मालती से बोली, 'अच्छा बेटी ! मैं तुझे एक-दो ही गाने सुनाऊँगी, अधिक नहीं। समझी ?'

'अहा ! अब मजा आयगा !' ऐसा कहकर उल्लसित मालती ने झूले पर से ही जमीन पर पंजों को टिकाते हुए और तेज झोंके लेने शुरू कर दिये और कहा, 'माँ, जल्दी सुना। किसी छिपे रुस्तम गवैये की तरह ताल-सुर मिलाने में ही क्या आधी रात कर दोगी ?' मालती के एक बार पुनः प्रार्थना करने पर रमाबाई को जो गाना याद आया उसे ही उसने गाना शुरू कर दिया :

अरे ! यह अनन्त रत्नों की खान
मेरी अपनी ही है, मणि-माणिक्यों से द्युतिमान।

आता जाता कोई लोभी न देखे इसको राजकुमार
मैं नजर उतारूँ इसकी, कई बार, सौ-सौ बार।
जन्म-जन्म के मेरे सारे पुण्य इसे मिल जायें
मेरी कन्या की रक्षा को श्री हरि भागे आयें।
सदा सभी कामों में यह है चन्द्रकला-सी बढ़ती
रहे सभी से सबसे आगे, मेरी बेटी इकलौती।

गाने की धुन में 'इकलौती' शब्द के उच्चारण करने के साथ ही, विच्छू के डंक मारने से जैसी तीव्र पीड़ा होती है उसी प्रकार रमाबाई का हृदय दुःख से तिलमिला गया। अपनी पुत्री के आनन्द के इन क्षणों में इस शल्य के चुभन की उसे प्रतीति न हो, इसलिये रमाबाई ने अपने मुख पर विषाद की छाया भी आने नहीं दी, फिर भी उसका गाना अकस्मात् बंद हो गया। मालती को लगा कि गाना गाते हुए माँ का साँस फूल गया है इसलिए वह चुप हो गई है। माँ को विश्राम मिले और गाने की जो मीठी लहर बह निकली है वह जारी रहे, इस विचार से, और अब मुझे भी गाना चाहिये यह समझ कर उसने स्वतः ही गाना शुरू कर दिया। उसकी माँ ने उसे ममता से जिस रससिक्त गाने को सुनाया था उसके एक-एक मीठे शब्द उसके हृदय को गुदगुदा रहे थे। प्रियतम के प्रेमपूर्ण प्रणय-निवेदन सुनने की आदत पड़ने से पूर्व लड़कियों को माँ की स्नेहपूर्ण बातों में जितना मिठास मिलता है उतना अन्यत्र कहीं नहीं।

सायंकाल के समय पश्चिम की ओर स्थित खुले बरामदे में पड़े झूले पर बैठी वह सुतन्वी, कमनीय शारीरिक गठन की किशोरी अपने सुमधुर गायन के माधुर्य में स्वयं ही रसविभोर ऊँचे-ऊँचे पेंगें भरने लगी। झूला एकओर ऊपर जाकर जब पीछे नीचे की तरफ आता था और उसकी पीठ पर पड़ा साड़ी का पल्ला फर-फर उड़ता था, तब ऐसा प्रतीत होता था कि मानो संध्याकाल में अपने दूरस्थ घोंसलों की ओर लौटते हुए किसी सुन्दर पक्षियों के दल का कोई पिछड़ गया पंछी अपने पंख फैलाकर अपना सौन्दर्य बिखरते हुए और एक के बाद एक मधुर तान छेड़ते हुए उल्लास-भरे आकाश में उड़ रहा है। मालती गा रही थी :

'माँ की ममता ऐसी है, जग में उपमान नहीं मिलता,
मिल जाये भगवान अगर, माता-सा प्यार नहीं मिलता।
माता का स्नेहिल निर्मल, रंग कभी न उतरे,
माता की ममता रक्षक है, चाहे कितने हों खतरे।
इस पृथ्वी पर माता है, प्रत्यक्ष प्रभु की काया,
उसके वरद हस्त की सन्तानों पर हैं नित छाया।
लड़का हो या लड़की, माँ की ममता में भेद नहीं आता,
वह सारा प्यार बाँट देती, फिर भी सारा प्यार बचा रहता।
माँ अपना जीवन देकर भी सबको जीवन देती है,
पर राजा भैया के बारे में वह प्रतिदिन क्यों रोती है।
मेरा आयुष्य मिले भैया को प्रभु से यही विनंति है,
मेरा भाई शत वर्ष जिये, बस चरणों में यही प्रणति है।'

गाने की लहर में मालती को जो भी गाना याद आ रहा था उसे ही गाती जा रही थी। पहले गाने के बोल उसके अपने ही मन से स्वयं बनाये गये पद थे। अपनी माँ पर उसकी जो प्रेमिल ममता थी वह उसके कण्ठ-स्वर में गान के रूप में फूट निकली थी। परन्तु बाद के गानों के चयन का उसके अर्थों से कोई सम्बन्ध नहीं था। वह मराठी गायिका हिन्दी पदों का वास्तविक अर्थ क्या है यह बिना सोचे गाने के ताल-लय के शौक से गाती चली जा रही थी। परन्तु उसकी माँ को इस गाने का अर्थ शूल की तरह लग रहा था। मालती जब अपने भैया राजा से सम्बद्ध गीत गाने की लहर में गाती जा रही थी, तब उसकी माँ का हृदय दुःख से इतना भर गया था कि उसे स्वयं लगने लगा कि कहीं वह रो न पड़े। अपने इस दुःख की काली छाया मालती के प्रफुल्लित मुखारविंद पर न पड़े, उसकी मुस्कराहट बंद न हो यह सोचकर उसकी माँ ने मालती के इस गाने को ही बंद करने का निश्चय किया और उसे बीच में ही टोकते हुए कहा, 'बस बेटी, अब झूला अधिक ऊँचा नहीं। देख तू कितनी ऊँची-ऊँची पेंग ले रही है। मुझे तो डर लगता है।'

यह बहाना कर जमीन पर अपना पैर मजबूती से टिकाकर उसने झूला रोक दिया। उसके साथ ही मालती न केवल झूले से नीचे उतरी

अपितु ऊँचे झोंकों में विस्मृत उसका मन भी गाने के साथ ही चेतना-जगत में लौट आया।

उतरते ही उसने माँ को देखा जिसकी आँखों में आँसू छलक रहे थे। उसका मुख दुःख की पीड़ा से मुरझा गया था। मालती को अब ध्यान में आया कि निश्चित रूप से माँ को उसके बड़े मृत भाई की याद आ गई है और उसके मुख से स्वाभाविक रूप से भाई के बारे में गाये गए गाने से ही माँ का हृदय दुःख से भर गया है। अपने बड़े पुत्र की मृत्यु को अनेक वर्ष बीत जाने के बाद भी, बीच-बीच में ऐसे प्रसंग आने पर ताजे दुःख की तरह उसकी स्मृति-वेदना उसे असह्य हो जाती थी और वह ममतामयी माँ जोर-जोर से रोने लगती थी। ऐसे अवसरों पर माँ को किस प्रकार ढाढस बँधाया जाय और उसके दुःखावेग को यदि पूरी तरह रोका न भी जा सके तो उसे कम करने के लिए क्या उपाय किया जाय यह मालती को मालूम था।

उसने एकदम माँ की गोदी में अपना सिर छिपा लिया। इसके साथ ही अपने आप उसका सुन्दर मुख कुम्हला गया और आँखों में पानी भर आया। उसने अपनी आदत के अनुसार अपने गालों को माँ के गालों से सटाकर बड़ी अनुनय के साथ कहा :

'माँ, ऐसा क्या हो गया ? मैं तो तेरे मन को सुख पहुँचे यह सोचकर गाना गा रही थी, पर भूल से तेरे हृदय के घाव ही छिल गये। मुझ मरी को वही गाना क्यों याद आया !'

मालती को अपनी भूल पर अत्यधिक वेदना हो रही है इस बात की प्रतीति होते ही उसकी माँ को अपने दुःख की अपेक्षा अपनी रुआँसी पुत्री का दुःख ही असह्य हो गया और रमाबाई झट अपना रोना बन्द कर मालती को ही समझाने लगी :

'चल पगली ! अरे मैं तेरे गाने के कारण नहीं किन्तु अपने उस गाने में मैंने तुझे अपनी इकलौती पुत्री कहा था न, उसी से मुझे बड़ा बुरा लगा। बस इतनी ही बात है। भगवान ने मुझे दो सन्तानें दीं पर मेरा दुर्भाग्य, मुझसे एक छीन लिया गया, यही बात मुझे दुःख पहुँचा गई। इसलिए मेरी बेटी, तूने मेरे दुःख के घावों को नहीं कुरेदा है। इसके विपरीत यदि

मेरे दुःख को दूर करने वाला कोई रसायन है तो वह केवल तेरे प्रसन्न मुख पर सुखपूर्ण खेलती हँसी ही है। जो मर गया है वह वापिस तो लौटकर आ नहीं सकता। तेरे भाई को तुझ पर इतनी ममता थी कि यदि मैं तुझे उसके वियोग के दुःख में रुलाऊँ तो भी वह मुझ पर क्रोधित होगा। उसकी आत्मा जहाँ भी होगी वह छटपटायेगी। मेरे लिए तो तू ही उसकी जगह है। तेरे में ही मैं अपनी दोनों संतानों को एक साथ देखती हूँ। है न यह बात? अरे हाँ! आज तो उस नये आये साधु के भजन-कीर्तन में जाना है! चल फिर तैयार हो। मैं चूल्हा जलाती हूँ और तू झाड़ू-सफाई कर। हमारा खाना होने तक नायडू बाई हमें बुलाने आ जायगी।'

दोनों माँ-बेटी तैयार होने के लिए घर के अन्दर चली गईं। इस छोटे-से सुन्दर घर को रमाबाई ने पिछले महीने ही मथुरा में अपने तीर्थ-प्रवास के लिए स्वतन्त्र रूप से किराये पर लिया था।

रमाबाई का पति दो सन्तान होने के बाद सहसा ही मर गया। रमाबाई की गृहस्थी सुखपूर्वक चल सके, इस दृष्टि से वह पर्याप्त पैसे और गहने रमाबाई के लिए जमा कर गया था। पति की मृत्यु के बाद रमाबाई ने अपनी दोनों सन्तानों का लालन-पालन कई वर्षों तक नागपुर के निकट अपने मूल गाँव में ही किया। इसके बाद उसके पुत्र ने सेना में नौकरी कर ली। जब वह सेना में गया तब उसकी पुत्री मालती रमाबाई के पास ही पली। दो चार वर्षों में ही भारत से बाहर अंग्रेजों के साथ कहीं होने-वाली किसी लड़ाई में भारतीय सैनिकों को भेजा गया। इनमें रमाबाई का पुत्र भी था। परन्तु बाहर जाने के बाद से उसकी कोई खोज नहीं मिली। काफी दौड़धूप के बाद रमाबाई को एक सैनिक अधिकारी से मालूम पड़ा कि उसका पुत्र कीसी कारण से अधिकारियों से झगड़कर फरार हो गया और इस बात की आशंका है कि उसे शत्रु-पक्ष ने मार डाला है।

इस बात को भी पाँच-छः वर्ष बीत गये। रमाबाई का पुत्र सेना में लड़ाई पर जाकर वहीं मारा गया, इस बात पर रमाबाई के गाँववालों का विश्वास इतना बैठ गया कि अब लोग उसे भूल-से गये थे। परन्तु रमाबाई इसे कैसे भूल सकती थी? वह अपने पुत्र को भूली नहीं थी, इतना ही नहीं अपितु वह मारा गया है और अब वह पुनः कभी लौटकर नहीं आयगा

यह बात भी उसे कभी-कभी झूठ मालूम होती थी। लड़ाई में मारे गये सैनिकों के अत्यधिक प्रिय स्वजनों व सम्बन्धियों की यह मनोवृत्ति प्रायः देखने में आती है। इसीलिए अब भी रमाबाई को अपने पुत्र के मारे जाने की बात सत्य नहीं लगती थी। कोई भी आशा न होने पर भी सन्देह बना ही हुआ था। उसका पुत्र दूर देश में लड़ाई पर जाकर मारा गया यह बात उसकी जिह्वा पर नहीं आती थी। यदि उसे ऐसी बात कहने का अवसर भी आता तो वह इतना ही कहती थी कि मेरा बड़ा लड़का लड़ाई में गया था और उसके बाद से उसका कुछ पता नहीं चला।

पुत्र की मृत्यु का समाचार मालूम होने के बाद दुःख से पीड़ित रमाबाई के प्राण अपनी एकमात्र सन्तान मालती में ही अटक गये थे। उसका सारा संसार उसी में सिमट गया था। मालती के लालन-पालन में उसने कोई कसर नहीं छोड़ी। मालती जैसे-जैसे बड़ी होती गई वह बढ़ती हुई चन्द्रकला के समान अधिकाधिक सुन्दर दिखने लगी। उसके स्नेह, चपल परन्तु सुशील व्यवहार, व बोलचाल में इतनी मोहकता और मादकता थी कि न केवल उसकी माँ को किन्तु जो भी उसे देखता था उसके नयनों और मन को वही आनन्द प्राप्त होता था जो चतुर्थी के चन्द्रमा को देखने से होता है। सुन्दर मोती देखने के बाद जैसे स्वतः ही यह विचार उठता है कि यह किसी सुन्दर आभूषण के योग्य है, उसी प्रकार उस किशोरी को देखकर स्वयं ही विचार उठता था, कि इसे विधाता ने किसी मोहक, मंगलकारी, सुखकारक जीवन के लिए ही रचा है। उसने जीवन के चौदह वसन्त पूरे कर लिये थे और अब उसकी माँ के मन में उसके सुनहले भविष्य के बारे में अनेक उद्यान पुष्पित हो उठे थे।

रमाबाई की एक बहुत पुरानी मैत्रिण अन्नपूर्णाबाई नायडू नामक महिला थी। आजकल उसकी नौकरी मथुरा में लग गई थी। उसके आग्रह पर और अपने भक्तिपूर्ण मन में तीर्थ-यात्रा करने की लालसा के कारण वह मालती के साथ कुछ दिनों के लिये मथुरा आ गई थी। मथुरा के प्रसिद्ध स्थान, मंदिर और साधु-सन्तों के दर्शन कराने का मुख्य कार्य व गाइड का काम नायडू बाई ही कर रही थी। उसे भी साधु-सन्तों की संगत में बैठने की बड़ी चाह थी। कोई भी सन्त जिसका नाम मथुरा में प्रसिद्ध हो

जाता था उसका उपदेश सुनने और अवसर आने पर यथाशक्ति सेवा करने के अवसर को नायडू बाई खोती नहीं थी।

उसके घर के पड़ोस के घाट पर पिछले महीने ही योगानन्द नामक एक साधु अपनी शिष्य-मण्डली के साथ आकर ठहरा था। अन्नपूर्णाबाई नायडू ने अब उसके भजन, पूजन व दर्शन के लिए वहाँ जाना शुरू कर दिया था। स्वामी योगानन्द में भूत, भविष्य, वर्तमान जानने की अद्भुत दैवीय शक्ति है, इस बात का बड़े जोर-शोर से प्रचार हो रहा था। रात को इस साधु के मठ में भजन-कीर्तन का ऐसा समा बँधने लगा कि उस नाम-संकीर्तन में सैकड़ों लोग आते और भक्ति-भाव से नाचने लगते। नायडू बाई के मुख से योगानन्द स्वामी को रमाबाई के बारे में जानकारी प्राप्त हुई और उसने देवता की विशेष कृपा के संकेत के रूप में रमाबाई के लिए अपने हाथ से देवता का प्रसाद भेजा। रमाबाई मालती के साथ इस भजन-संकीर्तन में गत दो-तीन रात से जा रही थी। स्वयं योगानन्द ने एक-दो बार रमाबाई से उसका हाल-चाल पूछने की कृपा की थी।

योगानन्द ने अपना व्यवहार इतना भक्तिपूर्ण, निर्लोभी, सरल और सीधा रखा था कि उसके बारे में नगर के असामाजिक तत्त्वों में भी ऐसी वैसी बात प्रचलित नहीं थी। भजन-संकीर्तन में मस्त होने के बाद तो ऐसा लगता था कि इस सिद्ध पुरुष को अपने शरीर और इस संसार की कोई सुध-बुध नहीं रहती है। उसकी मुख्य साधना संकीर्तन ही थी। इसके अतिरिक्त उसके मठ में ढोंग-धतूरा आदि बातें दीखने में नहीं आती थीं। उसकी शिष्य-मण्डली भी उसके पीछे बड़े अनुशासन में चलती थी। मठ में भी उनका व्यवहार सदा अनुशासनपूर्ण ही दीखता था। मथुरा से इस मण्डली का प्रवास शीघ्र ही उठने वाला था, इसलिए इस अंतिम सप्ताह में भजन-संकीर्तन का अनवरत क्रम चल रहा था और सैकड़ों भक्त रात को बड़ी संख्या में उसमें भाग लेते थे।

रमाबाई मालती के साथ आज रात को इसी भजन-संकीर्तन में जाने वाली थी। माँ-बेटी अपना खाना समाप्त कर ही रही थीं कि नायडू बाई ने दरवाजा थपथपाया और शीघ्र ही तीनों महिलायें घाट पर स्थित स्वामी जी के मठ की ओर चल पड़ीं।

२. मालती कहाँ गई ?

रमाबाई मालती के साथ जब कीर्तन-स्थल पर पहुँची तब भजन-गायन अपनी पूरी मस्ती में था। उस घाट पर दूर-दूर तक लोगों का जमघट लगा हुआ था। बड़े-बड़े झाँझ लिये हुए ६०-७० गोसाईं साधु योगानंद को चारों ओर से घेरकर कीर्तन की धुन में थे। इसी के साथ मुख्य १०-२० शिष्य अपने पखावज, मृदंग, वीणा, आदि वाद्य-यन्त्रों का ताल-सुर मिलाकर योगानन्द के एकदम पास किसी भी समय गाना शुरू करने को तैयार बैठे थे। इसके बीच में योगानन्द कभी बैठे और कभी आवेश में खड़े होकर ऊँचे-ऊँचे स्वर में तन्मय होकर भजन गा रहा था। भक्तों की भारी भीड़ में मध्य तक पहुँचना संभव नहीं था। परन्तु नायडू बाई की पहुँच के कारण रमाबाई और मालती को महन्त के मंदिर में पहले से ही निश्चित स्थान पर बिठाने के लिए एक शिष्य को नियुक्त कर दिया गया था। इस शिष्य ने इस मण्डली को आता देख आगे बढ़कर उनकी अगवानी की और योगानन्द की आज्ञानुसार उन तीनों को अच्छे स्थान पर बैठा दिया।

इस बीच भजनों का गायन अपने पूरे रंग में था। सन्त तुलसीदास के एक-एक पद का एक-एक चरण सौ से भी अधिक गायकों के शतकण्ठों के संयुक्त स्वर आकाश में रात्रि की निस्तब्धता में दूर-दूर तक गूँज रहा था। बोल थे :

तुलसी मगन भये। हरि गुण गानों में ॥
मगन भये। हरि गुण गानों में ॥ टेक ॥
कोई चढ़े हाथी घोड़ा पालकी सजा के।
साधु चले पैंया पैंया चिटियाँ बचा के।
मगन भये। हरि गुण गानों में ॥ तुलसी० ॥

झाँझों की झनझनाहट में शरीर का रोम-रोम रोमांचित हो रहा था। भक्तिरस के सरोवर में सारा उपस्थित समाज डूब गया था। हरिनाम के जाप के अलावा अन्य किसी भी प्रकार की ध्वनि सुनाई नहीं पड़ रही थी। कोई किसी की नहीं सुन रहा था। सब अपने ही गाने की धुन में रम गये थे।

शत-शत कण्ठों से उच्च स्वर से गाये जाने वाले इस पद के अन्तिम चरण को योगानन्द अकेला ही इतना तल्लीन होकर गाने लगा कि उसके अन्य शिष्यों और भजनीकों ने झाँझों की झनकार बंद कर खड़ताल को बजाते हुए ताल-सुर में साथ देना शुरू कर दिया—'तुलसी मगन भये। हरि गुण गानों में'। इस चरण को कई वार घुमा-फिराकर धीमे स्वर से गाते हुए योगानन्द खड़ा हो गया।

योगानन्द इस पद का अर्थ नहीं बताता था। परन्तु जिनको इसका अर्थ मालूम था उनको इस भजन में निहित अर्थ, विपुल रूप से हृदयंगम हो रहा था। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन की साधना अपनी रुचि के अनुसार करता है। प्रत्येक आनन्द और सुख की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील है। इसके लिए कोई भोग का अनुसरण करता है तो कोई योग का। व्यक्ति का मानसिक विकास जितने उच्च धरातल पर स्थित है उसके अनुसार उसकी रुचि विकसित होती है। संस्कृत में उक्ति है 'स्वभावो मूर्ध्नि तिष्ठति'। ऐसी स्थिति में बाह्य साधना के प्रश्न पर विचार क्यों? तुमको जिसमें आनन्द है उसी में तुम रम जाओ। जिसको जहाँ आनन्द मिलता है वह वहीं रम जाता है। यदि तुम मेरे बारे में पूछते हो तो मैं यही कहूँगा—'तुलसी मगन भये हरि गुण गानों में, हरिगुण गानों में, हरिगुण गानों में।'

कोई ऊँचे चन्दन के पलँग पर गद्दे-तकिये लगाकर उसपर लोट लगाने की खटपट करता है, उसे इसी में आनन्द आता है। पर कोई और ऐसे पलँग की बात तो दूर, सुन्दर कामिनी पत्नी का भी परित्याग कर बुद्ध भगवान की तरह वटवृक्ष के नीचे, या ऊबड़-खाबड़ स्थानों पर, पृथ्वी पर ही सो जाता है। उसे वहीं पर गाढ़ी नींद आ जाती है। खूब गहरी नींद आये यदि यही उद्देश्य है तो जिसे जहाँ ऐसी नींद आये वहीं सोना चाहिए। आप मेरा ही उपाय करें ऐसा विवाद क्यों किया जाय?

कोई हाथी पर, कोई घोड़े पर, तो कोई पालकी पर बड़े शौक और ठाठबाट से चलते हैं। इन्हें इसी में आनन्द आता है। इनका समाज भी इसी प्रकार का बन जाता है। परन्तु साधु को देखो! उसे हाथी पर चढ़ना फाँसी के तख्ते पर चढ़ना जैसा लगता है। स्वयं पालकी पर बैठे और दूसरे उसे उठाकर ले चलें, इस विचार से ही उसे इतनी लज्जा आती है

कि पालकी का स्पर्श उसे ऐसा लगता है जैसे किसी अंगारे को हाथ लग गया हो। इसलिये साधु पैदल ही चलता है। पैरों के नीचे कीड़े-मकोड़े न दब जायें इस भय से वह देख-देखकर पैर रखता है। उसे इसी में सच्चा आनन्द मिलता है।

कोई चढ़े हाथी घोड़ा पालकी सजा के
साधु चले पैंया पैंया चिटियाँ बचा के
पैंया पैंया चिटियाँ बचा के
पैंया पैंया चिटियाँ बचा के।

चौथा चरण योगानन्द धीरे और शान्त स्वर में बड़ा मस्त होकर गा रहा था और साथ-साथ बड़े नपे-तुले कदम बड़ी सावधानी से रख रहा था। उसने वीणा की तार झंकृत करते हुए पुनः पैयाँ-पैयाँ चिटियाँ बचा के 'साधु चले पैयाँ पैयाँ चिटियाँ बचा के' की तान छेड़ दी।

इस समय सबको ऐसी ही प्रतीति होने लगी कि तुलसीदास जी के उस पद में उल्लिखित साधु योगानन्द ही है। योगानन्द की यह एक विशेष आदत थी कि वह रास्ते पर, घाट पर या बाजार में कहीं भी चलते हुए एक-एक पैर उठाकर बड़ी सावधानी से रखता था। तुलसीदास जी के इस पद में अपने साधुत्व को प्रतिबिम्बित करने के लिए इस गाने को चाहे न भी गाया जा रहा हो, फिर भी इसमें जो माधुर्य और तन्मयता थी उसका परिणाम यही हो रहा था। कुछ न कहने पर भी तुलसीदास जी की कसौटी पर योगानन्द का साधुत्व पूरा खरा उतर रहा था।

इस भजन-कीर्तन-उत्सव में आधी रात कब हो गई पता नहीं चला। आरती के समय स्वामीजी के चरण छूने के लिए भारी भीड़ उमड़ पड़ी। उस गड़बड़ी में कुछ लोग अपने घर जाने के लिए बाहर निकलने लगे और धक्का-मुक्की शुरू हो गयी। नायडू बाई, रमाबाई और मालती जिधर से बाहर जा रहे थे उसी ओर १०-१२ व्यक्तियों में अकस्मात् मार-पीट शुरू हो गई। इस झगड़े से स्थिति और भी गड़बड़ा गई। इस दंगे को रोकने के लिए स्वामी जी के शिष्य लाठियाँ लेकर घटनास्थल पर आ गये। भीड़ में जो जहाँ था वह भीड़ के धक्के में उसी ओर बढ़ता चला गया। लोग बीच-बीच में भी घुसते ही जा रहे थे। इस भगदड़ में

मालती कहाँ गई, रमाबाई कहाँ है और नायडू बाई किस ओर है, इसका एक-दूसरे को कुछ पता ही नहीं चला। इसी बीच इस धक्का-मुक्की में घबराई हुई रमाबाई का हाथ एक शिष्य ने कसकर पकड़ लिया और उसे भीड़ से बाहर लाकर कहा, 'स्वामी जी ने हमें स्त्रियों को बहुत शीघ्रता से घर पहुँचाने की आज्ञा दी है। अतः अब घर चलो।'

परन्तु मेरी मालती कहाँ है ? मालती ! ऐसा घबराकर रमाबाई कुछ पूछती कि वह शिष्य उसे एक प्रकार से घसीटकर ले चला और बोला, 'सबको घर पहुँचा दिया है, आप भी चुपचाप चलिये।'

आधे रास्ते तक खींचते हुए वह शिष्य रमाबाई को उसके मकान के समीप तक ले आया और कहा, 'अब झटपट अपने घर में जाओ, वहाँ रह गई दोनों माताजी को पहले ही घर पहुँचा दिया गया है। भीड़ में यदि और भी स्त्री-पुरुष फँस गये हैं तो उन्हें भी निकालकर घर पहुँचाना है।' यह कहकर उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वह भीड़ में लुप्त हो गया।

रमाबाई धड़कते हुए हृदय से घर की तरफ चली। इतनी भीड़ में स्वामी जी ने स्त्रियों की चिन्ता कर उन्हें घर पहुँचाने की व्यवस्था की, एक ओर यह विचार आ रहा था तो दूसरी ओर मालती दरवाजे पर खड़ी घबराई हुई मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी यह विचार आ रहा था। जब वह पहुँची तब अँधेरे में दरवाजे पर मालती का कोई चिह्न नहीं था। उसने और निकट से देखा तो वह धक्क रह गई। दरवाजे पर ताला जैसे-का-तैसा लटक रहा था। मालती के आने का प्रश्न नहीं रहा। कीर्तन के बाद धक्का-मुक्की में मालती कहीं रो रही है ऐसा उसके कानों में उसका रुदन गूँज उठा।

'मालती ! मालती !' रमाबाई जैसे-तैसे दो बार चिल्लाई। तीसरी बार उसका गला रुलाई से रुँध गया। वहीं धम से बैठ गई। किसी के वहाँ उपस्थित न होने की बात मालूम होने पर भी वह पूछने लगी—'बताओ; हाय मेरी मालती कहाँ है ? कोई तो बताओ मेरी मालती कहाँ है ?'

उस समय रमाबाई के घबराने का कोई विशेष कारण नहीं था। स्वामी जी के शिष्यों ने सभी स्त्रियों को पहले ही घर पहुँचा दिया है, यह बात जल्दी में सही किन्तु स्पष्ट रूप से कही गई थी। यहाँ नहीं तो

नायडू बाई के घर में ही सम्भवतः दोनों को पहुँचा दिया गया हो। भीड़ में मैं एक ओर हो गई थी' संभव है वे दोनों एक साथ ही हों। ऐसा ही होगा। मुझे ढूंढ़कर मेरे घर तक लाने के बदले उन दोनों को निकट होने के कारण नायडू बाई के घर ही पहुँचाया गया होगा। नायडू बाई ने ऐसी ही विनति की होगी।

यही दूसरा विचार रमाबाई को कुछ ठीक लगने लगा। वह दरवाजा खोलकर घर में घुसी। फिर विचार आया कि चलो मैं नायडू बाई के घर जाकर स्वयं ही उसे देखती हूँ। वह चल भी पड़ी पर पुनः विचार आया कि मैं वहाँ गई और मालती इधर आ गई तब? फिर वह अकेली रह जाएगी। वह फिर मुझे ही ढूंढने न निकल पड़े। रास्ता लम्बा है, अँधेरी रात है और रात का तीसरा पहर। क्या करूँ क्या न करूँ, इसी उधेड़-बुन में रमाबाई को नींद का एक झोंका आ गया।

सवेरे एकदम जब उसकी आँख खुली तो उसकी नजर सबसे पहले पास के मालती के खाली बिस्तर पर पड़ी। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था, क्योंकि प्रतिदिन प्रातः उठने पर इस बिस्तर पर उसे मालती गहरी नींद में सोई हुई मिलती थी। रमाबाई का यह प्रतिदिन का कार्य था कि वह मालती के उलझे बालों को सँवारती, उसके गाल पर हल्की थपकी देती और चादर अच्छी प्रकार उढ़ाकर अपने अन्य दैनिक कार्यों में लग जाती। आज उस बिस्तर पर मालती का सुन्दर मुख उसे नहीं दिखाई दिया। हृदय में एक शूल-सा चुभा और उसके मन में आशंकापूर्ण विचार आने लगे। मन में आये विचारों को वाणी से प्रकट न करते हुए वह धड़कते हृदय से तेजी से मालती की खोज में नायडू बाई के घर की ओर चल पड़ी।

परन्तु थोड़ी ही दूर जाने पर उसने देखा, नायडू बाई उसके घर की ओर ही आ रही है और उसके साथ मालती नहीं है। रमाबाई ने घबराते हुए पूछा, 'अरे मालती कहाँ है?'

आश्चर्य से नायडू बाई से उत्तर दिया, 'अरे, मुझे स्वामी जी के एक शिष्य ने बताया था कि मालती तुम्हारे साथ चली गई है।'

बड़े रुँधे कण्ठ से अस्पष्ट वाणी में रमाबाई ने फूट-फूटकर रोते हुए कहा, 'हाय! मेरी मालती इस समय कहाँ होगी? हाय मेरी मालती!'

नायडू बाई का धीरज कुछ अधिक ही था। एक इस कारण भी कि उसकी अपनी इकलौती बेटी का अपहरण नहीं हुआ था। रमाबाई को धीरज देते हुए वह बोली :

'घबराने की क्या बातहै ? 'मुझे, तुझे तथा अन्य सभी स्त्रियों को स्वामी जी ने समझदार लोगों को भेजकर जिस प्रकार उस भीड़ से बचाया उसी प्रकार मालती को भी बचाकर कहीं सुरक्षित पहुँचाया होगा। चलो, स्वामी जी के पास चलें। मालती जहाँ भी कहीं होगी सुरक्षित ही होगी, चलो।'

रमाबाई को इस प्रकार धीरज बँधाकर नायडू बाई उसे स्वामी जी के मन्दिर की ओर ले चली। परन्तु उसके मन में भी मालती के बारे में कहीं कुछ अनिष्ट तो नहीं हो गया यह विचार आये बिना नहीं रह सका।

३. योगानन्द का कपट

योगानन्द ने जिस मंदिर में अपना डेरा जमाया था वहाँ के प्रांगण में प्रातःकाल से ही उसके दर्शनार्थी और अपनी शंकाओं का समाधान कराने के लिये काफी लोग जमा थे और अपनी बारी आने की प्रतीक्षा में इधर-उधर टहल रहे थे। कुछ लोग आपस में योगानन्द जी के भूत, भविष्य और वर्तमान के अद्‌भुत ज्ञाता होने का बखान कर रहे थे। एक कह रहा था, कैसी ही शंका क्यों न हो यह उसका ठीक समाधान कर देते हैं। कुछ लोग नमक-मिर्च लगाकर उदाहरण-सहित बता रहे थे कि स्वामी जी ने किस प्रकार भविष्य की बात ठीक बताई। योगानन्द स्वामी ने कभी भी कीर्तन में अथवा व्यक्तिगत बातचीत में धर्मोपदेश नहीं किया। वह प्रायः किसी से भी किसी एक विषय पर अधिक बात नहीं करता था। भूत-भविष्य के बारे में भी वह जिन लोगों को बताना चाहता था उन्हें ही वह शिष्यों के माध्यम से अपने कमरे में एकान्त में बुलाकर बात करता था। योगानन्द प्रश्नकर्ता से बड़े नपे-तुले प्रश्न पूछता और उसकी बात भी संक्षेप में सुनता था। इसके बाद जलादर्श नामक एक तांत्रिक यंत्र को सामने रखके उस

यंत्र में उसकी दैविक दृष्टि को जो दीखता था वह बताता जाता था। यह सत्य है या झूठ, ऐसी कहने की किसी को आज्ञा नहीं थी। उसका एक ही रटा वाक्य होता था— प्रभु ने बतलाया, मैंने कहा। सच-झूठ प्रभु का अधिकार। मैं तो उसके शब्द की ध्वनि मात्र हूँ।' इसके बाद उसके शिष्य उस प्रश्नकर्ता को बाहर ले आते थे। योगानन्द इस भूत, भविष्य, वर्तमान की बात बताने के लिए किसी से भी कुछ भी नहीं लेते थे। उसकी इस अपरिग्रही और लोभरहित वृत्ति के कारण न केवल भक्तों की अपितु जिनका पूरा समाधान नहीं होता था उनकी भी श्रद्धा बढ़ जाती थी। योगानन्द इतना कम बोलता था कि जब कभी वह बोलता था तब उसके कथन का लोग अपने मन के अनुसार अलग-अलग अर्थ लगा लेते थे। वह केवल कीर्तन में बड़े उन्मुक्त मन से और पूरी तन्मयता से बोलता था। उस समय उसके भक्तिभावपूर्ण अभिनय से, उसकी दैवीय सिद्धता की बात श्रोताओं के मन में घर कर जाती थी। परन्तु इस कीर्तन के अलावा वह कभी भी प्रवचन नहीं देता था। 'भजन सन्तों का, सन्तों से ज्यादा मैं क्या कहूँ' यह बात वह प्रवचन का समय आने पर कहता और चुप हो जाता।

परन्तु योगानन्द की इस मौन वृत्ति के कारण किसी भी प्रवचनकार के किसी भी भाषण की तुलना में उसके वेदान्त-ज्ञान की गहराई की भक्तों पर स्वतः ही असाधारण छाप पड़ती थी। वे समझते कि उसका ज्ञान इतना गम्भीर है कि उसे व्यक्त करने में शब्द समर्थ नहीं हैं। 'गुरोस्तु मौनं व्याख्यानम्'—गुरु का मौन ही उसका उपदेश है—परम सिद्ध पुरुषों की यही पहचान है, लोग आपस में ऐसी ही चर्चा कर रहे थे। एक कह रहा था, पूरी तरह खुली बावड़ी की गहराई कितनी है यह जानी जा सकती है, पर जो बंद है तथा जिसे किसी ने खुलते हुए नहीं देखा उसकी गहराई से होने वाला आश्चर्य निरन्तर बढ़ता ही जाएगा। इसलिए व्याख्यान न देने वाले गुरु का लक्षण 'गुरोस्तु मौनं व्याख्यानम्' ही है। इधर-उधर खड़े भक्त आपस में कह रहे थे, 'अरे घटिया साधुओं के मुंह लगने से क्या लाभ ?'

स्वामी योगानन्द के प्रति इस अत्यन्त श्रद्धा के कारण रमाबाई के पैरों में चलने की शक्ति आ गई थी। यदि मालती योगानन्द के मठ में सुरक्षित न भी हो, और यदि मठ में उसका किसी ने अपहरण कर लिया हो तब भी

वह कहां है और कैसी है इस बात को योगानन्द जी अपने जलादर्श यंत्र में देखकर निश्चित रूप से बता देंगे। यह विचार ही रमाबाई के आशंका-भीत हृदय को कुछ धैर्य बँधा रहा था। ये स्वामी जी उसके इस संकट में कुछ समाधान अवश्य ही करेंगे, ऐसा स्वयं को ही विश्वास दिलाते हुए उस निर्लोभी स्वामी पर श्रद्धा की लाठी के सहारे वह लड़खड़ाते पैरों से तेजी से मंदिर की ओर बढ़ रही थी।

नायडू बाई भावुक होने पर भी बुद्धू नहीं थी। उसने लुच्चे-लम्पट साधु भी देखे थे। पर सभी साधु लुच्चे-लफंगे होते हैं, यदि कभी कोई ऐसी बात कह देता तो वह उससे लड़ने के लिए तैयार हो जाती। योगानन्द द्वारा किसी से बिना कुछ लिये जैसा दीखे वैसी बात कहने की प्रवृत्ति और उसके द्वारा बताये गए भूत-भविष्य की बात के बारे में चाहे वे न केवल गोल-मोल हों अपितु मिथ्या भी क्यों न हों, लोगों द्वारा कोई शिकायत न करना ऐसे दो प्रमाण थे जिनके कारण योगानन्द के साधुत्व के बारे में उसका विश्वास था। वह सदाचारी, परोपकारी साधु पुरुष है, यह बात तो स्वतः प्रकट ही थी, परन्तु उसे भूत-भविष्य बताने की एक दैवीय सिद्धि प्राप्त है, उसे एक अन्तर्ज्ञान है, इस बारे में भी नायडू बाई की श्रद्धा बढ़ती जा रही थी। कभी यदि कुछ शंका होती भी थी तो वह उसकी प्रामाणिकता के बारे में नहीं किन्तु भूत-भविष्य-सम्बन्धी उसकी सिद्धि कितनी अचूक है इस बारे होती थी। मालती पर आये संकट के कारण उसके मन में जो तर्क-वितर्क उठ रहे थे उसके लिए योगानन्द की परीक्षा का उपयुक्त समय आ गया है, यह विचार भी उसके मन में स्वतः उठा।

जैसे ही मंदिर के प्रांगण में दोनों महिलाओं ने कदम रखा, एक शिष्य ने आगे बढ़कर एक निश्चित मार्ग से जहाँ योगानन्द रहता था उन्हें उस कमरे के पास ले आया। खड़े होते न होते इतनी देर से हृदय में दबे उच्छ्वास को ले तेहुए रमाबाई ने शिष्य से पूछा—'मेरी मालती कहाँ है?'

रमाबाई के इस उतावले प्रश्न की शिष्य शायद पहले से ही प्रतीक्षा कर रहा था। उसने आश्वासनदायक मुस्कराहट के साथ दोनों हाथों को आशीर्वाद देने की मुद्रा में लाकर नम्रता से सिर झुकाकर कहा, सब ठीक है। यह सुनकर रमाबाई की जान में जान आई। जितनी तेजी से उसकी

चिन्ता गई उतनी ही अधिक उत्सुकता से उसने कहा, 'बुलाओ न मालती को, वह कहीं दिखाई तो दे नहीं रही। उसे जल्दी मेरे पास लाओ।' उसकी ऐसी व्याकुल प्रार्थना पर कुछ बोलना जरूरी हो गया है ऐसा समझ शिष्य ने कहा, 'माताजी, गुरुजी महाराज अभी बुलाते हैं, घबराइये मत, गड़बड़ भी मत मचाइये।'

योगानन्द की तरह उसके शिष्य भी यथासंभव कम बोलने के अनुशासन का पालन करते थे और गुरुजी योगानन्द की आज्ञा के बिना किसी भी प्रश्न का कोई भी उत्तर सहसा नहीं दिया जा सकता था। मिलने के लिए आने वालों से योगानन्द जितने प्रश्न पूछने की अनुमति देता था उतने ही पूछे जा सकते थे। इस कठोर व्यवस्था की नायडू बाई को जानकारी थी। उसने इशारे से रमाबाई को डपटते हुए कहा, 'थोड़ा चुप रहो।'

इतने में ही योगानन्द के कमरे का दरवाजा खुला। प्रश्नों को पूछने के लिए आये दो-चार गृहस्थ बाहर निकले। एक शिष्य इन दोनों को अन्दर ले गया। वहाँ भी मालती दिखाई नहीं दी। रमाबाई को बोलने का संकेत होने पर उसने नम्रतापूर्वक पूछा :

'मेरी पुत्री मालती को कल के झगड़े से सुरक्षित निकालकर आपने मुझ पर बड़ा भारी उपकार किया है जिसे मैं जन्मभर नहीं भूलूंगी। मैं उसे लेने आयी हूँ। मेरी मालती कहाँ है ?'

योगानन्द के संकेत पर शिष्य ने उत्तर दिया, 'माताजी, आपकी पुत्री को भीड़भाड़ में से निकालकर मैं उसे आपके घर पहुँचाने के लिये ले जा रहा था परन्तु उसने कहा कि मैं अपने एक परिचित व्यक्ति के साथ अपने आप चली जाऊँगी। उसने यह भी कहा था कि वह व्यक्ति उसका निकट का सम्बन्धी है।'

'क्या कहा ?··· ऐसा कौन है ?' बुझती हुई आग जैसे पुनः भड़क उठी। उसने बड़ी व्याकुलता से कहा—'महाराज, यहाँ मेरा कोई सगा-सम्बन्धी नहीं है। महाराज, जरूर कहीं गड़बड़ हुई है।'

योगानन्द ने बड़े आत्मविश्वास के साथ अपनी तर्जनी का संकेत करते हुए रमाबाई को चुप रहने का संकेत किया। रमाबाई का उफनता आवेग उस दृढ़ किन्तु सहानुभूतिपूर्ण संकेत से कुछ दब गया। उसके हृदय में

अपनी बात कहने के लिए जो उतावलापन था वह भी शान्त हो गया।

योगानन्द अपनी आँखें बंद करके अन्तर्मुख हो गया। उसके बाद पर-दुःख से कातर वाणी में बोला :

'माता, तेरी लड़की का अपहरण नहीं किया गया। यदि भगवान की इच्छा हुई तो मैं उसे ढूंढ निकालूंगा। जितना मैं कहूँ उतना ही बोलना, जो कहूँ उसे ही सुनो। सर्वप्रथम अपने मन को मेरे हाथों में सौंप दो। अपने मन में किसी प्रकार का विचार मत आने दो। अपना मन खाली करके क्या मुझे दे सकती हो ?'

'महाराज, मैंने दिया,' यह कहकर रमाबाई जैसे वस्तुतः हृदय शून्य हो गया है इस प्रकार योगानन्द की ओर एकटक दृष्टि से देखने लगी।

शिष्य ने गुरुजी के संकेत पर एक स्वच्छ परात उनके सामने लाकर रख दी और उसमें किनारे तक पानी भर दिया। इस परात के ऊपर दीवार पर एक शीशा टांग दिया गया। परात के पास ही बत्ती जलाकर एक दीपक रख दिया गया। योगानन्द ने इस परात से कुछ पानी लेकर अपनी आँखों पर छींटे दिये और मंत्रपाठ करते हुए एकाग्र चित्त से परात के पानी को अनिमेष दृष्टि से देखना शुरू किया। सभी लोग ध्यान न बटे इस भय से श्वास भी धीरे-धीरे ले रहे थे।

थोड़ी ही देर में योगानन्द ने सिर ऊपर उठाकर नायडू बाई से पूछा, 'इसके एक बड़ा लड़का भी है न ?'

रमाबाई को यह सुनकर आश्चर्य हुआ। इसको यह बात कैसे मालूम हुई ? यह व्यक्ति तो वास्तव में अन्तर्यामी है। परन्तु नायडू बाई को कोई विशेष आश्चर्य नहीं हुआ। उसने उत्तर में कहा :

'हाँ है। मैंने आपको पहले ही बताया था कि रमाबाई का एक बड़ा लड़का था जो लड़ाई में जाकर वहीं मारा गया। इस बात को लेकर भी पाँच-सात वर्ष हो गये।'

'परन्तु वह मरा नहीं है, मैं यही कहना चाहता हूँ। इसका यह बड़ा लड़का जीवित है। यह देखो, जैसे तुम मुझे दीख रही हो वह भी उसी प्रकार मेरे सामने बैठा है। मेरे से बातें कर रहा है।'

योगानन्द के एक-एक वाक्य पर केवल रमाबाई के ही नहीं नायडू बाई

के भी शरीर में बिजली की-सी सनसनाहट दौड़ गई। रमाबाई कांपते स्वर में बोली, 'मेरा पुत्र जीवित है, हे स्वामी, तुम्हारे मुंह में घी-शक्कर।'

नायडू बाई ने आश्चर्य के इस जाल से अपने को मुक्त करते हुए पूछा : 'परन्तु यह इसका ही पुत्र है यह किस बात से मालूम हुआ ? क्षमा करें. मिथ्या आभास भी···'

'फालतू तर्क नहीं करो। सुनो उसका पुत्र कैसे है बताता हूँ। उसके माथे पर एक गहरे घाव का निशान है क्या ? इस प्रकार का घाव था न ?'

नायडू बाई को यह बात मालूम नहीं थी, इसलिए उसने रमाबाई की ओर देखा। रमाबाई थोड़ी झिझकी। बात यह थी कि उसके पुत्र के माथे पर किसी प्रकार के घाव का निशान नहीं था। परन्तु यदि यह कहे कि घाव नहीं था तो योगानन्द झूठा साबित होगा और उसके अन्तर्ज्ञान के मिथ्या होते ही उसके मृत पुत्र के जीवित होने की और अपहृत पुत्री पुनः प्राप्त होने की प्रत्यक्ष उपस्थित सुखद आशा भी घोर निराशा में बदल जाएगी।

महन्त ने पुनः कहा, 'यदि माथे पर चोट का निशान नहीं था तो स्पष्ट कहो, संकोच मत करो।'

उसके माथे पर कोई भी घाव का चिह्न नहीं था, यह कहे या न कहे' इस बात को सोचते-सोचते रमाबाई के मुख से अकस्मात् निकल पड़ा कि 'कोई घाव नहीं था।'

'देखो और अच्छी तरह याद करो। सेना में भर्ती होने के बाद तुम्हारा पुत्र लड़ाई पर गया था। बस, वहीं उसे यह घाव लगा है।'

'हाँ महाराज, ठीक है, याद आया, उसने अपने अन्तिम पत्र में लिखा था कि सिर पर कुछ आघात लगा है। आपका अन्तर्ज्ञान त्रिकाल सत्य है।'

स्वयं रमाबाई को भी जो बात आज तक नहीं मालूम थी, और जो किसी को भी विदित नहीं है उसे योगानन्द जी ने एकदम बड़ी सरलता से बता दिया और वह भी ठीक निकला, इससे नायडू बाई आश्चर्यचकित हो गई। इस बात से रमाबाई की तरह ही पूर्ण श्रद्धाभाव न रखना नायडू बाई के लिए भी संभव नहीं था। विदेश में घटित और अज्ञात इस बात को स्वामी ने उसके पुत्र की चोट और घर की सारी जानकारी अपनी अन्तर्दृष्टि

से इस प्रकार बता दी जैसे सब-कुछ उसकी आँखों के सामने है। पाखण्ड होने पर भी इसे पाखण्ड नहीं कहा जा सकता।

रमाबाई के आश्चर्य का तब कोई पारावार नहीं रहा जब योगानन्द ने कहा कि तुम्हारा पुत्र जीवित है, और पूर्णतः स्वस्थ है। इस बात को सुनकर रमाबाई का हृदय आनन्द की लहरों में इतना निमग्न हो गया कि क्षणभर के लिए मालती के अपहरण की बात उसे विस्मृत-सी हो गयी। अपनी अपहृत पुत्री की खोज करने वाली उस माँ को अपना एकमात्र पुत्र जीवित मिल गया।

योगानन्द ने पुनः कहा, 'मैं वही बता रहा हूँ जो मेरे सामने है। यह देखो तुम्हारे पुत्र का एक मित्र सामने आ गया है। हाँ अब देखो मालती दीख रही है। तुम्हारा घर नागपुर की ओर है ना ? देखो वहाँ पर मालती किसी से प्रेमालाप कर रही है। यह वही व्यक्ति है जिसके साथ मालती कल चली गई थी। बड़ी प्रसन्नता से जा रही है। जैसे तुम मुझे दीख रही हो वैसे ही वह भी दीख रही है। यह देखो वे गये, रेलगाड़ी चल पड़ी है। अरे, ये अक्षर स्पष्ट नहीं दीख रहे ? पर मालती अपने प्रेमी के साथ नागपुर की ओर चल पड़ी है। ओं ह्रोम-ह्रीम-ह्रूम वषट ! नेत्र त्रयाय फट !'

एकाग्रचित्त होकर अवधान करने के कारण थका हुआ-सा स्वामी योगानन्द इस मन्त्र का उच्चारण कर धीरे से मृगचर्म के अपने आसन पर आँख बन्द कर धीरे से लुढ़क गया। शिष्य ने अनेक और भी प्रश्न पूछने के लिए उत्सुक उन दोनों महिलाओं को हाथ का इशारा कर बोलने से मना कर दिया और उस यंत्र को उठा दिया। उसी समय कहीं से एक आवाज़ गूँजती हुई निकल गई और कहीं मंदिर के घण्टों की आवाज़ में धीरे-धीरे विलीन हो गई। उस शिष्य ने परात, शीशा और दीवट आदि को उनके निर्धारित स्थान पर रख दिया। फिर वह साँस रोककर कुछ समय के लिए गुरुजी के पास बैठ गया। गुरुजी द्वारा हाथ उठाकर संकेत करने के साथ ही उसने उन महिलाओं को स्पष्ट शब्दों में कहा, 'अब और अधिक कुछ नहीं बताया जाएगा। अब ध्यान समाप्त हो गया है। अब केवल आगे क्या किया जाए यही प्रश्न पूछा जा सकता है। योग की निद्रा की अवधि में गुरुजी जो कहें उसे ही सुनो और अधिक बात न करके चले जाओ। कल

की बात कल देखी जायगी।'

रमाबाई एक ही साँस में हजार प्रश्न करना चाहती थी। योगानन्द ने मालती के बारे में जो कुछ कहा था उससे उसके चिन्ताकुल हृदय में एक तूफान-सा आ गया था, पर वह निरुपाय थी। दबंग शिष्य की एक ही बात ने उसके सैकड़ों प्रश्नों को समाप्त कर दिया। अब एक ही प्रश्न पूछने की अनुमति थी। रमाबाई ने व्याकुलता से उसी प्रश्न को पूछा—'अब मैं आगे क्या करूँ महाराज, जिससे मेरा यह संकट टल जाय, कृपा करके···' शिष्य ने पुनः इशारा कर और बोलने से मना कर दिया।

योगानन्द ने नींद की खुमारी में एक-दो करवट ली और अस्पष्ट शब्द बोलने लगा, 'हाँ आगे ? अच्छा ? किसी को भी इधर-उधर मत बोलो। यदि लोगों को कुछ बोलोगी तो मालती बची-खुची लज्जा भी छोड़कर तुम्हारी शत्रु बन जायगी। यहाँ किसी को भी मालती के अपहरण के बारे में एक शब्द भी मत बोलो। अभी एकदम सीधा नागपुर चली जाओ। वह तुम्हें मैदान में मिलेगी। पर यदि देर करोगी और यहाँ एक रात और रुकोगी तो मिलना कठिन होगा। नागपुर से तुम्हारी लड़की कहीं और दूर चली जाएगी। जाओ, नागपुर जल्दी जाओ, मैदान में देख, देख-देख, ये देख ! मालती आ, आ बेटा आ, माँ के पास आ···जा।'

योगानन्द फिर निश्चेष्ट पड़ गया। शिष्य ने कहा, 'माताजी, आपका संकट टल गया। गुरुजी का अभिप्राय समझ गईं न ? साक्षात्कार के वे शब्द ? यदि इस शब्द का पालन करोगी तो तुम्हारी लड़की वापिस आ जाएगी। स्वयं चलकर आएगी। इस स्थान पर किसी से भी कोई बात न करते हुए, कोई शोर-शराबा न कर आज ही नागपुर रवाना हो जाओ। लोगों में बदनामी न हो, मालती और अधिक निर्लज्ज होकर कहीं दूर न चली जाय, यदि ऐसा तुम चाहती हो तो चुपचाप नागपुर जाकर तीन-चार दिन में उसे प्राप्त कर लो। बस अब जाओ। छीः-छीः ! यह क्या फल-दक्षिणा ? छीः ! माता, फूल के अलावा इस देवता को और कुछ नहीं दिया जाता। यह महन्त एक अलौकिक साधु है। वैसे तो आप लाखों साधु देखती हैं, परन्तु माताजी, यह साक्षात्कारी पुरुष हैं। अच्छा चलो। अब और मत बोलो। बाहर निकलो।' शिष्य का अन्तिम वाक्य इतनी सख्ती से कहा

गया था कि ऐसा प्रतीत होता था कि यदि स्वयं बाहर न निकलीं तो वह धक्का मारकर ही निकाल देगा। इसलिए दोनों फल-दक्षिणा वापिस लेकर चुपचाप कमरे से निकल मंदिर से भी बाहर आ गईं। रमाबाई मार्ग में कुछ कहने ही वाली थी कि नायडू बाई ने उसे मना करते हुए कहा, 'जो कुछ कहना हो रास्ते में नहीं, घर चलकर ही कहना।'

पहले वे नायडू बाई के घर ही गईं। वहाँ पहुँचते ही नायडूबाई ने पूछा, 'क्या वह व्यक्ति तुम्हारा परिचित है? तुम्हारे पुत्र का कोई मित्र मालती से क्या इतना प्रेमप्रसंग बढ़ाएगा? क्या मालती किसी के प्रेम में इतनी रम गई थी? तुमने उसे टोका था क्या?'

बेचारी रमाबाई! प्रातःकाल से ही इतने चमत्कारिक धक्कों से उसका हृदय इतना क्षुब्ध हो गया था कि उसकी विचार-शक्ति ही समाप्त हो गई थी। परन्तु नायडू बाई के अन्तिम प्रश्न से वह चौंक गई और बोली, 'नहीं नायडू बाई नहीं। मैंने अपनी मालती को कभी भी उल्टा-सीधा बोलते नहीं सुना। इसलिए स्वीकृति या अस्वीकृति का प्रश्न ही नहीं उठता। वह यदि कहीं घूमने आदि के लिए बाहर जाती थी तो अपनी सहेलियों के साथ, चाहे मंदिर हो या नाटक। कोई भी पुरुष उसके परिचय का नहीं था। मेरे पुत्र का मित्र कौन है, मैं इस बारे में क्या कहूँ! मेरा पुत्र कहाँ-कहाँ नहीं गया! पर मालती इस प्रकार भाग जायगी यह मेरा दुर्भाग्य है।'

'अरे दैव को क्यों कोसती है? आज तुझ पर देवताओं ने ही उपकार किया है। पुराणों में कही गई कथा इस युग में भी घट गई। तुम्हारा मृत पुत्र का आज पुनर्जन्म हुआ या नहीं? फिर अपहृत पुत्री से मिलने की चिन्ता क्यों करती है? मेरा कहना मान, सारे तर्क-वितर्क छोड़कर स्वामी योगानन्द के पूर्णतः सत्य प्रमाणित अद्भुत अन्तर्ज्ञान पर विश्वास करके उसने जैसा कहा है वैसा कर।' रमाबाई ने उत्तर में कहा कि 'यदि तुम भी साथ चलोगी तो मैं नागपुर जाऊँगी नहीं तो नहीं,' और वहीं जिद करके बैठ गई।

मालती का कीर्तन के भीड़-भड़क्के में किसी ने अपहरण कर लिया यह बात वहाँ किसी को भी न बताकर रमाबाई और नायडू बाई दोनों ही नागपुर के लिए रवाना हो गईं।

४. पुलिस की गिरफ्त में

रमाबाई और नायडू बाई के एकदम नागपुर चले जाने के कारण और मालती के अपहरण के बारे में किसी से भी कुछ न कहने के कारण इसकी पास-पड़ोसियों को भी कोई खबर नहीं थी, और लोगों को और पुलिस को तो कहना ही क्या ?

उस दिन रात को योगानन्द स्वामी मथुरा-निवासियों को अन्तिम दर्शन देने वाले थे। लोगों को उनके भजन-कीर्तन को सुनने का अन्तिम मौका मिल रहा था, क्योंकि यह निश्चित हो गया था कि कीर्तन समाप्त होते ही स्वामी जी का मथुरा-प्रवास समाप्त हो जायगा। इस कारण मंदिर के प्रांगण में आज और दिनों की अपेक्षा अधिक भीड़ इकट्ठी हो गई थी। अपने चार मुख्य शिष्यों के बीच में खड़े होकर योगानन्द ने वीणा लेकर भजन गाना शुरू किया। रंग जमने लगा। थोड़ी देर में स्वामीजी की आज्ञा के अनुसार उपस्थित हजारों लोगों ने भी एक स्वर से नाम का जप शुरू कर दिया। बड़े-बड़े पखावज, मृदंग, झाँझ, सारंगी और हजारों तालियों की समवेत झंकार के साथ जब हजारों लोग इस नाम-जाप का साथ देने लगे और योगानन्द ने भक्ति के आवेश में हाथ ऊपर उठाकर ताल-स्वर की गति को और तेज करने का संकेत दिया तथा द्रुत ताल में नाम-जाप का घोष गूँजने लगा, तब उस ध्वनि-समुद्र की लहरों में हृदय की थिरकन के साथ लोग अपने शरीर की भी सुधबुध खो बैठे। कई लोग भक्ति के आनन्दातिरेक में नाचने लगे, कुछ के अविरल आनन्दाश्रु बह रहे थे। नाम-घोष की गर्जन से सारा वातावरण गूंज रहा था।

अन्त में जब लय के साथ योगानन्द ने दोनों हाथ उठाकर शान्त होने का संकेत दिया, तब जैसे किसी उत्ताल संगीत के समय अकस्मात् वाद्य-यंत्र के बिगड़ जाने से संगीत रुक जाता है उसी प्रकार यह विशाल सभा एकदम निःशब्द हो गई। सभी अब साधु के मुख से कौनसा भाव रससिक्त भजन निकलता है इसकी उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे।

गाढ़ी नींद में पक्षी के घोंसले से प्रातःकाल में निकली प्रथम चह-चहाहट जैसे सुनने में बड़ी मधुर लगती है, उसी प्रकार इस निस्तब्ध सभा

के शान्त वातावरण में कुछ देर बाद सारंगी की मधुर मन्द ध्वनि उठने लगी। स्वामी जी के भजन में साथ देने वाले उनके शिष्यों ने उनकी पसन्द का मीराबाई का निम्न पद सारंगी के स्वर में स्वर मिलाते हुए गाना शुरू किया —

बता दे सखि ! कौन गली गये श्याम ?
कौन गली गये श्याम ? ध्रुव ०
गोकुल ढूंडी, वृन्दावन ढूंडी।
ढूंडी आठों ब्रज धाम ।। बता दे सखि ।।१।।

'कौन गली गये श्याम ?' इस रसीले चरण को भक्त इतनी व्याकुलता से और शब्दों को अदल-बदलकर कभी नीचे और कभी ऊँचे मधुर आलाप में गा रहे थे कि उनके भी हृदय में अपने प्रियजन की मूर्ति प्रकट हो गई। सभी को ऐसा प्रतीत होने लगा कि वे अपने प्रियजन को ढूंढ रहे हैं। 'कौन गली गये श्याम ? हे सखी ! बताओ मेरा प्रियतम किस गली में छिप गया है ? मैंने सारा गोकुल छान मारा है, वृन्दावन में भी ढूंढ आया हूँ, सारे ब्रज में भी देख लिया है, पर मेरा प्रियतम मुझे नहीं मिल रहा। हे सखी ! बताओ वह मनमोहन कहाँ है ? मेरा श्याम किस गली में है ?'

संसार में लिप्त तरुण-तरुणियों के हृदय में उनके संसारी प्रियतम की स्मृति जाग गई और भेंट की मधुर व्याकुलता ने उन्हें घेर लिया। वे पूछने लगे, 'मेरा श्याम कौन-सी गली में गया है ?'

आध्यात्म-प्रवण साधु-सन्तों और भक्तों के मन अपने प्रियतम के आकर्षण से व्याकुल हो उठे। यह जीव जन्म-जन्मान्तरों से गोकुल-वृन्दावन में जिसे ढूंढ रहा है, जिसके प्रेमाकर्षण में खिचा चला जा रहा है, रस-रूप-रंग-स्पर्श से उत्फुल्ल एक कुंज से दूसरे कुंज में उस आनन्दकंद कृष्ण भगवान की खोज में निरन्तर दौड़ रहा है। उससे मिलने की उत्सुकता व व्याकुलता से ही वह पूछ रहा है—कौन गली गये श्याम ? हे सखी ! बताओ मेरा वह देवता कहाँ है ? जिसके आकर्षण से यह जीव व्याकुल होकर युग-युगों से निरन्तर दौड़ रहा है ? जिसकी मुरली की ध्वनि को सुनने के लिए सारा जग व्याकुल है, वह मुरली कहाँ है ? मेरा श्याम कौनसी गली में गया है ?

फूलों की सुखद शैया पर सोने वाले व्यक्ति को जैसे कोई बिच्छू काट ले, उसी प्रकार इस सरस भक्ति-गायन के बीच में सात्विक सौन्दर्य से अभिभूत सभा के श्रावकों को अकस्मात् सड़क पर गुज़रने वाली दस-बारह मोटरों के भोंपू बजने की कर्कश ध्वनि सुनाई दी। मंदिर के जिस प्रांगण में कीर्तन चल रहा था उसी के तीनों दरवाज़ों पर दो-दो मोटरें रुक गईं और उन्होंने अपना भोंपू बजाना जारी रखा। योगानन्द स्वामी का यश मथुरा में भी दूर-दूर तक फैला हुआ था, इसलिए अनेक सेठ-श्रीमन्त प्रतिदिन मोटरों में कीर्तन सुनने आते थे। ऐसे लोगों में से ही किसी की ये मोटरें होंगी, परन्तु जान-बूझकर संकीर्तन के रंग में भंग करने वाले इस दुष्कर्म को करने में इन मोटर वालों को कुछ तो संकोच करना चाहिये—इस विघ्न के कारण कुछ लोग आपस में इसी प्रकार की कानाफूसी कर रहे थे। परन्तु स्वामी योगानन्द ने पहले की तरह अपना भजन-कीर्तन जारी रखा। पर इतने में ही एक हट्टा-कट्टा, ऊँचे कद का व्यक्ति आँगन के सामने के दरवाजे से अन्दर चला आया और बड़ी धृष्टता से अपना रास्ता बनाते हुए मंच की ओर बढ़ा जहाँ योगानन्द अपनी भजन-मण्डली के साथ कीर्तन-रत था। आस-पास के लोग उसे चिल्लाकर कह रहे थे—नीचे बैठ जाइये, महाशय, नीचे बैठिए! परन्तु इस चिल्लाने और आक्रोश की ओर कोई ध्यान न देते हुए यह व्यक्ति मंच पर पहुँच गया। लोग सोचने लगे कहीं भक्ति की तन्यमता में इसके शरीर में देवी तो नहीं आ गयी? या यह कोई आधा पागल तो नहीं है जिसे इतनी भीड़ को देखकर शराबी की तरह नशा चढ़ गया है? पर यह व्यक्ति अर्ध-विक्षिप्त भी मालूम नहीं पड़ता था। उसकी वेश-भूषा साफ-सुथरी थी, मुख-मुद्रा भी सौम्य और गरिमापूर्ण थी। यह देखकर ही योगानन्द की शिष्य-मण्डली ने उससे नम्रता पूर्वक पूछा, 'आपको क्या चाहिए? इस प्रकार एकदम मंच पर आना सभा के नियमों के अनुकूल नहीं है।'

पर इनकी बात को सुनी-अनसुनी करके वह व्यक्ति सीधा योगानन्द के पास गया और कहा, 'आपको एक बड़ा व्यक्ति मिलने के लिए बाहर बुला रहा है, आप बाहर चलिये।'

योगानन्द ने स्वयं उत्तर न देते हुए अपने शिष्यों को संकेत किया।

शिष्यों ने कहा, 'उस बड़े व्यक्ति को मंच पर ही ले आइये। हमारे स्वामी जी केवल देवालय ही जाते हैं, किसी व्यक्ति के सामने नहीं।'

इस व्यक्ति ने शिष्यों की बात पर ध्यान न देकर योगानन्द से डपटकर कहा, 'तुम्हें ही बाहर चलना होगा। चलो!'

इस डपट को सुनते ही योगानन्द चौंक गया और शंकित भाव से कहा, 'जब तक भजन चल रहा है मैं नहीं आ सकूंगा।'

'यदि तुम अपने-आप नहीं चलोगे तो मैं तुम्हें ले चलूंगा। चलता है या नहीं?'

शिष्यों ने कुछ क्रोध में कहा, 'ऐसी उद्दण्डता से कोई लाभ नहीं। ऐसा कौन-सा है वह बड़ा व्यक्ति? नाम बताओ?'

'पोलिस सुपरिंटेण्डेण्ट साहब।'

इस नाम के साथ ही योगानन्द स्वामी की वह प्रसन्न मुद्रा ही नहीं अपितु नख-शिख से परिपूर्ण उसकी भक्ति-भावना ही जैसे एकदम पलटा खा गई और वह एक अलग ही पिशाच, हत्यारा और पशु की तरह दीखने लगा।

पोलिस सुपरिंटेण्डेंट का नाम बताने से पहले ही योगानन्द ने मंच पर आये व्यक्ति की नाक पर एक जोरदार मुक्का मारा और तेजी से भाग निकला। नाक पर जोरदार मुक्का लगने से कुछ चक्कर आने पर भी इस व्यक्ति ने अपने को संभाला और वह भी योगानन्द के पीछे भागा, पर उसकी दौड़ योगानन्द से आधी ही थी। उसके चारों शिष्य भी अपने धारवाले चिमटों को लेकर योगानन्द के साथ ही भाग निकले। इतनी भीड़ में इन साधुओं के इस प्रकार भागने से सभास्थल में बड़ी गड़बड़ हो गई। चिल्लाते हुए लोग खड़े हो गये और धक्का-मुक्की शुरू हो गई।

यह सब घटना इतनी तेजी से घटित हो गई कि जिस ओर से साधु भाग रहे थे वहां के लोगों द्वारा चिल्लाते हुए उठ खड़े होने से सभा की दूसरी ओर क्या हो रहा है यह कहा नहीं जा सकता था। जिनके साथ धक्का-मुक्की करके योगानन्द भाग रहा था उन्हें भी इतना ही दीखा। इनको भी क्या हो रहा है इसकी कोई कल्पना तक नहीं थी। वे एक-दूसरे से ही पूछ रहे थे कि: 'क्या हो गया? कैसे हुआ? यह सब कैसे हो गया? क्या हो

रहा है ?' ऐसे प्रश्न मन में लाने का समय भी नहीं था। पूरी शक्ति से भागते हुए यह साधुमंडली भीड़ में घुसकर जबरदस्ती अपना रास्ता बनाते हुए एक प्रकार से अदृश्य हो गई। सैकड़ो लोगों की चिल्लाहट और भगदड़ इन साधुओं के भागने में सहायक हो रही थी। कोई कह रहा था, 'स्वामी जी के शरीर में हनुमान जी आ गये हैं। महावीर का संचार हुआ है। इसलिए उड़ान भरते हुए रामचन्द्रजी के मंदिर की ओर जा रहे हैं।' दूसरा कह रहा था, 'किसी पागल के दुर्व्यवहार से स्वामी जी रुष्ट होकर जा रहे हैं।' अनेक लोग उस शांत भक्तिरस में विघ्न पड़ने से क्षणभर के लिए चेतना-शून्य-से हो गये। कुछ को ऐसा लग रहा था कि हम नाटक देख रहे हैं और भक्तिरस के दृश्य के बाद कोई भीषण दंगे और भगदड़ का दृश्य आ गया है।

पुलिस सुपरिंटेण्डेण्ट का संदेश लेकर जिस मुख्य द्वार से वह व्यक्ति आया था, उस द्वार से निकलने का प्रयत्न न कर साधुमण्डली ने बड़ी बुद्धिमत्ता से दूसरे द्वार से भीड़ में घुसकर निकलने का प्रयास किया। इस द्वार पर बड़ी संख्या में ऐसे लोग ही बैठते थे जो भजन में भाग लेने के लिए प्रतिदिन ही आते थे; ये बड़े भक्त दिखाई देते थे और सबसे पहले आकर बड़े श्रद्धाभाव से अपने स्थानों पर बैठ जाते थे। योगानन्द के मन में यह बात आई कि इन श्रद्धालु भजन-प्रेमी लोगों के निकट स्थित द्वार से आराम से बाहर जाया जा सकता है। जिस दरवाजे से पुलिस सुपरिंटेण्डेंट का सन्देश आया था, पुलिस का भी वहीं खड़ा होना संभव है, इस बात को विचारकर उस चतुर स्वामी और उसके शिष्यों ने सामने का दरवाजा छोड़कर श्रद्धालु लोगों की भीड़ वाले दरवाजे की ओर धावा बोला। अपने पीछे आनेवाले उस सन्देशवाहक के हाथ से बचकर वे साधु भक्तों के द्वार की ओर बढ़े। उन्हें लगा कि एक दौड़ और लगा वे दरवाजे से बाहर हो जायेंगे। ऐसा सोचकर पाँचों साधु उसी ओर बढ़े और बड़ी घबराहट में भक्तों से 'रास्ता देने' को कहा।

परन्तु अकस्मात् ही उस द्वार पर स्थित भक्तों की यह भीड़ एक पंक्ति में खड़ी हो गई और उसने उन पाँचों के चारों ओर घेरा डाल दिया। प्रत्येक ने अपनी पिस्तौल निकाल उन साधुओं की ओर तान लिया। इनके

नेता ने योगानन्द को आज्ञा के स्वर में कहा, 'रुक जाओ ! एक कदम भी आगे बढ़ाया तो भून दिये जाओगे !'

वैष्णवी तिलक, वैष्णवी मुद्रा और माला, भगवा कपड़े धारण करने वाले और भजन में तल्लीन रहने वाले, प्रतिदिन नियम से सबसे पहले आने वाले भावुक और सीधे, सरल दीखने वाले ये श्रोता एकदम ही पिस्तौल तानकर सयंमशील सत्पुरुषों के विरुद्ध खड़े हो गये। देवता का अवतार और भगवद्भक्त कहकर जिन साधु के ये पैर छूते थे, उन्हीं के प्राण लेने के लिए ये संगठित होकर खड़े हो गये थे। सैकड़ों लोग आपस में कानाफूसी कर रहे थे, 'ये सब क्या हो रहा है ?' बहुत-से भयभीत लोग मंदिर के आँगन से बाहर जाने लगे। कुछ के मन में सहानुभूति जागी और यह भी कहने लगे कि इन धर्मपरायण साधुओं को मुक्त कराने के लिए कुछ किया जाय।

स्वामी योगानन्द को अब स्पष्ट हो गया कि अनेक रूपों में और अनेक ढोंग रचकर तीनों दरवाजे पर प्रतिदिन आकर बैठने वाले भक्त गुप्त पुलिस के ही आदमी हैं। इनका यह कपट उसे पहले नहीं मालूम पड़ा। फिर भी इनके पंजे से कैसे भी निकलना चाहिये। उसने एक अन्तिम उपाय के रूप में चिल्लाकर उस भागने वाली भीड़ को ललकारते हुए कहा, 'क्या यहाँ कोई भी धर्म का अभिमानी व्यक्ति नहीं है ? हे प्रभु, अब तू ही भक्तों की रक्षा कर !'

इस आह्वान से सभा में आये अनेक लोग उत्तेजित हो गये। उन्हें महन्त के बारे में जो कुछ भी मालूम था वह श्रद्धा बढ़ाने वाला ही था। इस अपरिग्रही, निर्लोभी स्वधर्म-प्रचारक भक्त पर कहीं मिशनरी आदि परधर्मी लोगों ने तो कोई षड्यंत्र नहीं रचा ? इस भावना से कुछ साहसी और स्वधर्माभिमानी लोग आगे बढ़े। पुलिस पर कुछ पथराव भी हुआ। गाली-गलौच की तो बात ही क्या !

इतने में ही मुख्य द्वार से लाठीधारी पुलिस की टुकड़ी के साथ स्वयं पुलिस सुपरिंटेण्डेंट अन्दर आ गया। वह मंच पर आया और गरजती आवाज में सब लोगों को सम्बोधन करके बोला—

'हे लोगो ! योगानन्द नामधारी इस व्यक्ति ने यहाँ आज तक जो

आडम्बर रचा था उससे आपके लिए यह समझना स्वाभाविक था कि यह एक महान भगवद्-भक्त है। परन्तु हमें इसके बारे में जो जानकारी है उसे यदि आप सुनें तो आपकी जो सहानुभूति है वह सर्वथा अनुपयुक्त व्यक्ति के प्रति है, यह आपको मालूम हो जायगा। स्वामी का स्वांग भरकर वैसा ही आचरण करने वाले इस योगानन्द का असली नाम सुनकर आप चकित हो जायेंगे। योगानन्द का असली नाम रफीउद्दीन अहमद है। यह पंजाबी मुसलमान है। इसको अत्यधिक क्रूरता से डाका डालने के दो आरोपों में पूर्वी पंजाब में सात वर्ष के काले पानी की सजा हुई थी। परन्तु यह चार वर्ष सजा काटने के बाद जेल से भाग निकला। पिछले दो वर्ष से इसने इन चारों शिष्यों की तरह अनेक दुष्ट लोगों के सहयोग से पुनः चोरी, डाके, अपहरण आदि भयंकर कार्य करने शुरू कर दिये हैं। पिछले वर्ष पुलिस ने इसके दल को एक जंगल में घेर लिया था, परन्तु इसने अचानक पुलिस-अधिकारी पर गोली चलाकर उसे घायल कर दिया और उसी के घोड़े पर सवार होकर भागने में सफल हो गया। उसके बाद इसका कुछ पता नहीं चला। योगानन्द ही रफीउद्दीन है यह शंका होने पर उसके मथुरा से यहाँ आने पर इसके भजन में गुप्त पुलिस विभिन्न वेशभूषा में सभी दरवाजों पर सख्त पहरा देती थी जिससे कि इसकी पूरी जानकारी मिलने पर बाहर निकलते ही इस अपराधी को उसके साथियों के साथ ही अचानक गिरफ्तार किया जा सके। सब प्रमाण मिलने, सब खानापूरी कर लेने तथा इसके ही एक साथी की ही सूचना पर इलाहाबाद से जारी यह वारंट हमारे पास है। यह आज शाम को ही हमें मिला। यह टोली आज भजन समाप्त होते ही यहाँ से जानेवाली है, यह सूचना मिलने पर भजन-गायन के बीच में ही इन्हें पकड़ने का निश्चय किया गया। एक-दो व्यक्ति को यह कुछ समझता ही नहीं है इसलिये यह सशस्त्र छापा डालना पड़ा। एक साधु के प्रति कोई छल किया जा रहा है, यह समझकर आपमें से कोई दंगा-फिसाद न करें इसलिए मैंने आपको यह सब स्पष्ट कर दिया है। इस-लिए अब आप सब दस मिनट में ही मंदिर का आँगन खाली करके चले जायें। इसी तरह मार्ग में भी कल सायंकाल तक किसी प्रकार का जमाव नहीं होना चाहिये। ऐसे जमाव को पुलिस को तितर बितर करने के लिए,

लाठी का प्रयोग भी करना पड़ सकता है। वारण्ट के अनुसार हमने अपने कर्तव्य का ही पालन किया है। इसके बाद सच-झूठ क्या है इसका निर्णय न्यायालय करेगा। पुलिस को भी यह निर्देश है कि वह भी दस मिनट में इन पाँचों अपराधियों को बेड़ियाँ डालकर जेल ले जाय और मंदिर का प्रांगण खाली कर दे।

दस मिनट की अवधि में ही पाँचों साधुओं के हाथ-पैरों में बेड़ियाँ डालकर उन्हें जेल ले जाया गया और साथ ही सारी भीड़ मंदिर से चली गई और वहाँ एक चिड़िया भी नहीं रही। परन्तु यह पकड़ा गया साधु कौन था? योगानन्द या रफीउद्दीन अहमद? और मालती? उसका क्या हुआ।'

५. इलाहाबाद की जेल

इलाहाबाद जेल के कैदियों पर कड़ी निगरानी रखने वाले जमादार को जेलर ने यह कठोर आदेश दिया कि आज काले पानी से भागे हुए भयंकर डाकू रफीउद्दीन को उसके साथियों के साथ जेल में लाया जा रहा है, अतः किसी भी कैदी को इस बात की कोई पूर्व-सूचना न हो ऐसी कड़ी व्यवस्था की जाय। यदि इसमें कुछ गड़बड़ हुई तो जमादार को ही बेड़ियाँ डाल दी जायेंगी।

जेलर के इस आदेश को सुनकर उसके सामने सीधे खड़े मुसलमान जमादार ने अंग्रेजी ढंग से सैनिक सेल्यूट मारते हुए कहा—

'जी हजूर, होगा वह बड़ा डाकू, पर मैंने इस जेल में ऐसे छप्पन डाकुओं को अपने सामने मेमना बना दिया है। वह काले पानी से भागा होगा, पर यहाँ लाल पानी है। यह एक डण्डा पड़ा नहीं कि खून की उल्टियाँ करने लगेगा। उसकी कमर ही तोड़ डालूँगा।' जमादार ने कमर में लटकते डण्डे को एक बार फिर हवा में घुमाते हुए कहा, 'कमर ही तोड़ डालूँगा।'

'नहीं-नहीं,' जेलर ने कहा—'मारपीट नहीं करनी है। वह गुण्डा है। तुम्हारी करामात इसी में है कि तुम उसे पुचकारकर अपने वश में करो।

मारपीट तो तुम करोगे, पर बाद में बात मुझे सँभालनी पड़ेगी।'

'अच्छा हजूर ! डण्डे को पुनः कमर में लटका लेता हूँ और इस जीभ का ही प्रयोग करूँगा। हजूर, यह डण्डे से भी अधिक करामात दिखाती है। इस डण्डे से आदमी घायल होता है, पर जीभ से वह मर ही जाता है। तलवार से सिर काटकर प्राण लिया जा सकता है पर उससे रक्त बहता है, जीभ से सिर को वैसा ही रखकर प्राण लिये जा सकते हैं, और प्रमाण के लिये खून की एक बूंद भी नहीं मिलेगी। इसलिये तलवार से की गई हत्या पकड़ी जाती है और जीभ से जिसे मारने की कला आती है उसके सौ खून माफ।'

'चुप रह !' फिर बकवास शुरू कर दी ! जेलर ने डपटकर कहा, 'जा-जा, तेरे डण्डे की तरह तेरी जीभ को भी सँभालते-सँभालते मैं परेशान हो गया हूँ।'

'अच्छा साब ! जैसे डण्डे को कमर से लटका लिया उसी प्रकार जीभ को भी लटका लेता हूँ।' एक बार और सलाम ठोककर जमादार बाहर हो गया।

'अरे जमादार, अन्दर आ ! हमारा बूट किधर है, डैम फूल ! तू भूल गया, जा ला।'

जेलर की यह गाली अपने भुलक्कड़पन पर आश्चर्य व्यक्त करने वाला कोई अंग्रेजी शब्द है, ऐसा समझकर जमादार ने यह सुनते ही लज्जा से अपनी जीभ बाहर निकालकर दिखाई और साथ ही लज्जा से अपना मुँह ढकते हुए थोड़ा हँसा और चटपट बाहर जाकर उसके बूट ले आया। अपना मुँह पोछने से लेकर सामान बाँधने तक काम आने वाले अपने रूमाल से बूट पोंछकर उसने उन बूटों को जेलर के सामने धीरे से रखा और रूमाल साफ करने के लिए उसे थोड़ा झटका। जेलर ने अपने मुँह से सिगरेट निकालते हुए कहा :

'रूमाल क्यों झटकता है ? मेरे बूट से तेरा रूमाल गन्दा नहीं हुआ, तेरे रूमाल से मेरा बूट ही मैला हो गया है।'

'सच बात है हजूर। आपका बूट ही मेरा अन्नदाता है। आपकेबूटों की गत बारह वर्षों से सेवा करने के कारण ही तो मैं आज सिपाही से

जमादार हो गया हूँ ।'

जमादार फिर बकवास शुरू न कर दे तथा उसे कोई बोलने के लिए नया विषय न मिले, इस भय से जेलर ने पास ही टाइप करने वाले क्लर्क की ओर मुखातिब होकर कहा :

'अच्छा दादा, तुम अपने कागज दिखाओ, किस पर मेरे हस्ताक्षर कहाँ होने हैं बताओ ।'

जमादार के चले जाने पर उस अर्ध गोरे जेलर ने उस क्लर्क से कहा, 'यह गलाकाटू कितना मीठा बोलता है ! कैदी से बेरड बनना तो ठीक लगता है, पर सिपाहियों में बेरड बनना पसन्द नहीं ।'

क्लर्क को मालूम था कि नाम न लेने पर भी जेलर ने अपने वाक्य में यह भी कह दिया है कि उसकी गणना दूसरे वर्ग में ही है। जेलर क्लर्क के सामने उस सिपाही के बारे में अपना जो अभिमत प्रकट कर रहा था वही अभिमत वह क्लर्क और सिपाही जब इकट्ठे बैठते थे तब जेलर के बारे मे प्रकट करते थे। इसलिए प्रायः ऐसा घटित होने के कारण कोई भी अपने पीठ-पीछे कही गई किसी भी बात को महत्व नहीं देता था । एक-दूसरे की खरी-खोटी बात सबको मालूम होने के कारण तथा प्रत्येक की बंद मुट्ठी में एक-दूसरे की भागीदारी के कारण गत बारह वर्षों से जमादार, यह दादा और जेलर इस जेल के कारोबार को एक सम्मिलित कुटम्ब की तरह एक-दूसरे को सँभालते हुए बड़े प्रेमपूर्वक चला रहे थे। नये-नये सुपरिंटेंडेंट आते और चले जाते, परन्तु जैसे यह जेल अटल थी उसी प्रकार ये तीनों संयुक्त कुटुम्ब भी गत बारह वर्षों से यहाँ अटल रूप में बने हुए थे।

जेलर की आज्ञा सुनकर जमादार जेल के अन्दर जाते हुए कुछ सोचता जा रहा था। लोहे के दो दरवाजे पार करने के बाद अन्दर के एक आँगन में पैर रखते ही उसने जोर से आवाज दी :

'शिवराम ! ··· शिवराम हवालदार कहाँ है ? बुलाओ उसे !'

थोड़ी ही देर में शिवराम हवालदार लम्बी साँस लेता हुआ, अपनी धोती को ठीक-ठाक करते हुए आया और सीधा खड़ा होकर उसने सलाम बजाया। उसके साथ आये और लोगों को चले जाने का आदेश देकर जमादार ने अकेले रह गये शिवराम से कहा :

'शिवराम, आज काले पानी से भागने के बाद पकड़े गये एक डाकू कैदी को तथा उसके कुछ साथियों को इस जेल में रखने के लिए लाया जा रहा है। जेलर साहब का सख्त आदेश है कि इस बात की किसी को कानोंकान खबर न हो।'

'अच्छा जमादार जी !'

'अच्छी प्रकार बात सुन। इस भयंकर डाकू को उस ओर के फाँसी के चौक वाली अकेली कोठरी में बंद करना है। मेरे और तेरे सिवाय यह बात और किसी को मालूम नहीं होनी चाहिये।'

'जेलर साहब और सुपरिंटेंडेंट साहब को भी नहीं ?'

'गंवार मत बन। मजाक में दाँत दिखा रहा है, कभी ये ही बाहर आ जायेंगे। किसी भंगी बावर्ची और माशकी को तू अपने साथ या मैं होऊँ तो मेरे साथ वहाँ ले जाना। किसी को भी उस डाकू से यदि बोलता हुआ देख लिया तो तेरा गला ही घोंट दूँगा।' बड़ी कड़कदार आवाज़ में यह बात कहकर उस अभिनय पर जमादार ने उस आत्मीय हवालदार की गर्दन पर हाथ मारते हुए कहा :

'किसी को भी उससे बोलने नहीं देना।'

'अरे रे, अभी से गर्दन क्यों दबोचता है ? मैं किसी को बोलने दूँ तब न ! कौन-से बेवकूफ बाप का बेटा है जो उस डाकू से बोलने आयगा, आये तो सही कोई ? वह चाहे इस जेल का जमादार ही क्यों न हो ? नहीं, नहीं जमादार साहब, मैं क्षमा माँगता हूँ। आपकी आज्ञा का पालन मैं कितना अक्षरशः करूँगा इसे बताने की झोंक में मैं कुछ का कुछ कहा गया।'

'अरे भाई, जितना जरूरी है उतना ही तू बोल। शिवराम सुन ! इस संकट के समय में यदि बात करने का अवसर आये तो तू ही उस डाकू से बात करना। मैं एक शब्द भी नहीं बोलूँगा। पहले तो सबको ठीकठाक लाना। इस काम में तू पक्का पातालयंत्री है। इसीलिये मैं तुझे हमेशा ऐसे विश्वासपूर्ण कार्य सौंपता हूँ। सुन, जब कभी ऐसे भयंकर डाकू आते हैं तभी हमारे-तुम्हारे लिये हलवा-पूरी बनने का मौका आता है। ऐसे लोग खाली नहीं होते हैं। गिन्नियाँ होंगी तो इन्हीं की गाँठ में। ये जो सैकड़ों मुक्खड़ चोर इस जेल में आते हैं उनके पास होता ही क्या है और

हमारी मुद्रा में भी क्या आता है ? वह इस जेल से भागन सके ऐसी कठोर व्यवस्था हमने कर दी तो हमारा सारा कर्तव्य पूरा हो गया। बाकी वह जैसा चाहे उसे अन्दर चैन उड़ाने दो। यदि हमें कोई जरूरत होगी तो हम अपनी मुट्ठी गरम कर सकेंगे। पर यह काम बड़ी सावधानी से होना चाहिये भला ! पहले देख लेना वह व्यक्ति कैसा है, नहीं तो ब्रह्महत्या हो जाएगी, आया ध्यान में ? अब जा वह चौक आँगन और वह कोठरी खाली करके, साफ करके ताला बंद करके रखना। ये कैदी शाम तक आ जायेंगे और किसी से भी इनके बारे में एक शब्द भी नहीं कहना है।'

'इसकी चिन्ता बिल्कुल न करो' ऐसा आश्वासन देकर शिवराम हवालदार फाँसी वाला चौक साफ करने के लिए चला गया। उसने सर्व-प्रथम अपने एक विश्वासी कैदी को बुलाया। आठ-दस वर्ष की लम्बी सजा वाला यह कैदी अपने कार्य की तत्परता के कारण मुकादम हो गया था। शिवराम हवालदार ने कैदियों के इस मुकादम को फाँसीवाले अप-राधियों के लिये तथा अन्य भयंकर कैदियों को भी अन्य कैदियों से अलग रखने के लिए कभी-कभी उपयोग में आनेवाले कोठरियों, चौक और आँगन को साफ-सुथरा करने का काम सौंपा और आज्ञा देते हुए कहा :

'आज इस चौक को खाली और साफ किया जा रहा है यह किसी को मालूम न हो। अब तक कभी नहीं हुआ ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए। आने वाला बड़ा भयंकर अपराधी है।'

मुकादम की उत्सुकता बढ़ गई। यदि सीधी तरह पूछूं कि यह अपराधी कौन है तो हवालदार बात को गुप्त रखने के लिए और अकड़ जायगा। यह सोचकर उसने दूसरे ढंग से कहा :

'हमारे अहाते के हवालदारजी पिछले वर्ष जब काले पानी की सजा-वाले बड़े-बड़े डाकू यहाँ लाये गये थे तब काले पानी के लिए रवाना होने तक आपके आशीर्वाद से मैंने ही उन्हें सँभाला था न ! तुम्हीं ने उनकी चिट्ठियाँ दी थीं। बाजार में जेल का सामान बेचने के लिए ले जाते हुए उनके घरों को किसने पहुँचाईं ? खूब सारा 'हलकुण्ड' (सोना) कौन लाया था ? हवालदारजी, इस पट्ठे ने ही अपनी जान की बाजी लगा दी थी।'

'अरे काला पानी जाने वाले अपराधियों की अपेक्षा काले पानी से भाग

जाने वाला अपराधी कितना भयंकर होगा कुछ मालम है ?'

'अच्छा तो अपराधी कोई काले पानी से भागा हुआ कैदी है···?'

'चुप, मैं इस बारे में कुछ नहीं बताऊँगा। अच्छा मुकादम, यदि यह व्यक्ति कुछ ठीक निकला तो इसके भी पत्र ले जायगा न ? क्या काले पानी से आया है यह समझ कर उसके सामने दुम हिलाने लगेगा ? जो कुछ भी हलकुण्ड मिलेगा उसमें से ही वर की तरह तेरे हाथ पीले कर देंगे।'

मुकादम को जिस बात की जानकारी चाहिये थी वह उसे मिल गई। उसने मन में कहा—हलकुण्ड का कोई भी काम मेरी पसन्द का है। काले पानी से भागकर आने वाला व्यक्ति कोई भेड़िया थोड़े ही होता है ?

मुकादम को लेकर हवालदार फाँसी के आँगन में गया। मुकादम के अधीन कैदियों ने चौक, कोठरियाँ, बड़ी फुर्ती से साफ करनी शुरू कर दी है तथा उन्हें प्रेरणा देने के लिए गालियों और डण्डे की भी बौछार हो रही है यह देखकर हवालदार उस अकेली कोठरी में अपना पट्टा उतारकर पगड़ी एक ओर रखकर पैर पसारकर लेट गया। मुकादम ने एक कैदी लड़के को उसका शरीर दबाने के लिए भी भेज दिया। इस विश्राम के आनन्द में उसने आँगन के बड़े दरवाजे के अन्दर का ताला लगाने की भी आवश्यकता नहीं समझी।

इतने में अकस्मात् ही जैसे किसी पर भूत चढ़ गया हो इस प्रकार आवेश में दौड़ते हुए जेलर, उसके पीछे जमादार और दो-तीन सिपाही उस खुले फाटक के चौक में घुस गये।

जेलर ने चिल्लाकर कहा, 'हवालदार किधर है ? हवालदार !'

मुकादम ने इधर या उधर है ऐसा कुछ अस्पष्ट-सा कहा और हवालदार को उसके दैव पर छोड़कर वह अपने काम में मुस्तैद है यह दिखाने के लिए उसने कैदियों को ये करो, ऐसा करो आदेश देने लगा। और जमादार से कहा, 'सब साफ और ठीक-ठाक हो गया है।'

जेलर फिर गरजा, 'कहाँ है वह साला हवालदार' और इसके साथ ही उसी कोठरी के दरवाजे पर पहुँच गया। उसने जल्दी में उठते हुए हवालदार को देखा। जेलर की पहली गर्जना सुनते ही हवालदार के होश उड़ गये। सब कुछ सँभालकर जल्दी से उठने की उसने यथासंभव कोशिश की,

पर अभी सँभल ही रहा था कि जेलर आकर सामने खड़ा हो गया। जिस पैर को लड़का दबा रहा था उस पैर का बूट और पिंडलियों पर बाँधी जाने वाली पट्टी उतरी हुई थी पर दूसरे पैर में पट्टी और बूट बँधे हुए थे। जल्दी-जल्दी में सिर पर पहनी गई पगड़ी तिरछी बँध गई थी। उसका एक किनारा पहलवानों की पगड़ी की तरह लटककर छाती पर आ गया था। कमर का पट्टा कोठरी के एक किनारे पड़ा था और फाटक की चाबियों का गुच्छा उस कैदी लड़के के हाथ में ही लटक रहा था। हवालदार की इस अस्तव्यस्त स्थिति को और एक पैर में बूट पहने खड़े उस हवालदार पर क्रोध आने पर भी जेलर हँसे बिना न रह सका।

'क्यों जमादार! तुम जो सदा कहते रहते हो कि किसी भी संकट के काम में शिवराम एक पैर पर सिद्ध है, वह बिल्कुल ठीक है। देखो, वह एक ही पैर में पुलिस की पोशाक पहनकर एक ही पैर पर खड़ा है। दूसरे पैर में उसने बूट तक नहीं पहना। क्यों रे! अपना यह दूसरा पैर बिना बूट के ही रखना है तो यह भद्दे ढंग से क्यों, मैं तेरे इस पैर को तोड़ ही डालता हूँ चोर, ठहर।' यह कहकर क्रोध से जेलर ने शिवराम के नंगे पैर पर एक लाठी जमा दी।

'हाय हाय! जेलर साहब, आपके पैर पड़ता हूँ। मेरी बात तो सुन लीजिए। तेजी से चलते हुए मेरे पैर की पिण्डली का गोला ऐसा चढ़ गया कि मैं चिल्लाकर नीचे गिर पड़ा। इसलिए इस कोठरी में अपने पैर का गोला उतरवा रहा था सरकार! कृपासागर, इसमें जो कोई भूल हो उसे क्षमा करें।' हवालदार ने झट बात बनाते हुए कहा।

'क्षमा कैसी? ड्यूटी पर होते तू पट्टा खोलकर पैर फैलाकर यहाँ सो गया। आज तुझे माफ करूँगा तो कल सभी सिपाहियों के पिण्डलियों के गोले जब इच्छा हुई चढ़ जायेंगे। वह पट्टा इधर लाओ। जमादार, इस कमर के पट्टे को इसके गले में कुत्ते के पट्टे की तरह बाँध दो। हाँ, ऐसे अब ठीक है। अब इसे ऐसे ही जिसके एक पैर में बूट है, तिरछी पगड़ी और उसका किनारा लटक रहा है, कुत्ते की तरह पट्टा बँधा है, सभी कैदियों के सामने घुमाकर कार्यालय के बड़े फाटक तक लाओ। चलो, इसके बाप का—सुपरिंटेंडेंट साहब का—मुझे टेलिफोन आया है कि डाकुओं की एक पकड़ी

गई टोली यहाँ आने वाली है और तू यहाँ पैर की मालिश करवा रहा है ? चला !'

सबके सामने हवालदार का विचित्र रूप था। उसके पीछे रूमाल से अपनी हँसी छिपाते हुए जमादार, उसके पीछे मुकादम, फिर कैदी, इस प्रकार एक जुलूम-सा चला। बीच में कैदियों के बैरकों के बीच से भी जाना पड़ा, वे भी सब हँसते हुए मजा ले रहे थे। सबसे पीछे मन में हँसते हुए पर ऊपर से क्रोध दिखाते हुए वह अर्ध-गोरा जेलर चलते हुए जेल के मुख्य द्वार पर कार्यालय के पास पहुँचे।

वहाँ जेलर क्या देखता है कि इस भयानक जेल के मुख्य लोहे के द्वार की सलाखों को पकड़े बाहर की ओर एक गोरा सार्जेण्ट खड़ा है और उसके साथ बंदूक लिए पाँच-दस सिपाही भी हैं। बाहर ही उसे हाथ-पैरों से बँधी बेड़ियों की खनखनाहट भी सुनाई दी। जेलर समझ गया कि डाकुओं का जो दल आने वाला था वह आ गया है। इस बाह्य संकट का सामना करने के लिए गृहकलह समाप्त करना और विश्वासी जमादार और हवालदारों को परस्पर मिलाना आवश्यक था। इसलिए जेल के राजनीतिक बखेड़े को समाप्त करने के लिये जेलर ने तत्क्षण जमादार से कहा :

'शिवराम को छोड़ दो। उसको काफी सजा मिल गई है। उससे कहना फिर ऐसा कभी न करे।'

जमादार उससे यही प्रार्थना करने वाला था। शिवराम काम का आदमी था। जेल के अन्दर की हेराफेरी उसी के हाथों होती थी। इस हेराफेरी में जेलर महोदय की भी पत्ती थी। जमादार और जेलर के बीच का यह सम्वाद आँखों-आँखों में ही हो गया। दोनों एकमत थे। शिवराम हवालदार के शरीर पर पुनः दोनों बूट, पट्टा, पगड़ी, चाबियों का गुच्छा शोभित होने लगे और वह 'अबे गधे इधर आ, ए चोर ऊपर जा' इस तरह के नियंत्रणकारी आदेश देता हुआ अपने अधीनस्थ मुकादम कैदियों और जेल के वार्डों में पूर्ववत् घूमने लगा।

जेल का बड़ा और भारी दरवाजा कर्कश ध्वनि के साथ खुला। सार्जेण्ट हाथ-पैरों में बँधी बेड़ियाँ खनखनाते हुए कैदियों के साथ अन्दर आया।

जेलर ने उसके सामने आकर लोहे के दूसरे दरवाजे को खोला। मुख्य जेल के भयानक पर भव्य आँगन में उन दस-बाहर डाकुओं को एक पंक्ति में खड़ा कर दिया। उन पर निगरानी रखने का काम शिवराम को सौंपकर कार्यालय में आकर सार्जेण्ट द्वारा लाये गये कागजों को देखने-समझने लगा।

दूसरी ओर वह मुकादम जेल के अन्दर अपने विश्वासपात्र बंदियों को बता रहा था कि आज काले पानी से भागे हुए किसी भयंकर अपराधी को इस जेल में लाया जा रहा है, तथा इस बात को वे किसी अन्य को न बतायें।

इन बंदियों ने अपने अन्य साथी बंदियों को और उन्होंने अपने साथियों को और इस प्रकार सारे जेल में इस शर्त के साथ कि किसी अन्य को इसे न बताया जाय, यह बात फैल गई कि काले पानी से भागे हुए कुछ डाकू इस जेल में आने वाले हैं। इसलिए जिनको कोई मौका मिल गया वे कैदी, वार्डर, मुकादम और सिपाही इन कैदियों को देखने के लिये उस आँगन के आस-पास घूम रहे थे। सिपाहियों की एक टुकड़ी भी वहाँ खड़ी थी। इतने सारे लोगों के सामने इन भयंकर डाकुओं पर अपनी महत्ता प्रकट हो रही है, यह गर्विष्ठ भावना शिवराम हवालदार के हृदय में ही सीमित नहीं रही। उसने अपने कड़े नियंत्रण, अनुशासन का प्रदर्शन कर सब पर अपनी छाप डालने की उत्कट इच्छा को मूर्त रूप देने के लिये तथा डाकुओं को शुरू में ही भयभीत करने के लिए एक कुछ सीधा दीखने वाले डाकू को बिना कारण लाठी चोभते हुए कहा :

'अरे सीधा खड़ा हो। ये तेरा घर नहीं, इलाहाबाद की जेल है। सभी को अनुशासन में खड़े रहना चाहिये।'

शिवराम हवालदार का यह कड़क आदेश उस डाकू ने सुन लिया, परन्तु इनमें जो डाकू सबसे लम्बे कद का था, देखने में बड़ा क्रूर और दुष्ट लगता था, पर चेहरे पर निरन्तर मुस्कराहट लिए हुए था। हवालदार की पीठ फिरते ही उसने हवालदार की तरह अभिनय करते हुए ऊँची आवाज में कहा—'अरे सीधा चल, ये तेरा घर नहीं इलाहाबाद की जेल है।'

कोई मुझे पागल बना रहा है, यह बात शिवराम समझ गया।

आस-पास खड़े लोग हँस रहे थे। काले पानी से भागा भयानक डाकू यही है, ऐसा सन्देह शिवराम को हो गया। उसे लगा कि अभी इससे टक्कर लेना ठीक नहीं है इसलिये उसने इस प्रलाप पर ध्यान न देकर ऐसा दिखाया जैसे उसने सुना ही नहीं और इधर-उधर टहलने लगा।

इसी बीच सार्जण्ट का एक कुत्ता उस आँगन में घुस आया। जेल के उस कठोर अनुशासन में भी उसे किसी ने नहीं रोका। कुछ देशों में आदमियों की अपेक्षा कुत्ते को अधिक स्वतंत्रता है और यह तो सार्जण्ट का कुत्ता था। हवालदार शिवराम उस कुत्ते को पुचकारने लगा। कुत्ते ने अपने दोनों पैर उठाकर हवालदार की कमर में बंधे पट्टे पर रख दिये। यह देखकर उस डाकू ने जेलर से चिल्लाकर कहा :

'राव साहेब ! जरा इधर आइये, इस दास की एक प्रार्थना है।'

इस उद्दण्ड, दुष्ट व्यक्ति पर इसका दबदबा बैठ गया है इसलिए वह उसे राव साहेब कह रहा है, यह बात हवालदार इस नम्र संबोधन से समझ बैठा और उसके पास आकर बोला :'

'क्या चाहिये? कह, डर मत !'

वह लुच्चा डाकू हँसते हुए जेलर से बोला :

'मैं तुम्हें कहाँ बुला रहा था। मैं तो उस टामी कुत्ते को बुला रहा था। मैं उसे कहना चाहता हूँ कि इस तरह अनुशासनहीनता से खड़ा होना ठीक नहीं, यह घर नहीं इलाहाबाद जेल है। यहाँ सबको अनुशासन में खड़ा होना चाहिये।'

एक बार फिर सारे सिपाही और कैदी हँसने लगे। हवालदार आग-बबूला हो गया :

'तुम सब एकदम गधे हो।'

नम्रता से हँसते हुए उस डाकू ने फिर कहा, 'आप हमारे सरदार हैं।'

जेलर सार्जण्ट के साथ उस आँगन में आया जहाँ कैदी खड़े हुए थे, जिससे सब कैदियों की बाकायदा जानकारी प्राप्त कर सके। सबसे पहले सार्जण्ट ने जेलर को उस लम्बे कैदी का परिचय दिया और कहा, 'यही योगानन्द अर्थात् रफीउद्दीन अहमद है और यही काले पानी से भाग गया था। इस मण्डली में यही नम्बर एक का अपराधी है।'

जैसे कोई राजा चारण व भाटों से अपनी प्रशस्ति गाई जाती हुई सुनकर गर्व अनुभव करता है, उसी प्रकार यह योगानन्द उर्फ रफीउद्दीन सार्जेण्ट से अपनी प्रशस्ति बड़े गर्व से खड़ा होकर सुन रहा था। उसके मुख पर भय या चिन्ता का लेशमात्र भी चिह्न नहीं था। अपनी गर्दन को बाईं ओर झुकाते हुए, दाईं भौं को चढ़ाकर सीधी आँख मिचकाते हुए और अपने अभ्यास के अनुसार छद्म हँसी हँसते हुए वह सार्जेण्ट से बोला :

'साब ! ऐसा अन्याय क्यों कर रहे हैं ? मुझे चार बार कोड़े लगाये गये हैं और मैंने कम से कम चौदह जेलें देखी हैं, इस जेल के प्रिजनर साहब से इतनी बात और बता दीजिये। इससे मेरी वास्तविक योग्यता उनको पता चल जायगी और वे मेरा यथोचित मान-मर्यादा व समुचित आतिथ्य करेंगे।'

पिछले एक महीने से ये कैदी इस सार्जेण्ट के ही नियंत्रण में थे, इसलिये इनके साथ उसकी काफी चकमक होती रहती थी। इस कैदी के निरुपद्रवी कथन में जो व्यंग्य होता था वह सार्जेण्ट को भी अच्छा लगने लगा था। जेलर को जेलर साहेब न कहकर प्रिजनर साहेब कहे जाने से उसके अंग्रेजी-ज्ञान की हँसी उड़ाने के लिये सार्जेण्ट जोर से हँसा :

'ठीक है, ठीक है। जेल का यह अधिकारी यदि प्रिजनर साहेब है तो तुम जैसे डाकुओं को जेलर साहब कहना चाहिये।'

'आफ कोर्स मिस्टर सार्जेण्ट साहेब ! यस। आपकी बावर्ची अंग्रेजी में इसे चाहे न माना जाय, परन्तु ठीक व्याकरण-सम्मत जो अंग्रेजी है मैं वही बोलता हूँ। प्रिजन का अर्थ जेल और जेल का अर्थ प्रिजन इस प्रकार जेलर और प्रिजन का भी तो एक ही अर्थ होगा कि नहीं ? व्याकरण के अनुसार तो जो प्रिजनर है वही जेलर है। प्रिजनर और जेलर एक ही माला के मणि···। सार्जेण्ट साहब, मुझे भी मालूम है कि अंग्रेजी किसका खाती है।'

'रफीउद्दीन, तू क्या योगानन्द है ? तुझे चार बार कोड़े क्यों लगाये गये, यह क्यों नहीं बताया ?' सार्जेण्ट ने प्रश्न किया।

रफीउद्दीन ने उत्तर दिया, 'इसका कारण बड़ा सीधा है। परन्तु यदि

जेलर साहब गुस्सा न करें तो बता दूं। दो जेलरों ने मेरे कहने पर मुझे चोरी-चोरी अफीम खाने को नहीं दी इसलिए मैंने उनके सिर पर थाली दे मारी। दो बार इसी कारण से कोड़े लगे। बाकी दो बार इसलिए लगे कि मैंने दोनों जेलरों को, जितना वे चाहते थे उतनी रिश्वत नहीं दी।'

रिश्वत की बात उठने पर सार्जेण्ट घबरा गया। उसे आशंका हुई कि कहीं यह बड़बोला कैदी उसकी रिश्वत लेने की बात ही न कर बैठे, क्योंकि गत १०-१५ दिनों में उसने रफीउद्दीन से ४०-५० रुपये रिश्वत में झटक लिये थे। इसलिये घड़ी देखने का बहाना करके रफीउद्दीन की बात को सुना-अनसुना कर दिया, और जेलर से यह कहकर कि मुझे देर हो रही है सब कैदियों को नियमानुसार जेलर को सौंपकर फाटक से बाहर निकल गया।

इसके बाद इस टोली के बंदियों को अलग-अलग फाँसी-चौक में बनी कोठरियों में बंद कर दिया गया। इनमें दो-तीन कैदी अत्यधिक चिन्तातुर थे। इनमें एक का नाम किशन था और उसके मुख पर पश्चात्ताप स्पष्ट झलक रहा था। शेष कैदी इतने निश्चिंत थे मानो कि वे नृत्यशाला म मनोरंजन के लिये आये हैं और बड़ी अकड दिखा रहे थे।

योगानन्द (रफीउद्दीन) को फाँसी की अकेली कोठरी में रखा गया था। उसकी कोठरी के आस-पास जमादार और शिवराम हवालदार के सिवाय और कोई नहीं जा सकता था। इस कारण वह सबसे अधिक मजे में था। शिवराम द्वारा रफीउद्दीन के जो साथी गिरफ्तार होने से बच गये थे उनको उसकी चिट्ठियाँ बाहर जा रही थीं और बाहर से काफी रुपया आ रहा था। अफीम, तम्बाकू और मिठाई जब-तब रफीउद्दीन की कोठरी में पहुँचने लगीं और साथ ही जमादार, हवालदार और जेलर की भी जेबें गरम होने लगीं।

रफीउद्दीन का योगानन्द-स्वरूप जटा, दाढ़ी, मूँछ कट जाने के बाद असली गुण्डे मुसलमान के रूप में बदल गया था। जिन्होंने योगानन्द को साधु के रूप में देखा था अब यदि वे उसे अपराधी रफीउद्दीन के रूप में देखते तो उन्हें स्वयं अपनी आँखों पर विश्वास नहीं होता। पर योगानन्द का एक

रूप रफीउद्दीन में भी था, वह था "सुख-दुःखे समे वृत्त्या निंदा-स्तुतित्यागे।" उससे यदि कोई पूछता कि तुम्हें फाँसी होगी फिर भी तुझे भय और चिन्ता क्यों नहीं है ? उसका उत्तर होता :

'इसमें चिन्ता क्यों ? मुझे फाँसी होगी नहीं, काला पानी होगा। काला पानी में जो मजा है वह काशी में भी नहीं मिल सकता, मक्का में भी नहीं। हमारा काला पानी ही काशी है।'

'तुझे फाँसी नहीं होगी ऐसा क्यों ? तूने बड़ी क्रूरता से दर्जनों लोगों को मार डाला है। लड़के-लड़कियों के गले काट डाले हैं। ऐसे गंभीर राक्षसी कार्यों पर तुझे फाँसी होगी, ऐसा जेलर भी कहता है।' शिवराम के कभी ऐसा पूछ बैठने पर वह कहता :

'अरे, जेलर क्या जानता है ? मैंने छप्पन घाट का पानी पिया है और छप्पन जेलें देखी हैं। डाकेजनी के बारे में प्रमाणों, दण्ड, अपराधों के बारे में कायदे-कानूनों का जितना ज्ञान मुझे है उतना जेलर को तो क्या, बड़े-बड़े जजों को भी नहीं है। इसलिए मैं अपराध भी कानूनी ढंग से करता हूँ। जहाँ मारने पर फाँसी का डर है वहाँ मैं कत्ल करता ही नहीं हूँ। अरे, मैंने तुम हिन्दुओं की गीता भी पढ़ी है। 'हत्वाऽपि इमांल्लोकान् न हन्ति न निबध्यते' इसी को कहते हैं 'योगः कर्मसु कौशलम्'।

हिन्दू सिपाहियों का पहरा होने पर वह संस्कृत के ऐसे श्लोक व भजन गाता था कि वे बेचारे यही समझते कि यह कोई पहुँचा हुआ अवधूत है। फलतः हिन्दू सिपाहियों की उसे सहानुभूति मिलने लगी।

मुसलमान सिपाहियों का पहरा होने पर वह बातचीत में कुरान की आयतें पढ़ता और पुनः उग आई दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहता, 'देखो ! मैंने जहाँ-जहाँ डाके डाले, लड़कियों का अपहरण किया, जिनके हाथ-पाँव तोड़े और जिन्हें जान से मार डाला, वे सब काफिर हिन्दू थे। ईमानदारों (मुसलमानों) के बच्चों को छुआ तक नहीं। अल्ला रहीम है। उसने मुझ पर दया कर काफिरों को सजा देने का काम सौंपा। जेल में अन्य भी जो मुसलमान चोर-उचक्के, हत्यारे थे उनमें सिन्धी, बलूची, पठान आदि भी थे। सब अपने अपराध का औचित्य बताते हुए कहते, 'हमने ये काम काफिर के ही खिलाफ किये हैं। हम तो केवल उन्हीं को मारते-कूटते हैं।' इससे उन्हें

मुस्लिम सिपाहियों की सहानुभूति मिल जाती।

इस टोली में महाराष्ट्र का एक हसन भाई नाम का कैदी भी था। किशन और हसन ने पुलिस को सारी टोली की सब बातें बताकर अपना अपराध स्वीकार कर लिया। इनकी सूचना पर पुलिस ने आरोप-पत्र तैयार कर दिया। मुकदमे की तारीख भी इस टोली को बता दी गई।

मुकदमे के दिन जैसे दूल्हा शादी के दिन सजता है, ये डाकू भी उसी प्रकार जेल में जितना संभव था सज-धजकर अपनी बेड़ियाँ खनखनाते हुए बाहर निकले। रफीउद्दीन हँसी-ठट्टा करते हुए अकड़कर चल रहा था। उसे ऐसा लग रहा था कि काला पानी से भागकर आनेवाले मुझ 'पराक्रमी' को ही सारा त्रिभुवन देख रहा है। वह मन में योजना बना रहा था कि अदालत में जाकर क्या-क्या हँसी-मजाक या अटपटी बात करूँ जिससे जज भी हँसी से लोट-पोट हो जाय। मेरे अपराधों की क्रूर कथा सुनकर लोग काँप उठेंगे, उसे राक्षस कहेंगे, थू-थू करेंगे। उसे कठोर दण्ड भुगतना पड़ेगा, इसकी उसे बिलकुल चिन्ता नहीं थी। जैसे श्मशान-स्थित धर्मशाला के चौकीदार के लिये प्रेत, रोना-धोना, जलती चितायें रोजमर्रा की बात होने से कोई विशेष महत्त्व नहीं रखतीं उसी प्रकार रफीउद्दीन के लिए अपराध, मुकदमे, जेलखाने आदि की बातें साधारण थीं। उसके लिए शैतान ही उसका भगवान था। मनुष्य में राक्षसपन को वह स्वाभाविक समझता था। यदि उसे किसी के प्रति ममता या इच्छा थी तो वह दो बातें थीं, एक अफीम और दूसरी स्त्री। न्यायालय में जाते हुए उसके मन में एक-दो बार तो यह बात उठी कि कहीं उसे फाँसी न हो जाय और इससे उसकी छाती धड़क उठी। फाँसी के भय से मालती से मिलने की उसकी अतृप्त अभिलाषा जाग उठी। मालती! हाय! अब वह मेरी भुजाओं में कब आएगी?

५. रफीउद्दीन के अन्तरंग

अदालत में इन भयंकर अपराधियों पर मुकदमा चल रहा था। वकीलों, उनके मुंशियों, सशस्त्र सिपाहियों और इस मुकदमे में रुचि रखने वाले

लोगों की अदालत में काफी भीड़ थी। इन नर-पशुओं के क्रूर अत्याचारों की बातें सुनकर, ऐसी बातों में स्वभावतः ही निर्लिप्त रहने का अभ्यासी न्यायाधीश सिहर उठता था। निष्पक्ष होने पर भी उसकी आकृति पर क्रोध परिलक्षित होता था। मानव-बस्तियों से हिंसक पशुओं को मनुष्य वस्तों में भगा देता है, परन्तु मनुष्य के अन्तर्मन में जो पाशविक वृत्ति घर कर रह गई है उसकी भयंकरता जब सामने आती है तो ऐसा भय होता है कि यह मन में बैठा पशु कहीं निर्बन्ध ऊधम न मचाने लगे। मनुष्यों की ऐसी ही एक बस्ती क्वेटा नगरी है। इसके नीचे भूकम्पीय राक्षसों की एक के बाद एक परतें हैं। ऐसी नगरी दया-दाक्षिण्य, माया-ममता, न्याय आदि पर आधारित है अतः अटल है, ऐसा समझकर जो असावधान रहता है वह निश्चय ही नष्ट हो जायगा। राष्ट्र के राष्ट्र इस मनोवृत्ति से ध्वस्त हो जायेंगे।

रफीउद्दीन भी एक मनुष्य था, क्योंकि वह हँसता था। अनेक प्राणि-शास्त्रियों की मान्यता है कि मनुष्य की अन्य प्राणियों से एक विशेषता यह है कि वह हँसता है। यह मुकदमा न्यायाधीश श्री आकलैण्ड सुन रहे थे। वे मुकदमे की सुनवाई के समय अपराधियों के व्यवहार, बोलने-चालने का मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी कर रहे थे। इसलिए उन्होंने अपराधियों को बोलने-हँसने की पूरी छूट दे रखी थी। जिन संकटों में पड़ने पर बड़े-बड़े दुष्ट भी काँप उठते हैं, शर्मा जाते हैं, ऐसे संकट में भी रफीउद्दीन को निर्लज्जता से हँसता देखकर आकलैण्ड के मन में यह भाव आता था कि काश ! शेक्सपियर एक बार मनुष्य के रूप में इस दानव को देखता। शेक्सपियर ने एक निर्मम व्यक्ति की भूमिका में यह स्पष्ट किया है कि 'वह बहुत कम हँसता था'। यदि वह रफीउद्दीन को देख लेता तो अपने इस लक्षण को वह बदल देता, क्योंकि यह क्रूर हँसने में कमी नहीं करता था। रफीउद्दीन ने कालिदास की इस उक्ति 'न ह्याकृतिः सुसदृशं विजहाति वृत्तम्' को भी झुठला दिया था। सुन्दर व्यक्ति सज्जन होगा ऐसा नहीं कह सकते। इतना ही नहीं, उसके दुर्वृत्त उसके सौन्दर्य को विकृत कर देते हैं। गुलाब के फूलों की घनी क्यारी की आड़ में ही कपट की पराकाष्ठा है, पर पता ही नहीं चलता।

इन क्रूर अपराधियों के अत्याचारों की बातों को पुलिस ने पूरे प्रमाणों के साथ प्रस्तुत कर दिया था। इनमें एक प्रमाण इसी टोली के एक अन्य अप्रूवर अपराधी हसन भाई नामक व्यक्ति ने अपने बयान में रोंगटे खड़े करने वाले विवरण के रूप में दिया। हसन भाई के बयान का कुछ अंश इस प्रकार है :

मेरा नाम हसन भाई है। मैं मामूली क्लर्क था। पैसे की कमी होने से मैंने चोरी शुरू की। काले पानी जाने से पहले ही रफीउद्दीन से मेरी जान-पहचान थी। लखनऊ और पंजाब में की गई अपनी लूट-मार का माल मेरे यहाँ रखता था। इसलिये वह डाका डालने के लिए अपने साथ कभी नहीं ले गया। मेरी ओर पुलिस का ध्यान न जाय, इसलिये वह मेरे पास अधिक नहीं आता था। काला पानी की सजा होने के बाद मेरा उससे संबंध टूट ही गया। कई वर्षों बाद वह मेरे घर पर आया : उसे देखकर मैं स्तब्ध रह गया, क्योंकि मैं समझता था कि काला पानी जाने के बाद आदमी जीवित नहीं लौटता है। उसने मुझे बताया कि वह मन्त्र-शक्ति से अदृश्य होकर समुद्र पर चलता हुआ आया है। उसने मंत्र से तैयार एक तावीज भी मुझे दिखाया। मेरे पास उसका तीन हजार का माल पड़ा था, वह मुझे इनाम के रूप में देगा ऐसा भी मुझे आश्वासन दिया था। इसके इस मीठे वचनों का मुझ पर विलक्षण प्रभाव पड़ा। वह मुझे एक अद्भुत और महान पुरुष लगने लगा, और वह जो कहे उसे पूरा करने के लिए तैयार हो गया। पंजाब और सिन्ध में इस्लाम के प्रचार के लिए हमने एक बड़ी संस्था बनाई कि यह एक धर्मयुद्ध—जिहाद है अतः प्रत्येक मुसलमान का कर्तव्य है कि वह इस बारे में सहायता दे। उसकी यह बात भी मुझे उस समय बड़ी अच्छी लगी। मेरा-उसका यह समझौता हो गया कि मैं खान-देश में हिन्दू लड़के-लड़कियों को चोरी-छिपे पकड़कर उन्हें उसे सौंप दूंगा। उसे जो वस्तु या रुपया छिपाकर रखना है उसे पहले की तरह छिपाकर रखूंगा और जब कभी भी वह मुझे बुलायगा मैं उसके पास जाऊँगा। इस कार्य के लिए उसने मुझे प्रतिमास एक सौ रुपये देने का तय किया।

मुझे इस बात का भी डर बैठ गया कि यदि मैं उसके ये काम कहीं करूँगा तो वह नरपशु पिछला माल भी वसूल करेगा और साथ ही मुझे

भी मार डालेगा। प्रारम्भ में मैं डरकर उसकी टोली की सहायता करता था पर उसके डाकों का वर्णन सुन-सुनकर मैं भी पक्का हो गया और छोटे-मोटे डाके स्वयं भी डालने लगा। तीर्थ-यात्राओं में, धर्मशालाओं में और स्टेशनों से सुन्दर हिन्दू लड़कियों का अपहरण करने में हम इतने दक्ष और पक्के हो गये थे कि इनकी माताओं का रुदन और विलाप सुनकर हमारा मनोरंजन होता था। मेरे सहयोग से रफीउद्दीन मुझ पर बड़ा कृपालु हो गया था। इन लड़के-लड़कियों को दूर सिंध बिलोचिस्तान ले जाकर मुसलमानों को बेच दिया जाता था या आपस में ही बाँट लिया जाता था। बड़े-बड़े मौलवी भी हमारे इन दुष्कर्मों की, धर्म-प्रचार कहकर बड़े गौरव से प्रशंसा करते थे। इस कारण हमारी इस नीच विषय-वासना और धन-लोभ को धार्मिक उन्माद और सज्जनता का प्रमाण-पत्र मिलने से लज्जा-भय भी दूर हो गया।

उत्तर के पठान बलूची डाकू हम दक्षिण के मुसलमानों पर विश्वास नहीं करते थे। हमारी वेष-भूषा, भाषा, चाल-चलन हिन्दुओं की तरह है। हमारे हाथ क्रूर कर्म उन की तरह शीघ्र नहीं कर सकते, इसलिये वे हमको कायर और अर्ध-काफिर मानते हैं। अपने डाकों में वे हमको साथ नहीं लेते थे। परन्तु बिहार में इस टोली के कुछ लोग डाका डालते हुए पकड़े गए। तब रफीउद्दीन कुछ लोगों के साथ भागकर खानदेश आया और मेरी टोली में शामिल हो गया। इसके बाद वह हिन्दू संन्यासी के रूप में घूमने लगा। वह अभ्यस्त बहुरूपिया है। अंग्रेजी, हिन्दी, बंगला, मराठी आदि का थोड़ा-थोड़ा आवश्यक ज्ञान कर रखा है। गाता है, नाचता है और भजन-लावणी आदि गाने में पूरा रंग जमा देता है। योगानन्द के वेश में हिन्दुओं पर अच्छा भ्रमजाल फैलाया। उसे पाँच-छह गाने ही आते हैं। शास्त्रों का कोई ज्ञान नहीं है। इसलिए यह मौन का ढोंग करके केवल भजन ही गाता था। कुछ श्लोक याद कर लिये हैं, उन्हें बीच-बीच में बोल, कर मौन हो जाता है और लोग समझते हैं कि यह शास्त्रों का प्रकाण्ड विद्वान है और साथ ही नम्र भी। योगानन्द के इस साधु-वेश का हमें बड़ा भारी लाभ मिला। न माँगने पर भी हिन्दू लोग हजारों रुपये दे जाते थे। यह पैसों को छूता नहीं था, पर सबके चले जाने पर हम आपस में बाँट लेते

थे। भजन-संकीर्तन में हमने गत एक-डेढ़ वर्ष में सौ से भी अधिक हिन्दू लड़कियों का अपहरण किया और उन्हें गुलाम हुसेन नामक एक बलूच के हाथ उत्तर भारत में रवाना किया। ऐसे प्रत्येक शिकार पर हमें विशेष 'इनाम' मिलता था। यह मुसलमानों को नहीं लूटता, यह भी एक ढोंग था। यह मुसलमानों को भी लूटता था और कहता था कि ये काफिर के दोस्त हैं इसलिए लूटा है।

इसके क्रूर कामों के बारे में जिनसे मुझे भी कँपकँपी आ गई, दो को बताऊँगा। मुकदमे में हम पर खानदेश के एक मुसलमान डाक्टर के घर पर डाका डालने का भी आरोप है। इस डाके में मैं भी साथ था। जैसे ही हम दरवाजा खोलकर डाक्टर रहमान के घर में घुसे तब वे ऊपर की मंजिल पर जा रहे थे। रफीउद्दीन ने उनके पैर पर कुल्हाड़ी मारकर उसके टुकड़े कर दिये। डाक्टर तत्काल मर गया। कुल्हाड़ी के अचूक प्रहार की खुशी में इसने मेरे मना करने पर भी उसकी लाश के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। इतने में ही पलंग के नीचे भय से छिपे उसके दो बच्चे दिखाई दिये। भय से वे अधमरे पड़े थे। मैंने कहा कि चलो छोड़ो, इन बच्चों को मत मारो।

रफीउद्दीन बोला, बेहोशी में सभी की आँखें बंद हो जाती हैं, परन्तु होश में आते ही अदालत में कौन मारने वाले थे ये पूछने पर यही बंद आँखें मुझे और तुझे फाँसी के फंदे पर चढ़ा देंगी। यह कहकर उसने उसी कुल्हाड़ी के एक-एक वार से उन बच्चों का भी काम तमाम कर दिया। उसके इस कृत्य को देखकर मुझे चक्कर आ गया। इस डाके में हमें दस हजार रुपये मिले। इसलिये इस मूर्च्छा का प्रभाव देर तक नहीं रहा और मैं पहले की तरह डाके डालने लगा।

दूसरी एक अन्य घटना जो मैंने अपनी आँखों से देखी वह पहली घटना से भी कहीं अधिक क्रूर और जघन्य है। रफीउद्दीन मुझे बातचीत में बड़े गर्व से कहा करता था कि वह एक सुन्दर स्त्री को केवल एक वर्ष ही अपनी पर्यंकशायिनी बनाता है और वर्ष पूरा होते ही उसे मार डालता है और एक नई रख लेता है। जैसे लोग अपने अच्छे कार्यों को शान से बार-बार बताते हैं वैसे ही यह अपने दुष्कर्मों को बड़े गर्व से बताता था। इस राक्षस की इस गर्वोक्ति में कितनी सचाई है इसका पता भी शीघ्र लगा।

जब वह बिहार से भागकर खान देश आया था, तब बिहार से एक हिन्दू कायस्थ की तरुण गौरांगी सुन्दरी को भी भगा लाया था। उसको यह बड़े कड़े पहरे में रखता था। इस तरुणी पर रफीउद्दीन का इतना प्यार था कि उसे लगता था कि ऐसा दयालु और प्रेमी व्यक्ति मिलना कठिन है। इतने पर भी उसके चेहरे पर सदा एक विषाद झलकता था। एक बार रफीउद्दीन ने उसे एक हिन्दू मंदिर के सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए देख लिया। रफीउद्दीन ने लाड-प्यार दिखाते हुए और उसके शरीर को सहलाते हुए पूछा :

'तुझे क्या चाहिये जो उस पत्थर के देवता की पूजा कर रही थी ? यह सुनकर चिढ़कर उसने कहा, 'तुझे फाँसी हो इस बात की प्रार्थना कर रही थी।'

फाँसी शब्द सुनते ही रफीउद्दीन साँप की तरह तड़प उठा, गुस्से से झटका देकर तत्क्षण हँस भी पड़ा और बोला, 'ठीक है, इसका एक वर्ष पूरा होने वाला है।' उसने मुझे बुलाकर कहा, 'मैं आज शाम को तुझे नदी पर एक तमाशा दिखाऊँगा। तू रानाघाट के पास ऊँची बुर्जी पर जाकर बैठ जाना।'

शाम को मैं नदी के रानाघाट के पास बनी बुर्जी पर जाकर बैठ गया। पिछले दिनों हुई वर्षा से नदी बाढ़ के कारण पूरी भरकर बह रही थी। गाँव वालों की धारणा थी कि जब रानाघाट की इस बुर्जी तक पानी आ जाय तो समझना प्रलय आ गई है। एक प्रकार से प्रलय आ गई थी।

इतने में ही रफीउद्दीन उस तरुणी को लेकर नदी पर आया। तरुणी का बुरका उतारकर हिन्दू रमणी की तरह चादर उढ़ाकर वह उसे नदी की बाढ़ दिखाने के बहाने लाया था और वह रमणी भी उन्मुक्त भाव से उसके साथ थी। इतने दिनों में मुख पर पड़े कपड़े के हटने से शुद्ध मुक्त वायु में साँस लेने के कारण उसके मुख पर कुछ समाधान का भाव था। रफीउद्दीन उसे कई प्रकार से लाड-प्यार दिखा रहा था। मुझे स्वयं यह आश्चर्य हो रहा था कि रफीउद्दीन आज इस एकान्त में उसे बुरका उतारकर मेरे सामने कैसे ले आया है। इतने में उसने उसे अपनी भुजाओं में भर लिया। मुझे समझ नहीं आया कि क्या हो रहा है। मेरी भी इच्छा उस सुन्दरी को

आलिंगन में लेने की हो गई।...

रफीउद्दीन ने उसी समय उसे भुजाओं में ऊपर उठा लिया। बच्चों की तरह उसने 'मेरी नन्हीं-नन्हीं गुड़िया' कहकर झुलाया और एक हाथ से झटका देकर उसकी साड़ी भी खोल दी और बोला, 'देख ले परी, सब कुछ मन भरके देख ले!' अब यह कामोन्मत्त इसके साथ क्या करेगा, यह सोचकर मैं ध्यान से उसे देख ही रहा था कि तभी—

इस राक्षस ने उस सुन्दरी को बुर्जी पर से नदी की बाढ़ में दूर तक फेंक दिया। 'इसका वर्ष पूरा हो गया है' कहकर जोर से हँसा।

मैं चिल्लाया, 'राक्षस! तूने यह क्या किया?'

'अरे तू तमाशा देख। इसे देखने के लिए ही तो तुझे यहाँ बुलाया था।'

वह सुन्दर तरुणी दो बार लहरों के साथ ऊपर आई और साथ ही नीचे चली गई। इस बाढ़ के एक टीले का सिरा अभी भी पानी से बाहर दीख रहा था। एक प्रचण्ड लहर उस टीले की ओर गई, उसी के साथ बहती हुई वह तरुणी और उसकी गुलाबी साड़ी दीखी।

जैसे ऊपर टँगे किसी काँच के झुंबर के अचानक टूटकर गिर पड़ने से उसके टुकड़े-टुकड़े सर्वत्र बिखर जाते हैं और वह ज्योति बुझ जाती है, उसी प्रकार प्रचण्ड लहर के इस टीले से टकराते ही वह जलसमूह शतधा बिखर गया और उस निर्मल कांचनगौर तरुणी का मस्तक भी टकराकर टुकड़े-टुकड़े हो गया। उसकी प्राण-ज्योति भी बुझ गई।

मैंने फिर उससे क्रोध से पूछा, 'राक्षस, तूने यह क्या किया। तूने उसे मृत्यु-मुख में क्यों फेंका?'

'मृत्यु-मुख में नहीं, पगले! यदि उसके बारे में बोलना है तो उसकी भाषा में बोल। संस्कृत में पानी को मृत्यु नहीं जीवन कहते हैं। मैंने उसे जीवन की महानदी में फेंक दिया है।' वह पुनः हँसा, 'यदि वह आज न मरती तो कल पुलिस को मेरा पता दे देती, तू इतना भी नहीं समझता?'

'महाराज! मैं इसके जैसा दुष्ट हृदय नहीं हूँ, फिर भी पाप-कृत्यों की मुझे भी लत लग गई थी। अलौकिक सत्कृत्यों की तरह दुष्कृत्यों का भी लोगों के मन पर प्रभाव पड़ता है। इस छाप के कारण ही हम पर इसका प्रभाव बढ़ता गया और इसके योगानन्द के ढोंग से हमारा भी स्वार्थ

सधता था इसलिए इसका साथ देता रहा।...

इसके बाद हम मथुरा आये। इसने कर्णपुतली की तरह का एक जला-दर्श यन्त्र का ढोंग रचा और हमने सर्वत्र यह प्रचार शुरू कर दिया कि इस यन्त्र से भूत, भविष्य, वर्तमान की सब बातें मालूम हो जाती हैं। हम जहाँ भी जाते वहाँ परदेसी, डाक्टर, वकील आदि के विभिन्न रूपों में घूमते और लोगों में योगानन्द के चमत्कार का व्यक्तिगत अनुभव के रूप में प्रचार करते। यह पताचलने पर कि कोई योगानन्द के पास अपना भूत-भविष्य पूछने आ रहा है, हमारी मण्डली का कोई व्यक्ति योगानन्द के सामने बैठ जाता और हमारे किसी भी प्रश्न का कैसा ही उत्तर मिलने पर कहता :

'अरे कितना आश्चर्य ! यह कैसी अद्भुत-दृष्टि ! आपने जो कुछ कहा वह एकदम सत्य है।' ऐसी प्रशंसा करते हुए एक बड़ी राशि उसके मन्दिर के लिए देकर बाहर चला जाता। इससे जिनके सामने यह नाटक होता था वे मानसिक विश्वास की बलि चढ़ जाते थे। मथुरा में भी हमारा यह ढोंग खूब चल निकला था और इसी चक्कर में डॉक्टर नायडू नाम की एक महिला हमारी भक्त बन गई। उसने बातचीत में अपने पड़ौस की नागपुर की ओर की रहने वाली एक महिला का और उसकी एकाकी पुत्री का उल्लेख किया और कहा कि मथुरा आये हुए हैं।

यह विवरण सुनने के बाद दुष्ट योगानन्द मुझे एकान्त में ले जाकर बोला, 'मैं जब काले पानी में था तब मेरे साथ सेना में दण्ड प्राप्त एक कैदी था। किसी अन्य कैदी को मेरे साथ नहीं रखा जाता था इसलिये हम दोनों में काफी मैत्री हो गई। समय-समय पर उसने मुझे अपने घर की सारी जानकारी दे दी। डॉ० नायडू बाई ने नागपुर की जिस महिला और उसकी युवती कन्या का उल्लेख किया है वह निश्चित रूप से उसी कैदी की बहिन होनी चाहिये। नायडू बाई ने जो-जो नाम-धाम बताया है वह एकदम उससे मिलता-जुलता है। यह लड़की अब मेरे कब्जे में आ गई समझो। मालती, हाय मालती ! मैंने तेरे साथ कितनी बार शयन किया है !'

'अरे तू तो काला पानी में था ? तू कैसे कहता है कि वह तेरी पर्यंक-

शायिनी थी ! क्या स्वप्न की बात कर रहा है ? केवल नाममात्र से ही इतना कामुक हो गया ?' मैंने उसका उपहास किया तो वह फिर बोला :

'हसन, सुन ! यदि किसी हिंसक पशु को कई दिन तक मांसाहार न दिया जाय तो वह अनेक दिनों बाद दी गई हड्डी के टुकड़े को भी स्वाद से चबाता है ; उसी प्रकार मुझ जैसे कामी व्यक्ति को नारी का नाम सुनते ही कल्पना में ही नारी-संभोग का आनन्द मिलता है। और अब तो दैव-योग से वह नारी यहीं आ भी गई है इसलिये इसका अपहरण करना ही है।'

एक बार अपहरण का निश्चय हो जाने पर हमने सदा की तरह योजना बना ली। कीर्तन समाप्त होते ही जब भीड़ में मालती अपनी माँ के साथ बाहर निकली, तब भीड़ में हमारे ही आदमियों ने नकली मारा-मारी शुरू कर दी। भीड़ में भगदड़ मच गई और मालती अपनी माँ से अलग हो गई, तभी हमारे एक आदमी ने मालती को घर पहुँचाने के बहाने गुलाम हुसेन के अड्डे पर पहुँचा दिया और इस दुष्ट ने उस रात को ही मालती को पर्यंकशायिनी बनाया।...

दूसरे दिन इस अपहरण को लेकर कोई उपद्रव न हो, इस बात को ध्यान में रखकर हमने मालती के रिश्तेदारों को माया-ममता के जाल में फँसाकर दूर चलता किया। इस दुष्ट को काले पानी में रहते हुए मालती के भाई के रंग-रूप के बारे में सब-कुछ मालूम हो गया था। इस जानकारी को जलादर्श के माध्यम से अन्तर्दृष्टि कहकर मालती की माँ को बताया गया तथा यह कहकर कि मालती अपने प्रियतम के साथ भाग गई है अतः मथुरा की पुलिस में रिपोर्ट किये बिना वह चुपचाप नागपुर चली जाय, वहाँ उसे मालती मिल जायगी। मालती की माँ बिना पुलिस को सूचना दिये नागपुर चली गई। हम सब भी उसी दिन मथुरा छोड़ने वाले थे पर एक अन्य अपराध में इलाहाबाद से जारी वारण्ट से हम सब पकड़ लिये गये। इस सब गड़बड़ी में गुलाम हुसेन मालती को लेकर कहाँ चला गया, इसका भी कुछ पता नहीं चला।'

यह घटना सुनकर न्यायाधीश तथा अन्य अदालत में उपस्थित कई लोगों की आँखें सजल हो गईं। परन्तु आश्चर्य ! इन अपराधियों में से भी

किशन नामक एक व्यक्ति रो रहा था। उसके ये आँसू पश्चात्ताप के आँसू थे।

किशन देखने में कुरूप, परन्तु युवक और मृदुभाषी था। व्यवहार से दयालु प्रतीत होता था। सारे मुकदमे की अवधि में वह सिर झुकाये बैठा रहा, परन्तु जब अपना बयान देने के लिए उठा तब उसने सीधे खड़े होकर अपने आँसू पोंछते हुए कहा :

'मैं काशी में वेदान्त का छात्र था। मेरा मन विरक्त हो गया था तथा मेरी इच्छा थी कि किसी गुरु के सान्निध्य में भक्ति और योग की साधना करूँ। इसी समय मैं मथुरा आया तथा वहाँ मैंने योगानन्द के अन्तर्ज्ञान और उसके कीर्तन की प्रशंसा सुनी। मैं उसका शिष्य बन गया। मैं सारंगी बहुत अच्छी बजाता हूँ, गाता भी हूँ, इसलिये भजन-संकीर्तन में मैं इसका साथ देता था। एक सप्ताह भी नहीं हुआ था कि मेरे कानों में यह सुनाई दिया कि 'यह हिन्दू है, इसको दूर ही रखना।' मुझे यह भी शंका हुई कि ये कुछ गुपचुप षड्यन्त्र भी कर रहे हैं। परन्तु योगानन्द में भी मेरी गुरु-भक्ति की भावना थी अतः उसकी किसी दुष्टता की ओर मेरा ध्यान नहीं गया। कीर्तन के दो-तीन दिन बाद उपद्रव हो गया। उसी रात योगानन्द ने मुझे बुलाकर कहा :

'दंगे के कारण मालती अपनी माँ से बिछुड़ गई है। उसे अपने या नायडू बाई के घर सुरक्षित पहुँचा आओ। नायडू बाई के साथ वह जब भी यहाँ आई है उसे वापिस पहुँचाने के लिए मैंने तुझे ही भेजा है, इसलिए वह तुझ पर विश्वास करेगी। यदि वह मेरी मोटर में जाना चाहे तो ड्राइवर के साथ चला जा।

'मैंने मालती को मोटर में बिठा दिया। उसे सान्त्वना देने में व्यस्त था, पर थोड़ी देर बाद मैंने देखा कि मोटर एक अज्ञात स्थान पर एक अज्ञात घर के सामने रुक गई। मेरे पूछने पर ड्राइवर ने कहा कि नायडू बाई ने यहीं उतारने को कहा था, वह घर के अन्दर है। मालती उतरकर घर के अन्दर गई। उसने मुझे भी अन्दर आने को कहा पर मैं ड्राइवर के कहने से उसी क्षण लौट पड़ा। वहाँ से लौटने पर मुझे एक अन्य मठ में ठहराया गया और अगले दिन कीर्तन के समय साथ देने के लिए मुझे सभा-स्थल

पर लाया गया। कीर्तन के अन्त में इस टोली के साथ मैं भी पकड़ा गया। मुझे इसी बात का दुःख है कि मैं मालती के अविश्वास का पात्र बन गया और उसकी कोई सहायता नहीं कर सका।'

सबके बयानों और पुलिस द्वारा प्रमाण प्रस्तुत करने के बाद अदालत का प्रायः सारा काम पूरा हो गया। रफीउद्दीन उर्फ योगानन्द ने अपने बचाव में कुछ नहीं कहा। वह हँसता रहा या मजाक करता रहा। अपना निर्णय देने से पूर्व न्यायाधीश ने रफीउद्दीन से पूछा, 'क्या तुम्हें कुछ कहना है ?'

रफीउद्दीन बोला, 'तीस-चालीस लोगों ने मेरे विरुद्ध अनेक आरोप लगाये हैं। ये इतने अधिक हैं कि इन्हें मैं भी भूल गया हूँ। इन सब आरोपों का सार यही है कि मैं भयंकर अपराधी हूँ और मुझे कठोरतम दंड मिलना चाहिये।...

'इसके उत्तर में मेरा इतना ही कहना है कि मैं पूर्णतः निर्दोष हूँ। मुझे किसी प्रकार का दण्ड तो मिलना ही नहीं चाहिये, पर साथ ही मेरे साथ अकारण ही जो दुर्व्यवहार किया गया है उसकी क्षतिपूर्ति के लिए मुझ एक खासी बड़ी रकम भी मिलनी चाहिये।...

'इतने लोगों और पुलिस ने मुझ पर अगणित हत्याओं और अगणित कोमल कन्याओं के साथ बलात्कार करने के इतने आरोप लगाये हैं मानो मैं कोई साहित्यकार, नाटककार या न्यायाधीश हूँ, क्योंकि साहित्यकार अपनी लेखनी से और नाटककार अभिनय से जितनी चाहें हत्यायें और बलात्कार घटित कर सकते हैं ; न्यायाधीश फाँसी का दण्ड देकर बड़ी सफाई से व्यक्ति को मौत के घाट उतार देता है।...

'साक्षियों ने, पुलिस ने मिलकर मेरे विरुद्ध जैसे आरोप लगाये हैं मैं वैसा नहीं हूँ। जैसा मैं पापभीरु हूँ वैसा मैं पुलिस को भी मानता हूँ। मेरे पर लगाये गये आरोपों का एक ही कारण है और वह है समझ की भूल।...

'समझ की भूल का भी एक कारण है। वह यह है कि भगवान ने मुझे किसी न्यायाधीश की तरह निर्दोष साधुवृत्ति वाला चेहरा न देकर एक भयंकर डाकू का चेहरा दिया। उसके लिये मुझे दण्ड न देकर भगवान को दण्ड मिलना चाहिये।...

'पंजाब में डाकेजनी के कारण काले पानी की सजा भुगतने वाला, वहाँ से भागने वाला और बिहार, खानदेश आदि राज्यों में अक्षम्य अपराध कर तहलका मचाने वाले किसी महा अपराधी रफीउद्दीन से मेरी आकृति हू-ब-हू मिलने के कारण ये लोग मुझे ही रफीउद्दीन समझ बैठे हैं।...

'इसलिये मेरा बचाव यही है कि असली डाकू रफीउद्दीन को पकड़ा जाय और मुझे निर्दोष करार देकर छोड़ दिया जाय। उसके पकड़े जाते ही पता चल जायगा कि मेरा कहना कितना ठीक है। अपराधी को अपने पक्ष में साक्षी जुटाने में सहायता देना न्यायालय का कर्त्तव्य है, इसलिए अपनी साक्षी या गवाह के रूप में रफीउद्दीन को पकड़कर लाने के लिए मुझे जमानत पर छोड़ दिया जाय।' इतना कहकर रफीउद्दीन उर्फ योगानंद मुस्कराता हुआ बैठ गया।

न्यायाधीश ने उससे फिर कहा, 'योगानन्द! तुमसे कुछ बातें और पूछनी हैं। इनका उत्तर ठीक दो, क्योंकि इनका उत्तर देना तुम्हारे हित में होगा।'

'पूछिये महाराज!' रफीउद्दीन ने हाथ जोड़कर कहा।

'तुम्हारा ठीक नाम क्या है?'

'योगानन्द गोस्वामी।'

'तेरा धन्धा या काम-काज क्या है?'

'मेरा धन्धा कहने को कुछ नहीं है। भगवान की उपासना को ही मेरा धन्धा समझ लीजिए।'

'इन अपराधियों में कुछ तेरे शिष्य बन गये, क्या यह ठीक है?'

'इनमें से कुछ मेरे शिष्य बन गये यह ठीक है, पर वे चोर-उचक्के हैं इसका मुझे क्या मालूम?'

'तेरे विरुद्ध गवाही देने वाला हसन भाई तेरा परिचित है। इसके बारे में तू क्या जानता है?'

'मैं इसे पहचानता हूँ पर इसका यह नाम मुझे नहीं मालूम। यह रामलाल कहकर मेरा शिष्य बना है, इतना ही मैं इसके बारे में जानता हूँ। दूसरा यह कि इसे भाँग-चरस का अत्यधिक व्यसन है। नशे में यह जो कुछ अंडबंड बोलता है, देखता है, उसे होश में आने पर वास्तविक समझता है।

ऐसे नशे में ही मेरे बारे में यह उल्टा-सीधा बोल गया और होश में आने पर उसके इस गपोड़ पुराण को ही पुलिस ने मेरे विरुद्ध प्रमाण मान लिया।'

'मालती के बारे में क्या जानते हो ?'

'मालती के बारे में क्या जानता हूँ आपने यह प्रश्न क्यों पूछा ? जानता ही नहीं वह मुझे अत्यधिक प्रिय भी है।'

'मालती को तूने सर्वप्रथम कब देखा ?'

'रानी के बाग में, बम्बई में। उसे देखते ही मुझे वह इतनी प्रिय लगी कि मैंने उसकी कलम लाकर अपने बाग में लगा ली। महाराज, मुझे जुही आदि से मालती कहीं अधिक अच्छी लगती है। भजन के समय मैं गले में मालती की माला ही पहनता हूँ। मालती का पौधा कितना प्यारा होता है ?'

इच्छा न होने पर भी श्रोता ही नहीं न्यायाधीश को भी रफीउद्दीन की इस उद्दण्ड बात से हँसी आ गई। अपनी हँसी दबाकर न्यायाधीश ने अगला प्रश्न किया :

'तुझे भूत, भविष्य, वर्तमान में घटित घटनायें अन्तर्दृष्टि से दीखती हैं यह कहकर तूने लोगों को जाल में फँसाया, क्या यह ठीक है ?'

'महाराज ! भगवान के कीर्तन के समय मेरी अन्तर्दृष्टि के सामने भूत-भविष्य का चित्र सामने आ जाता है, यह ठीक है। पर इस कारण मैं लोगों को फँसाता हूँ यह ठीक नहीं है। मेरा भविष्य-कथन ठीक है या नहीं इस बारे में भी मैंने किसी से पूछा नहीं। मैं किसी से अधिक बात नहीं करता हूँ, किसी से दक्षिणा भी नहीं लेता। मैंने किसी को धोखा नहीं दिया। इसके विपरीत ऐसा लगता है कि यदि किसी को धोखा दिया गया है तो मैं ही हूँ और धोखेबाज ये लुच्चे-लफंगे मेरे विरुद्ध गवाही देने वाले ही हैं। इन लोगों ने मेरी साधुवृत्ति का लाभ उठाकर मेरा शिष्य बनकर पता नहीं कितने लोगों को ठगा है। मैंने कभी इस ओर ध्यान दिया ही नहीं।'

'तेरी अन्तर्दृष्टि अब भी खुली हुई है क्या ? यदि ऐसा है तो मेरे बारे में एक-दो भविष्य की बातें बता !'

'हाँ महाराज ! जैसा सामने का खम्बा मुझे दीख रहा है उसी प्रकार

आपके भविष्य की एक-दो बातें मुझे स्पष्ट दीख रही हैं। मैं आपकी ये बातें बताने ही वाला था, परन्तु···।'

'यदि दोनों बातें असत्य निकलीं तब ?'

'तब आप तीसरे भविष्य के बारे में न पूछें ?'

'अच्छा बता, मेरे बारे में दो भविष्य। गोलमोल भाषा में नहीं, स्पष्ट भाषा में होना चाहिये। बोल ?'

'महाराज, मैं बिल्कुल स्पष्ट सीधी भाषा में आपका भविष्य बनाता हूँ। प्रथम आपको अपनी आँखों से अपनी मृत्यु का दुःखद प्रसंग देखने का अवसर कभी नहीं मिलेगा। दूसरा, स्पष्ट तथा मेरे लिए भी अशुभ होने वाला भविष्य यह है कि आप इस मुकदमे में मुझे निर्दोष छोड़ेंगे नहीं। यदि हिम्मत है तो मेरे इस भविष्य-कथन को आप असत्य कर दिखायें।'

इस बात पर मन्द-मन्द मुस्कराने वाला न्यायाधीश और सभी श्रोता अट्टहास कर उठे। पर सब के बीच में एक व्यक्ति जो चुप था और गम्भीर था वह था किशन।

न्यायाधीश ने चार दिन बाद निर्णय सुनाने की घोषणा कर अदालत की उस दिन की कार्यवाही समाप्त करने की घोषणा की।

७. मालती गुलाम हुसेन के शिकंजे में

विश्व के सभी धर्मों के महत्त्वपूर्ण धर्मस्थानों में सर्वाधिक प्राचीन और भूत-काल की तरह आज भी कोटि-कोटि हिन्दुओं के लिये धर्म और ज्ञान के तीर्थ काशी नगरी में गंगा के तट पर एक पुराना घाट है जहाँ एक महादेव का मंदिर एकान्त में स्थित है। कुछ बड़े वृक्षों और घनी लताओं के कारण यह एकान्त और भी गोपनीय हो गया था।

जिस प्रकार कोई महारानी राजदरबार में सामंतों, सेनापतियों, मंत्रियों और सम्मानित नागरिकों का अभिवादन स्वीकार करते-करते थक जाने पर शाम को अन्तःपुर में आने पर अपने बाल खोलकर, अपना शृंगार-आभूषण उतारकर, घरेलू वस्त्र पहनकर उन्मुक्त रूप से अपनी फुलवारी

में घूमती है उसी प्रकार भागीरथी, काशी नगरी के लक्षावधि भक्त नागरिकों का, राजदरबारियों का, पण्डे-पुजारियों का पूजा-अर्घ्य स्वीकार करने के बाद शाम के समय इस एकान्त घाट पर उन्मुक्त लहरों के रूप में खेलते-मचलते बह रही थी। सामने पश्चिमी आकाश में संध्याकाल का अस्तमान सूर्य अपनी लालिमा से रकताभ होली के बिखरे गुलाल की प्रतीति दे रहा था।

इस एकान्त स्थान पर, इस पुराने घाट पर, एक व्यक्ति भागीरथी की मंथर जलधारा में मंत्रोच्चारण करते हुए सान्ध्य स्नान कर रहा था। स्नान से पूर्व उसने अपने कपड़े धोकर मंदिर के चारों ओर खड़े एक पेड़ पर सुखा दिये थे। स्नान के बाद गीले वस्त्रों में ही उसने सूर्यनारायण को अर्घ्य दिया, और बाद में अधसूखे कपड़ों को ही पहिनकर कुछ बिल्व-पत्र और चम्पा के कुछ फूल लेकर देवालय के अन्दर स्थित शिवलिंग के सामने हाथ जोड़कर मन-ही-मन प्रार्थना करने लगा—

'हे प्रभु ! मेरी अपनी मूर्खता से ही मुझ पर आये राक्षसी योगानन्द के संकट से आपने मुझे उबार लिया है। इस पापी के संसर्ग से मुझ पर डाके और नर-हत्या के जो आरोप लगे थे उनसे मेरी मुक्ति आपकी ही दया का फल है।...

'परन्तु हे देव ! न्याय तो निष्पक्ष होना चाहिए। मेरे से भी अधिक निर्दोष, निरुपाय उस कुमारी पर आपकी दया-दृष्टि क्यों नहीं है ? न्यायाधीश ने मुझे निरपराध करार दिया है, पर मैं स्वयं को मालती का पता मालूम होने पर भी उसे दूसरी जगह एक नर-पशु गुलाम हुसेन के हाथ में सौंपने के लिए अपराधी मानता हूँ। मुझे उस समय नहीं मालूम था कि मैं क्या कर रहा हूँ। फिर भी, अनजाने में ही सही, अपराध कर ही बैठा हूँ।'

'हे प्रभु ! आप मुझे अब इस अपराध से भी मुक्ति दिलाइये। मुझे ऐसी शक्ति दीजिये कि मैं मालती को उस नर-पशु के शिकंजे से छुड़ा सकूँ। हे प्रभु ! आप सर्वसमर्थ हैं, और सज्जनों को संकट से उबारते हैं, इसलिए तेरे चरणों में प्रार्थनारत हूँ।'

भक्ति-भाव से गद्गद वाणी में प्रार्थनारत इस अंतिम वाक्य से —'तू सर्व-समर्थ है, तू सज्जनों का रक्षक है'—उसका हृदय उद्वेलित हो उठा।

उसका बाह्य आकार तो निस्तब्ध, निःशंक हो गया, पर अन्तर्मन में अनेक शंकाएँ उत्पन्न हो गईं—

'देव ! आप यदि सर्व-समर्थ और दयालु हैं तो सर्वप्रथम उन सज्जनों को संकट में डालते ही क्यों हैं ? क्या सज्जनों की परीक्षा के लिए ही आप दुष्टों को प्रबल होने देते हैं ? पर जब आपको सब मालूम है तब भक्तों की परीक्षा लेने की जरूरत ही क्या है ? पहले कष्ट देने फिर उससे मुक्ति दिलाने वाले को क्या दयालु कहा जा सकता है ?...

'पाखण्ड ! पाखण्ड !' उसने कुछ ऊँची आवाज में कहा और तेज़ी से चहलकदमी करने लगा। कुछ देर बाद शांत होने पर उसने अपने पूर्व-विचारों को पूर्णतः मन से निकालने के लिये गंगा के पवित्र शीतल जल से आचमन किया और इस दूषित विचार-शृंखला को दूसरी ओर मोड़ने के लिए पश्चिमी आकाश में अस्तोन्मुख सूर्य के कारण क्षण-क्षण में बदलती रंगावली को देखने लगा। अस्तंगत सूर्य की लाल, गुलाबी, सुनहरी किरणें गंगा की उलट-पुलट होती लहरों पर भी पड़ रही थीं तथा उसके प्रतिबिम्ब से लहरों में इन्द्रधनुष उतर आने की भ्रान्ति होती थी।

धीरे-धीरे पश्चिमी क्षितिज पर वह सुनहरी छटा उसी प्रकार म्लान होने लगी जैसे किसी तेजस्वी धुरन्धर पुरुष की मृत्यु पर राष्ट्र का जीवन म्लान हो जाता है। गंगा की जलधारा भी श्यामल होने लगी और जो बादल लाल आभा के कारण प्रफुल्लित गुलाब लग रहे थे वे अब राख के ढेर लगने लगे।

अंधकार के आगमन के साथ ही उस युवक के मन में पुनः अनेक विचार उठने लगे—'मालती कहाँ होगी ? इस पश्चिमाकाश की तरह उसका गुलाबी रूप भी काला पड़ गया होगा', वह फिर घाट पर इधर-उधर घूमने लगा।

यह युवक किशन था। योगानन्द उर्फ रफीउद्दीद के डाकू-दल में फँसने से पूर्व वह यहीं काशी में वेदान्त का छात्र था। छात्रकाल में वह अनेक बार इस एकान्त में स्थित महादेव के मन्दिर में आकर बैठा करता था। इसी महादेव को वह अपना आराध्यदेव मानता था। अपनी मुक्ति के लिए उसने इसी देवता से प्रार्थना की थी। उसे इलाहाबाद जेल से छूटे चार-पाँच

दिन ही हुए थे। न्यायालय ने अपने निर्णय में रफीउद्दीन अहमद को आजन्म काले पानी की सजा दी थी तथा उसके अनेक साथियों को सात से लेकर दस वर्ष के कारावास का दण्ड दिया था। दो व्यक्ति पूर्णतः मुक्त किए गए; एक हसन भाई सरकारी गवाह बनने के कारण तथा दूसरा किशन पूर्णतः निर्दोष होने के कारण।

जेल से छूटते ही वह सीधा काशी आया और काशी में भी इस एकान्त देवालय में आकर ठहरा। उसका कोई सगा-सम्बन्धी, कुटुम्बी नहीं था, अत्यन्त निर्धन था। मथुरा में रफीउद्दीन ने उसे चार-पाँच बार मालती को घर पहुँचाने का जो काम सौंपा था, वह इसलिए कि किशन देखने में कुछ कुरूप था। इस कुरूपपन के कारण ही उसका मालती से परिचय हुआ और जीवन में पहली बार किसी मधुरभाषिणी, दयालु व्यक्ति से उसकी भेंट हुई। मालती और उसकी माँ ने कई बार किशन के सुशील स्वभाव की प्रशंसा भी की थी। किशन के मन में यही शूल चुभ रहा था कि वही इन दोनों दयालु-प्रेमिल महिलाओं के दुःख का कारण है। मालती उसे जितनी मधुरता से बुलाती थी, उतनी आत्मीयता से उसे अब तक किसी ने नहीं बुलाया था।

'मालती! एक बार फिर मुझे उसी तरह बुलाओ न—'किशन!' उसने स्वयं ही मालती की तरह अपना नाम लिया। इसी प्रकार सोचता-विचारता वह स्वयं प्रकट रूप में बोलने लगा :

'बड़े-बड़े पुलिस अधिकारियों को गुलाम हुसेन का पता नहीं चला तो मुझे कैसे मिलेगा? यदि मिल भी गया तो मैं उस चाण्डाल चौकड़ी से मालती का छुटकारा किस प्रकार कर सकूंगा? यह असम्भव है? हे प्रभु! यदि यह संभव है तो मुझे मालती से शीघ्र मिलाइये। प्रभो, मुझे मालती से मिलाइये!' यह कहकर उसने देव के सामने साष्टांग प्रणाम किया।

इतने में ऐसा लगा कि घाट की सीढ़ियों पर किसी ने हलकी-सी सीटी बजाई है। उसने मुड़कर देखा कि कोई धुंधली आकृति पानी पर झुकी हुई है। उसके बाद उसे घड़ा पानी में डुबाने और भरने की आवाज़ भी आई।

'ऐसी काली रात में गंगा से पानी भरने कौन आया है? यहाँ बहत

कम ही लोग आते-जाते हैं। यहाँ पानी भरने की जगह भी ठीक नहीं है। यहाँ पानी भरने के लिए आने का मतलब है कि पानी लेने वाला कहीं पास ही ठहरा है। कोई मुसाफिर होगा !'

इस तरह मन-ही-मन विचारकर किशन उस अस्पष्ट आकृति को देखने लगा। यह व्यक्ति घड़े को कंधे पर रखकर पहले की तरह सीटी बजाता हुआ, जिस रास्ते से आया था उसी रास्ते से न लौटते हुए मन्दिर के साथ लगे रास्ते के पास आया तो उसे देखकर किशन चौंक उठा। वह बेलों की आड़ में छिपते हुए उसे ध्यान से देखने लगा। जब वह व्यक्ति उसके पास से आगे निकल गया तब किशन को क्रोध, भय और आनन्द की तीन अनुभूतियाँ एक साथ हो गईं।

'यह पूरी तरह निश्चित है कि यही गुलाम हुसेन है ! मुकदमे में हसन भाई द्वारा कही गई बात यदि ठीक है तो मालती को भगाने का काम इसी ने किया है। इसने मालती को कहीं बलोचिस्तान तो नहीं भेज दिया ? कहीं बेच तो नहीं दिया ? या अपने पास ही रख लिया है ? यह यहाँ कैसे आया ? यह इस एकान्त स्थान पर छिपकर चोर की तरह रह रहा है। यदि मालती उसके पास है तो दीखेगी कैसे ? मैं इसका पीछा करता हूँ, हो सकता है मालती को भी इसने यहीं कहीं छिपा रखा हो ? संयोग की बात है। मैं इसे मार दूंगा या मर जाऊंगा, पर मालती को मुक्त करूँगा।'

इस अन्तिम विचार से उसमें हाथी की शक्ति और शेर-सी स्फूर्ति आ गई। 'किशन मुझे छोड़कर नहीं जाना!' ऐसा मालती का करुण आर्त्त-नाद उसके कानों में गूंजने लगा।

किशन ने तेजी से उसका पीछा किया। वह कहाँ जा रहा है इतना दीख सके, इस दृष्टि से कुछ निश्चित दूरी पर दबे पाँव चलने लगा। अब किशन को इसमें कोई संदेह नहीं रह गया कि यह व्यक्ति गुलाम हुसेन ही है। गुलाम हुसेन मार्ग छोड़कर एक टेकड़ी की ओर बढ़ा। थोड़ी दूर चलने के बाद एक पत्थरों का ऊँचा-सा चबूतरा आया, इसका चक्कर लगाके उसने एक पत्थरों की बाड़ पर अपना घड़ा उतारकर रखा और कूदकर उसे पार किया, इसके बाद घड़ा उठाकर वह एक वटवृक्ष की आड़ में बने खपरैल

के एक जीर्ण कोठे के द्वार पर आकर रुक गया। इसके पीछे सुरक्षित दूरी पर पीछा करने वाला किशन भी पत्थरों की बनी बाड़ के पास आकर रुक गया और वहीं से देखने लगा कि गुलाम हुसेन के घर के बाहर कौन आता है। घर के दरवाजे की सँध से प्रकाश को देखकर उसके मन में आया कि कहीं अन्दर मालती तो नहीं है ? उत्सुकता से उसके हृदय की धड़कन बढ़ गई। गुलाम हुसेन ने घडा नीचे रखा और कमर में खोंसी गई किसी वस्तु को निकालकर दरवाज़े पर लगी चौखट की साँकली की ओर हाथ बढ़ाया। किशन ने देखा कि दरवाजे पर ताला लगा हुआ है। यह देखकर, अन्दर कोई नहीं है इस कल्पना से उसका हृदय मुरझा गया। उसे ऐसा लगा कि मालती हाथ में आकर जैसे पुनः निकल गई। इतने में ही गुलाम हुसेन ने ताला खोलकर जोर से दरवाज़ा खोला और खोलते ही अपनी कर्कश आवाज़ में गुर्राया :

'रोशन ! रोशन, लालटेन बाहर ला ! क्या नहीं आती ?···घसीट के लाऊँ !···'

यह सुनकर किशन काँप गया। अन्दर कोई स्त्री है और वह कड़े पहरे में रखी गई है। बाहर जाते समय यह राक्षस ताला लगाकर जाता है। यह स्त्री अब भी उसका कहना नहीं मानती है तथा यह उसने साथ मारपीट भी करता है। इतनी सब जानकारी किशन को उससे चार शब्दों के वाक्य से मिल गई। इस सब स्थिति को समझने के बाद उसने स्वयं को समझाया, 'हो न हो, अन्दर मालती ही होनी चाहिए ! रोशन मालती का ही नाम रखा गया है। क्या वह लालटेन लेकर बाहर आयेगी?'

भारी उत्सुकता से उसका हृदय धड़क उठा। गुस्से से होंठ फड़कने लगे। लालटेन को दरवाजे के पास आते देखकर वह पत्थरों के पीछे छिपकर देखने लगा।

दबाई हुई आग जैसे थोड़ी उघड़ी जगह से भी ज्वाला छोड़ती है, उसी प्रकार गुलाम हुसेन की 'आती है कि नहीं ? इधर और आगे।' ऐसी कर्कश वाणी सुनकर जिद्दीपने से तथा रुकते हुए, मुसलमानी वेश में एक तरुणी कुछ देर बाद लालटेन लेकर बाहर आई और गुलाम हुसेन के कहने के अनुसार लालटेन को एक खूंटी पर लटकाकर पुनः अन्दर जाने लगी।

तभी गुलाम हुसेन ने उसे पकड़ लिया। पास ही पड़े वृक्ष के कटे तने पर कुर्सी की तरह पैर लटकाकर वह उस तरुणी को अपनी गोद में खींचते हुए बोला :

'आ यार ! हँस ! मैं तेरे साथ प्रेम का मजा लूटूंगा ही ! अपना सुन्दरमुख दिखा !···नहीं उठाती मुख ऊपर ? तब मैं जबरदस्ती तेरा मुख ऊपर उठाऊँगा और तेरी खूबसूरती की शराब पीऊँगा !'

इस प्रकार लाड से बोलते हुए उसने उस तरुणी का मुख ऊपर उठाकर दीये के प्रकाश की ओर कर दिया और उसकी मुख-मदिरा का पान करते हुए उसके मुख पर चुम्बनों की झड़ी लगा दी।

'वाह वाह ! इस अँधेरी रात में नया चाँद ! ए रोशन, क्या बोलती थी तेरी माँ ? मालती ? ए मालती ! मेरी जान।'

यह सब देखकर किशन को यह अँधेरी रात और भी काली दीखने लगी। उसको अब कोई शंका नहीं रही कि यह मालती ही है। उसने सोने की थाली में सजाकर रखी गई पूजा की शुभ्र और पवित्र फूलमाला की तरह मथुरा में जिस मालती को देखा था, उसे एक राक्षस की गोदी में छटपटाते देखकर उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया।

'मालती ! तू दुःखी क्यों होती है ? तुझे तेरी माँ अच्छी लगती है, इसलिए तू रोती है, जिद करती है, मुझे झिडकियाँ देती है ? तुझे रोज मेरी शैया पर सोना है, मुझे जबरदस्ती करनी पड़ती है, तू अपनी इच्छा से ही यह सुख मुझे क्यों नहीं देती ? मैं तेरी माँ को भी भगाकर यहीं ले आऊँगा, फिर तो तू मेरे साथ खुशी से सोयेगी ? तेरी माँ को···'

'मरे मुर्दे, खबरदार जो अपने गन्दे मुख से मेरी माँ का नाम लिया। तेरे मुख में आग लगे !' यह कहकर मालती ने गुस्से में गुलाम हुसेन के हाथों में ऊपर उठे अपने मुख को इस तेजी में घुमाया कि उसका सिर गुलाम हुसेन की ठोढी में खटाक आवाज़ के साथ इतनी जोर से टकराया कि वह पिशाच कराह उठा और उसने क्रोध और वेदना से मालती को जोरदार थप्पड़ मारकर जमीन पर धकेल दिया।

'राक्षस, अभी तेरा गला घोंटता हूँ !' यह सोचकर किशन क्रोध से उस पत्थरों की बाड़ पर चढ़ने लगा—'तेरे प्राण ले लूंगा या अपने प्राण दे

दूगा !' यह सोचकर तेजी से जब उसने दीवार पर एक पैर रखा, तभी नीचे का पैर एक पत्थर के लुढ़क जाने से गड्ढे में फँस गया। इसके साथ ही उसके क्रोध की लहर भी रुक गई। फँसे पाँव को निकालते हुए उसके मन में एक और ही विचार आया। उसे लगा कि 'गुलाम हुसेन के प्राण लेने के बजाय अपने प्राण देने का विकल्प अधिक संभव है, क्योंकि गुलाम-हुसेन के पास हथियार होगा और मैं निहत्था हूँ। हो सकता है मेरा गुस्सा मालती पर उतारकर वह उसे मार डाले ! यह भी संभव है कि उसका कोई और भी साथी इस घर में रहता हो ! इसलिए जल्दबाजी में ऐसा न हो कि मालती को संकट-मुक्त करने का जो अवसर आया है वह बेकार हो जाय !' यह सोचकर किशन उस दीवार की आड़ में छिपकर देखने लगा कि आगे क्या होता है।

धक्के के कारण जमीन पर गिरी मालती उसी प्रकार पड़ी हुई रुदन कर रही थी। गुलाम हुसेन उसके पास खड़े होकर उसकी सुन्दर देहयष्टि को ललचाई नजर से देखते हुए और अधिक आतुरता से हँसते हुए बोला :

'वाह रे खूबसूरती ! यह छोकरी कितनी सुरेख और प्यारी लगती है ! खड़े होने की अपेक्षा करवट लेकर लेटी हुई तेरी ये हरिणी की तरह देह और तेरे ये सुन्दर नाजुक पाँव और भी अधिक मनमोहक लगते हैं। इस स्थिति में तेरी तनु-लता में एक नई ही शोभा दीखती है। सैकड़ों स्त्रियों की खिलखिलाहट में भी इतना आनन्द नहीं है जितना तुझे लेटे हुए हिचकियाँ भरकर रोते हुए देखने में आता है। छोकरी उठ, नखरा छोड़। तेरे डाँटने-झिड़कने से मैं तुझे छोड़ूँगा नहीं। लात मारने वाली गाय को भी बाँधकर दूध दुहा जाता है। मैं तेरे रूप की गाय को दोहूँगा, दोहता रहूँगा।'

गुलाम हुसेन ने उसे स्वयं उठाकर बिठाया और उसके पास बैठकर प्यार से उसके शरीर पर हाथ फेरते हुए बोला :

'प्यारी मालती ! मैं तुझे दिन-भर ताले में बंद रखता हूँ, इसलिए गुस्सा करती है ? पुलिस को तेरा पता न लगे इसलिए ऐसा करता हूँ। यदि पुलिस ने तुझे पकड़ लिया तो वह तेरी पूरी दुर्गति करेगी। यदि तेरे जैसी मैना किसी दूसरे के कब्जे में पड़ जायेगी तो वह तेरे इन नखरों के

एंखों को काट डालेगा। मेरी प्यारी, मैं तेरे ये सारे नखरे चलने दे रहा हूँ। कोई और भेड़िया तेरी दुर्दशा न करे, इसलिए मैं तुझे बकरियों के इस कोठे में ताला लगाकर बंद रखता हूँ। परंतु मैं दो-चार दिन में ही तुझे यहाँ से इतनी दूर एक जंगल में ले जाऊँगा कि यहाँ की पुलिस का बाप भी हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा। वह हरामी रफीउद्दीन जन्म-भर के लिए काले पानी के नरक में डाल दिया गया है। अब पुलिस भी हमें भूल जायेगी। मुझे यहाँ यह ऐसी जगह मिली है जहाँ मैं तेरे साथ निश्चिन्त होकर आनंद ले सकता हूँ। इस डाके में मुझे रत्नों के दो हार मिले हैं—एक सोना और दूसरी तू मेरी सोनी! बस, भोग ही भोग! विलास ही विलास! तूने मेरे जन्म की सारी साध पूरी कर दी! आज तक कमाई और अब रमाई! सम्पत्ति का उपभोग! प्यारी, हँस न!' यह कहकर वह मालती को गुद-गुदी करने लगा।

मालती को यह गुदगुदी ऐसे लगी जैसे कोई भालू अपने नाखून गड़ा रहा हो। गुलाम हुसेन द्वारा पुलिस का उल्लेख करने से किशन का मन संतोष से गुदगुदा उठा। उसे ऐसा लगा कि अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए उसे गुरुमंत्र मिल गया है।

अभी पुलिस चौकी पर जाकर यह बात बतानी चाहिए। अट्ठारह वर्ष से कम आयु की कुमारी का अपहरण गुलाम हुसेन का घोर अपराध है। गुलाम हुसेन के नाम भी वारण्ट है। वह अब फाँसी के तख्ते पर झूलेगा और मालती पुनः मथुरा में उस दुमंजिले मकान के बरामदे में उसी प्रकार गानों की तान के उल्लासपूर्ण आकाश में किसी सुन्दर पक्षी की तरह झोंके खायेगी! कितना आनन्द होगा उसे! 'कि···श···न!' यह प्यारी आवाज़ कानों में पुनः गूँजती प्रतीत हुई।

आनन्द के अतिरेक में यह सूचना पुलिस को देने की जल्दी में किशन आहट न देते हुए दीवार की आड़ में ही रास्ते पर जाने के लिए जैसे ही मुड़ा, तभी वह भयंकर चीत्कार कर उठा—हाय अम्मा!

एक विकराल कुत्ते ने भों-भों कर गुर्राते हुए उसकी पिण्डली के मांस को अपने मुख में दबा रखा था और छोड़ नहीं रहा था।

यह गुलाम हुसेन के घर के पास का पालतू शिकारी कुत्ता था। यह

अँधेरे में इसी दीवार पर बैठा था। किशन के अपनी जगह से हिलते ही उस पर इसकी दृष्टि पड़ी और उसने उछलकर किशन की पिण्डली अपने मुँह में दबोच ली।

बाड़ के पास किसी के चीखने की आवाज सुनकर कामातुर गुलाम-हुसेन चौंक पड़ा। हो न हो, उसके कुत्ते ने ही किसी आने-जाने वाले को अँधेरे में काट लिया लगता है। यह ध्यान में आते ही कि इस छिपने की जगह कोई गड़बड़ न हो तथा लोगों का ध्यान इधर न जाये इस दृष्टि से मामले को यथाशीघ्र चुपचाप निपटाने के लिए वह मालती को घर के अन्दर जाने का आदेश देकर लालटेन लेकर पत्थरों की बाड़ के पास दौड़ता हुआ आया। इस बीच किशन ने एक मोटा पत्थर उठाकर कुत्ते के सिर पर दे मारा। वह पिण्डली छोड़कर चिल्लाता हुआ पीछे हट गया, पर फिर भी भोंकते हुए किशन पर दूसरा हमला करने की कोशिश कर रहा था।

किशन की कटी पिण्डली से खून की धार बह रही थी, असह्य वेदना भी हो रही थी। वह अपने स्थान से हिल भी नहीं सकता था। गुलाम-हुसेन के पास आते ही वह बोला :

'मैं इस अँधेरे में दिया देखकर रात-भर के लिए आसरा पाने के विचार से इधर आ रहा था कि तुम्हारे कुत्ते ने मुझे ही मार डाला होता।'

'कराहने की क्या ज़रूरत है, चिल्लाना क्यों है?' गुलाम हुसेन मामले को रफा-दफा करने के लिए बोला, 'यह पिशाच कुत्ता मेरा पाला हुआ नहीं है, फिर भी मैं तेरे घाव पर पट्टी करता हूँ। रात-भर इस घर के पास ही सो जाना और सवेरा होते ही अपने रास्ते चले जाना, नहीं तो अस्पताल जाना।' गुलाम हुसेन को मामले को जल्दी निपटाने के लिए यही उपाय सूझा।

काफी प्रयास से गुलाम हुसेन ने किशन को उठाकर बाड़ को लाँघा और उस लालटेन के अस्पष्ट प्रकाश में उसे आँगन में लाकर बिठा दिया और पानी से घाव धो-पोंछकर रक्त बंद करने के लिए एक दवाई लगाकर पट्टी बाँध दी और लालटेन पुनः खूंटी पर टाँग दी। किशन वहाँ पेड़ के तने से अपनी पीठ टेककर बैठ गया था। लालटेन के नीचे रखे होने के

तथा सारा ध्यान उस यात्री के पैर की दवा-दारू में ही होने के कारण गुलाम हुसेन को इस यात्री के बारे में किसी प्रकार की कोई शंका नहीं हुई। उसने किशन को योगानन्दी सम्प्रदाय के वेश में देखा था और अब वह एक नितान्त दरिद्री भिखमंगे की तरह था। इसलिए उसे पहचानना बड़ा कठिन था। लालटेन ऊपर टाँग देने पर उसका प्रकाश पूरी तरह उसके मुख पर पड़ रहा था।

इतनी देर तक घर के अन्दर रहने पर भी खिड़की से ही इस यात्री को देखते रहने के कारण कि यह यात्री कौन है, इस बारे में मालती के मन मैं अनेक बार शंका उठी। लालटेन के प्रकाश में अब किशन का मुख स्पष्ट रूप से दीखने के बाद उसकी शंका निश्चय में बदल गई थी।

'किशन!' मालती के मुख से उसका नाम हठात् निकल गया। मथुरा में देखने के बाद उसके साथ क्या हुआ इस बारे में उसे कोई जानकारी नहीं थी। उसको पहिचानते ही उसके मन में सबसे पहले यही बात उठी कि इसे मेरी माँ कहाँ है इस बात की जानकारी होनी चाहिए। पर ऐसे पर-पुरुष से जो योगानन्द-गुलाम हुसेन की चाण्डाल चौकड़ी के बारे में सब जानता है, और यह भी जानता है कि मेरा अपहरण भी इन्होंने ही किया है—प्रत्यक्ष रूप से बातचीत जहाँ उसके अपने लिए घातक है वहाँ किशन के लिए भी घातक हो सकती है, यह भय भी मालती के मन में उठ रहा था। फिर भी उसने यह निश्चय कर लिया कि चाहे कुछ भी हो, गुलाम-हुसेन के सो जाने पर वह किशन से एकान्त में माँ के बारे में बातचीत करेगी। यह सोचते हुए वह किशन को एकटक देख रही थी कि उसकी दृष्टि गुलाम हुसेन पर पड़ी जो उसे ही देख रहा था। मालती तत्क्षण खिड़की के सामने से हट गई। उसने अनुभव किया कि 'यह राक्षस गुस्से में आ गया है, कहीं उसे किशन के बारे में सन्देह तो नहीं हो गया है?'

लालटेन के प्रकाश में किशन को देखकर जो सन्देह मालती के मन में पैदा हुआ था वही सन्देह मालती को एकटक किशन को देखते हुए देख-कर गुलाम हुसेन के मन में भी पैदा हो गया था। अपने सन्देह को पुष्ट करने के लिए वह उस विशाल कुत्ते से भी अधिक क्रूर वाणी में गुर्राया :

'किशन!···किशन!'

किशन हड़बड़ाकर उठा। उसे यह बात भूल ही गई कि उसे अपना नाम छिपाना है और यह ध्यान आने से पहले ही वह बोल उठा, 'हाँ, क्या है ?'

'अरे हरामखोर, पकड़ा गया न तू ? दुष्ट, वेश बदलकर चोरी से यहाँ मेरा भेद लेने आया है ? बोल ! मालती को ढूँढने तू यहाँ आया है ? तू चाहता है कि मुझे फाँसी हो जाये ? काफिर ! बेईमान !'

'तू बेईमान, तेरा बाप बेईमान।' किशन गुस्से से उठ खड़ा हुआ।

'अभी छुरे से तेरा पेट फाड़ता हूँ ! मेरा छुरा···छुरा !' उसने खम्बे के पास छुरा देखा, वहाँ नहीं था। उसे याद आया छुरा खाट पर तकिये के नीचे है।

दरवाजे के पास खड़ी मालती को भी यह बात याद आ गई। उसने झटपट छुरा निकालकर उसे अपनी साड़ी में छिपा लिया और एक कोने में खड़ी हो गई। इसी छुरे से गुलाम हुसेन ने मालती के सामने ही अपने एक साथी को मार डाला था। ऐसे ही किशन को भी वह मार सकता है, इस भय से मालती काँप उठी।

छुरा लाने के लिए गुलाम हुसेन तेजी से दरवाजे में घुसा, किशन भी उसके पीछे ही लपका और उसने गुलाम हुसेन की कमर कसकर पकड़ ली। दोनों धक्का-मुक्की में खाट पर गिर पड़े। किशन को अपने पैर का दर्द बिल्कुल भूल गया था।

दोनों झगड़ते हुए एक-दूसरे का गला दबाने और अपना गला छुड़ाने का प्रयत्न कर रहे थे।

गुलाम हुसेन चिल्लाया, 'ला-ला, मालती ! छुरा ला !' यह सुनकर मालती आगे बढ़ी। पर इस छुरे से यह भीमकाय गुलाम हुसेन क्या मर सकेगा ? यह शंका उठने से वह कुछ रुक गई, तभी मन ने उसे धिक्कारा, 'अरे, रुकती क्यों है ? मूर्ख लड़की, इस छुरे से ही, तेरे सामने ही एक व्यक्ति को मार डाला गया था कि नहीं ?'

'ला छुरा ला !' गुलाम हुसेन ने अपना एक हाथ किशन के हाथ से छुड़ाकर उठाते हुए मालती से पुनः कहा।

'ले, छुरा ले !' दाँत पीसते हुए मालती छुरा लेकर दौड़ी और उसने

एक-दूसरे की पकड़ में पड़े गुलाम हुसेन के पेट में पूरी शक्ति से वह तेज लम्बा छुरा घुसेड़ दिया।

छरा इतनी आसानी से अन्दर घुस गया, इससे क्रोध में भी मालती को हँसी आ गई—'मैंने बेकार में ही इतनी जोर से छरा घोंपा, आधी शक्ति से भी यही काम हो सकता था।'

'आँ-आँ, घों-चों।' ऐसा दो-तीन बार चिल्लाहट के साथ गुलाम हुसेन का भीमकाय शरीर धम्म की आवाज़ से जमीन पर गिर पड़ा और वह फिर नहीं उठा। अपने ही रक्त के तालाब में उसके प्राण डूब गये।

'मर गया! मर गया।' किशन ने ताली बजाई।

'किशन, अब क्या होगा?' मालती ने किशन को देखते हुए काँपती वाणी में कहा।

'अब?··· तुम्हीं बताओ मालती, अब क्या करें?'

बेखबर, रक्त-पात के नशे में धुत, विचार-शून्य दोनों ही क्षण-भर के लिए एक-दूसरे को देखते रहे। चारों ओर रात्रि का घना अन्धकार और प्रगाढ़ होता जा रहा था।

८. किशन और मालती गिरफ्तार

'अब क्या होगा?' मालती के इस प्रश्न का उत्तर क्या दिया जाये इस बारे में अनेक उत्तर सोचते हुए किशन स्वयं 'अब क्या करें? क्या करें?' यह अस्पष्ट बोलते हुए मालती को देखता रहा। इतने में ही उसे उस विकराल कुत्ते का भोंकना फिर सुनाई दिया जिससे सारा क्षेत्र गूंज रहा था।

अपने सिर पर भारी पत्थर लगने के कारण वह पास आने से डर रहा था, पर भोंक-भोंककर वह आस-पास के लोगों को आर्त स्वर में सहायता के लिए बुला रहा था। अब तक किशन और मालती को बाह्य जगत् की कोई सुध नहीं थी, पर इस कुत्ते के भोंकने से किशन को ऐसे लगा जैसे सारी दुनिया गुलाम हुसेन के रक्त-रंजित शरीर के पास खड़े उन

दोनों की ओर उँगली दिखाकर उनको हत्यारा बताकर उन्हें पकड़ने की माँग कर रहा है। उसकी किंकर्तव्य-विमूढ़ता दूर हो गई। उसे लगा कि यदि वे यहाँ कुछ देर और रुक गये तो इस दुष्ट के छुरे से बच जाने पर भी वे दोनों ही फाँसी के तख्ते पर होंगे।

मालती को फाँसी हो सकती है, इस विचार के धक्के से ही किशन चौंक गया। उसने एक मोटा पत्थर उठाकर उस कुत्ते को मारा। तभी वह क्या देखता है कि पड़ोस के एक खेत में कुछ व्यक्ति लालटेन लिये उसकी ओर देखकर बातें कर रहे हैं।

वे लोग कुत्ते का भोंकना सुनकर पत्थर की बाड़ की दूसरी तरफ आकर खड़े हो गये थे। इसके बाद उन्हें इस झोपड़ी से गुलाम हुसेन और किशन की गाली-गलौच और जोर-जोर से एक-दूसरे पर चिल्लाने की आवाज सुनाई दी थी। बाद में छुरा लगने पर गुलाम हुसेन जैसे चीखा था उससे भी इन्होंने यह कल्पना कर ली थी कि कुछ भयंकर घटना घट रही है। ये नजदीक इसलिए नहीं आये कि कहीं इस झगड़े में वे स्वयं भी न फँस जायें। उनकी यह भी कल्पना थी कि वहाँ रहने वाली एक सुन्दरी को लेकर ही यह झगड़ा चल रहा होगा।

इन्हें देखते ही 'हमारी हत्या की बात प्रकट हो गई है' इस भय से किशन घबरा गया। उसने झट अपनी लालटेन बुझा दी और मालती का हाथ पकड़कर कहा, 'चलो यहाँ से निकल चलें। हमें पकड़ने के लिए लोग इकट्ठे हो रहे हैं। देखो घेरा डाला जा रहा है। चल!'

'परन्तु कहाँ चलें?'

'जिधर रास्ता मिले उधर ही चल, जहाँ इच्छा हो चल, परन्तु इस स्थान से जितना संभव हो दूर चले जाना चाहिए। जल्दी कर!'

'पर तू कैसे चल सकेगा? तेरे पैर में घाव हो गया है न?'

'एक पैर में ही तो चोट है, दूसरा तो ठीक है न? उसी से जितना चल सकूँगा, चलूँगा, पर यहाँ से चल पड़।'

'गुलाम हुसेन का शव?'

'इसे यहीं पड़ा सड़ने दे, नहीं तो यह कुत्ता ही अपनी भूख मिटा लेगा। पर यहाँ से शीघ्र भाग। जरा ठहर, छुरा मुझे दे। उसके बारे में

किसी को कुछ मालूम तक नहीं होना चाहिए !'

ऐसा कहकर किशन ने अँधेरे में ही उस छुरे से गुलाम हुसेन के मुँह पर अनेक वार कर उसे विकृत कर दिया, 'अच्छा अब ताला ला, कहाँ है ?'

मालती ने अँधेरे में ही ताला निकाला और जल्दी में बाहर निकलते हुए उसका पैर रक्त में सन गया। उसने वह छुरा अपनी कमर मे खोंस लिया। उसने उस टूटे-फूटे दरवाजे को बंद कर काँपते हाथों से जैसे-तैसे ताला लगाया और आदत के अनुसार ताली अपनी कमर में खोंस ली—'अच्छा चल किशन, डर मत, मेरे हाथ पर अपना भार डालकर जितना चल सके चल। इस रास्ते का मुझे पूरा मालूम है। ठहर, दो-चार पत्थर उठा लूं। उस कुत्ते का ध्यान रखना कहीं लपककर पुनः हमला न कर दे।'

इस अँधेरे में ही उस बाड़ को लाँघकर उस चबूतरे का चक्कर लगाकर वे असली रास्ते पर आ गये।

'अब कहाँ चलें ? नगर की ओर ?'

'हट पगली, हम रक्त से सने हुए हैं, पहले गंगा-तट पर जाकर नहा-धोकर सभ्य बन जायें।'

'चल।'

'ठीक है, पहले महादेव के मंदिर में ही चलते हैं। रात वहीं बितायेंगे। मेरा रहने का मकान भी उधर ही है। वहाँ कुछ नींद पूरी करेंगे, फिर उसके बाद जो कुछ करना होगा देखेंगे। इस समय मेरा पैर भी बड़ा दर्द कर रहा है। चल मंदिर ही चलते हैं।'

मंदिर में आते ही मानसिक उत्तेजना से अत्यधिक श्रांत और दुर्बल मालती एकदम लुढ़क गई। किशन ने आश्वासन देते हुए कहा, 'तू निश्चित होकर सो। छुरा मुझे दे, मैं पहरा देता हूँ। अपना दुःख बिलकुल भुला दे।'

'दुःख ? कैसा दुःख ? मैं बताऊँ, मुझे इस समय कैसा लग रहा है ? आनन्द ! अत्यधिक आनन्द ! इसे कैसे व्यक्त करूँ ? मेरे घर में एक बार एक साँप निकला था। उसने मेरी मौसेरी बहन को डस लिया था। मुझे भी डसना चाहता था कि मैंने उसे मार डाला। तब मुझे जो आनन्द आया था वही आनन्द मुझे इस पिशाच को मारने से आया है। तू नींद लेने की बात करता है। मैं ऐसे ही ठीक हूँ। अब मुझे यह बता कि मेरी माँ के बारे

में तुझे कुछ मालूम है ?' और वह उठकर बैठ गई।

कीर्तन के बाद मालती के न मिलने तथा योगानन्द से पूछताछ करने पर उसने नायडू बाई और उसकी माँ को विश्वास में लेकर जिस तरह धोखा दिया गया और उसे खोजने के लिए किस तरह नागपुर भेज दिया गया आदि बातें किशन ने संक्षेप में कहीं तथा कहा कि इसके बाद की बात उसे कुछ नहीं मालूम। यह सब सुनकर मालती की विचार-शक्ति ही सुन्न पड़ गई और वह एक बार फिर जमीन पर लुढ़क गई। किशन भी पास ही लेट गया। कुछ देर पहले घटी घटना का भावी परिणाम क्या होगा, इस बारे में उसके मन में तूफान उठ रहा था। वह उठ बैठता, कभी मंदिर के बाहर जाकर देखता कहीं कोई है तो नहीं ? उसके सामने पुलिस की आकृतियाँ घूम रही थीं।

इसी प्रकार मालती के अचेतन मन में भी अनेक विचार उठ रहे थे। उसे सपना आया कि वह झूला झूल रही है। खूब ऊँचा पेंग बढ़ने पर रस्सी टूटने के साथ ही वह जमीन पर गिर पड़ी है। इस सपने के साथ ही मालती चिल्ला उठी—'माँ···माँ ! मुझे बचाओ, मेरा गला घुट रहा है, मैं मरी, हाय मैं मरी !' और उठकर बैठ गई।

किशन भी एकदम हड़बड़ाकर उठा। उसने मालती के कंधे पर हाथ रखा तथा उसकी पीठ सहलाते हुए उसे धीरज बँधाया। इतने में मालती उसके गले में हाथ डालकर उससे चिपट गई और बोली, 'किशन, मुझे बड़ा भय लग रहा है। मुझे अपनी भुजाओं में पकड़कर मेरे साथ सो ! मैं पहली बार स्वेच्छा से किसी को अपने पास सोने के लिए कह रही हूँ, ऐसा पहला पुरुष तू ही है !' किशन उसके पास लेट गया और दोनों थोड़ी ही देर में गाढ़ निद्रा-लोक में पहुँच गये।

मंदिर के पास के विशाल बिल्व वृक्ष पर जब कोयल ने अपनी पहली प्राभातिक तान छेड़ी तब किशन हड़बड़ाकर उठा और उसने काफी हिला-डुलाकर मालती को भी जगाया।

'मालती ! मैंने आगे की सारी योजना बना ली है। तुझे धीरज नहीं खोना है। अन्यथा बात नहीं बनेगी।···

मेरी क्या योजना है संक्षेप में सुन ! तू अब गंगा में जाकर अपनी यह

मुस्लिम वेश-भूषा और रक्त से सने इन कपड़ों को बहा दे और स्नान कर ले। मेरे कपड़ों में से ही एक धोती लेकर उसे भिखारियों की तरह पहन ले। एक कटोरा लेकर भीख माँगते-माँगते नागपुर तक अपनी माँ के पास चली जाना और···'

'चुप ! अधिक मत बोल, मेरी माँ को अब बिल्कुल भूल जा। अरे ! मेरी माँ मुझे देखते ही प्यार से मेरे गालों पर हाथ फेरेगी और मेरे गालों पर रक्त के जो धब्बे हैं उनसे उसके भी हाथ रंग जायेंगे। उसके शरीर पर मेरे हाथों के निशान से उस साध्वी की निर्मलता भी दूषित हो जायेगी। मैं जब अपनी माँ के आंगन में निर्मल फूल थी, तब मैं मालती थी। अब मैं फूल नहीं, समाज के मार्ग का एक कण्टक हूँ। मैं मालती नहीं कण्टकी हूँ। अब याद रहे, मुझे मालती नहीं, कण्टकी कहना !'

'ठीक है, ऐसा ही होगा, पर अब तू मुझे यहीं अकेला छोड़कर जा। मेरे से अभी चला भी नहीं जाता है, फिर भी जैसे-तैसे यहाँ से निकल जाऊँगा। यदि पकड़ा भी गया तो मैं अकेला ही पकडा जाऊँगा और इस हत्या का सारा दोष भी मैं अपने पर ले लूँगा। यदि यहाँ से निकल गया तो फिर मिलूँगा। मुझे भी अपना नाम बदलना होगा। ध्यान रहे मेरा नाम अब कण्टक है। यदि हम दोनों यहाँ एक-साथ रहेंगे तो दोनों ही फँस जायेंगे। इसीलिए तू यहाँ से भाग निकल। तेरे से दूर होने पर मैं पानी से बाहर निकाली गई मछली की तरह तड़फूँगा, पर यदि तेरा कुछ भी अनिष्ट न हुआ तो पुनः पानी में आ गई मछली की तरह मुझे संतोष होगा। अब बातचीत बिलकुल बंद !'

उसने यह बात कही ही थी कि उसे दूर से कुछ बोलने की आवाज आई। रात को पुलिस के आने का जैसा मिथ्या आभास हुआ था वैसा ही अब भी होगा, इस विचार से उसने दृष्टि दौड़ाई तो क्या देखता है कि कुछ अस्पष्ट आकृतियाँ शोर मचाते हुए मंदिर की ओर ही आ रही हैं। उसने और ध्यान से देखा तो क्या देखता है कि पारा के चबूतरे पर दो व्यक्ति खड़े हैं। ये पुलिस-वेश में हैं—अब कोई सन्देह नहीं रहा !'

अपेक्षित होने पर भी जब संकट आ ही जाता है तब मन पर भारी आघात लगे बिना नहीं रहता। संकट टलने की किशन को आशा थी।

पर अब निश्चित रूप से उसके आ जाने पर उसे धक्का लगना स्वाभाविक ही था। उसने अपना धैर्य नहीं खोया और एकदम मंदिर के अन्दर जाकर उसने धीमे स्वर में मालती से कहा, 'पुलिस आ गई है! एक बात का ध्यान रखना, मैं उससे जो भी कुछ कहूँ तुझे भी वही दुहराना है। कुछ भी कम-अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। ऐसा लगता है कि इन किसानों ने रात को ही पुलिस को खबर कर दी है!'

'कौन है अन्दर? बाहर निकलो!' एकदम पुलिस का आदेश सुनाई दिया।

किशन एकदम बाहर आया। उसे देखते ही 'पकड़ो, पकड़ो' कहकर दो-तीन सिपाही आगे बढ़े और उन्होंने किशन के हथकड़ी डाल दी।

'हथकड़ी क्यों पहनाते हो? इतनी जोर से हाथ पकड़ने की क्या जरूरत है? मैं तो स्वयं सारी सूचना देने के लिए थाने आ रहा था।'

'ऐसा व्यवहार करोगे तो तुम्हीं अनावश्यक पूछताछ से बच जाओगे। बताओ उस झोपड़ी में जिस व्यक्ति की हत्या हुई है क्या वह तुमने की है? तुम्हारा नाम? हूँ···ये स्त्री भी वही है, इसे भी पकड़ लो!'

'ठहरो, उस व्यक्ति की हत्या मैंने की है, इस स्त्री ने नहीं। मैंने भी हत्या इसलिए की है वह आदमी न होकर नृशंस राक्षस था। मेरा नाम कंटक और ये मेरी बहिन। इसका नाम कण्टकी है। हम जब छोटे ही थे, तभी उज्जैन की एक यात्रा में भीख माँगते हुए मेरी माँ मर गई। उससे पहले के बारे में हमें कुछ नहीं मालूम। माँ के मरने के बाद हम दोनों मेलों-तीर्थों में भीख माँगकर अपना गुजारा करते रहे। पर कुछ दिन पूर्व मेरी बहिन जब भीख माँग रही थी तब इस मुसलमान गुण्डे ने उसका अपहरण कर अपने घर में डाल लिया। बहिन को ढूंढते-ढूंढते जब मुझे इसका पता लगा और मैंने उसे बहिन को छोड़ देने को कहा, तब यह दुष्ट छुरा लेकर मुझे मारने दौडा। आपस में गुत्थम-गुत्था होने पर मैंने उसी के छुरे से उसका काम तमाम कर दिया। अत्यन्त थकावट के कारण मैं इस मंदिर में ही सो गया। अभी उठा हूँ और स्वयं थाने में जाकर सब बात बताने ही वाला था कि आप आ गये।'

पुलिस ने जब मालती से पूछताछ की तब उसने भी बिलकुल वही

बात कही जो किशन ने कही थी। पुलिस के बार-बार पूछने पर भी उसने यही उत्तर दिया कि उस मुसलमान गुण्डे का नाम-पता आदि उसे कुछ भी नहीं मालूम है।

तलाशी लेने पर रक्त से सने कपड़े, कमर में खोंसी हुई चाबी और रक्त-रंजित छुरा मालती के पास से निकला। यह सब लिखने के बाद पुलिस इन दोनों को ही पकड़कर ले चली। किशन ने पुलिस से प्रार्थना की कि 'अपराध मेरा है, इसलिए मेरी बहिन को छोड़ दिया जाय।' पुलिस ने उसकी सुनी-अनसुनी कर उसे डपटते हुए कहा : 'अपराध किसका है इसका फैसला हम या तू नहीं, न्यायालय करेगा।'

किशन और मालती दोनों पर ही मुकदमा चला। अपराधी रंगे हाथ पकड़े गये थे। यही प्रमाण पर्याप्त था। अपराध के बारे में कोई अधिक पेंच भी नहीं था। जिस व्यक्ति की हत्या की गई थी उसका मुख इतना विकृत कर दिया गया था कि उसकी पहिचान भी नहीं हो सकी। इसलिए पुलिस ने मात्र हत्या का आरोप लगाकर अपना काम पूरा कर दिया था। अंतिम दिन न्यायाधीश ने अपने निर्णय में कहा :

'किस अपराधी ने छुरा मारकर हत्या की है, यह स्पष्ट रूप से सिद्ध नहीं हो सका है। पर यह बात प्रमाणित हो गई है कि दोनों ने इस हत्या में जान-बूझकर भाग लिया। इसलिए मैं कण्टक और कण्टकी—दोनों भाई-बहिनों को आजीवन काले पानी की सजा देता हूँ!'

यह निर्णय सुनते ही किशन की आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे। फिर भी फाँसी न मिलने से उसे कुछ सान्त्वना थी। काला पानी इस शब्द में भयंकर अर्थ होने पर भी उसका वास्तविक चित्र उसके सामने नहीं था, पर मालती काला पानी सुनते ही गुम-सुम हो गई। पर जब न्यायाधीश उठने लगा तो उसने शोकावेग में प्रार्थना की—

'कृपालु, एक क्षण ठहरिये। मुझे इतना बताइये कि काला पानी जाने पर मेरा ये भाई कण्टक मेरे साथ ही रहेगा न? आप जेलर को इतनी आज्ञा दीजिये कि हम दोनों को एक ही साथ रखें, बड़ी दया होगी!'

'भोली लड़की, यह बात न्यायाधीश के वश में नहीं है। काले पानी में स्त्रियों और पुरुषों की जेलें एकदम अलग-अलग हैं। वहाँ एक ही

मुकदमे के पुरुष अपराधियों को भी साथ-साथ नहीं रखा जाता है।'

न्यायाधीश का स्वर सहानुभूतिपूर्ण होने पर भी मालती 'ऐसा नहीं कीजिये, ऐसा नहीं कीजिये' कहकर प्रार्थना करने लगी।

न्यायाधीश की शुरू से ही मालती के प्रति सहानुभूति थी। पर न्यायाधीश की गरिमा के अनुसार उसने मुकदमे के दौरान एक शब्द भी ममता का नहीं कहा। पर सारे मुकदमे में धीर और शान्त व्यवहार के कारण और काला पानी की सजा मिलने पर भी विचलित न होने वाली यह लड़की अपने भाई से अलग होने की बात से ही फूट-फूटकर रो रही है, यह देखकर न्यायाधीश का भी हृदय द्रवित हो गया। वह उसे आश्वासन देते हुए बोला :

'रो मत ! यदि काले पानी में तुम्हारा व्यवहार ठीक रहा सो तुझे पाँच-दस वर्षों में विवाह करने की सुविधा मिल सकती है और तुम दोनों वहीं किसी द्वीप में सुखपूर्वक रह सकते हो।'

यह शब्द सुनते ही मालती को लगा कि उसकी काले पानी की सजा रद्द कर दी गई है। उसका मन आनन्द से भर उठा—'महाराज, आपके मुँह में घी शक्कर! मैं उसके साथ विवाह कर सकूँगी न ? मैं कारागार के सभी नियमों का अक्षरशः पालन करूँगी, यह मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ।'

उसकी स्त्रियोचित यौवन-सुलभ कल्पना ने उसमें एक अभूतपूर्व तृप्ति भर दी। उसे ऐसा लगने लगा कि किशन से उसका विवाह हो गया है। पर भोली मालती, कल्पना का अर्थ वास्तविकता नहीं है। इतने कठोर अनुभव के बाद भी यह बात तेरी समझ में नहीं आई है। मनुष्य न केवल अपने पाप-पुण्यों और कर्म-अकर्म का ही फल भोगता है अपितु समाज के पाप-पुण्यों का भी, इच्छा न होने पर भी फल भोगता है। प्लेग की महामारी की तरह उसे दूसरे के भी कर्मों का फल भोगना पड़ता है। तूने अपनी इस स्वल्प आयु में कौन-से पाप किये थे ? कौन-सा अपराध किया था ? तेरे कोमल शरीर को और तेरी कोमल भावनाओं को जला-कर राख कर देने वाले उस अधम नर-राक्षस को मार देने पर तुझे ही हत्यारी करार दिया गया। काले पानी की सजा तुझे ही मिली। समाज में तुम्हारी बदनामी भी हो गई। नीति-नियमों का पालन करने पर भी

उसी का उल्लंघन करने के आरोप में दण्ड भोगना पड़ रहा है !

इसलिए हे मालती ! जेल के नियम पालन करने पर भी तुझे पारितोषिक मिलेगा ही, तेरा सुख-स्वप्न पूरा होगा ही, ऐसी बात मत समझ। परन्तु सुख स्वप्न सत्य नहीं होते, ऐसा भी नहीं है। इन सुख-स्वप्नों में तू मुस्करा, आनन्द-मग्न रह, पर इसे सुख ही समझकर चल। नींद टूटने पर यह स्वप्न सत्य ही होगा ऐसा यदि न समझे तो ठीक है।

९. अन्दमान-प्रस्थान की तैयारी

कलकत्ता बन्दरगाह की गोदी पर एक प्लेटफार्म को पूरी तरह खाली करने के लिये पुलिस दौड़-धूप कर रही थी। एक-एक करके सभी लोगों को वहाँ से हटा दिया गया। ये लोग भी एक जगह जमा होकर देखने लगे कि यहाँ क्या होने वाला है।

इतने में ही एक आवाज गूँज गई : 'आया, चलान आया ! चलान आया !'

चलान का अर्थ है— विभिन्न जेलों से काले पानी की सजा प्राप्त कैदियों को अन्दमान भेजने के लिए लाई गई एक टुकड़ी।

भयकर अपराध करने वाले, विष देने वाले, हत्या और डाका डालने वाले आदि कैदियों को काले पानी की सजा दी जाती है। इनमें भी जेलों में और छँटनी कर अत्यन्त वृद्ध व कम आयु के और सद्व्यवहार करने वालों को छोड़कर जो उग्र अपराधी होते हैं उन्हें ही काला पानी भेजा जाता है। दूसरे शब्दों में समाज के लिये घातक हिंसक, उग्र, उच्छृङ्खल व दुष्ट लोगों को ही काला पानी भेजा जाता है।

यदि कोई ऐसा व्यक्ति जिसे इस 'चलान' के बारे में कुछ नहीं मालूम, इन सौ-सवा सौ व्यक्तियों को देखता जो भयभीत, अनुशासित, शांत और गर्दन झुकाये हुए थे तो वह उन पर बड़ी दया और ममता दिखाता तथा उनके साथ डण्डा लेकर ज़रा-ज़रा-सी बात पर चिल्लाने वाली पुलिस की भर्त्सना व निंदा करता, पर इनका यह अनुशासन सरकस के शेर की तरह

था। यदि इन्हें उन्मुक्त छोड़ दिया जाता तो ये आधा कलकत्ता भस्म कर देते और आधे में हा-हाकार मचा देते।

एकदम गौ की तरह दीखने वाले इन व्यक्तियों में यदि पाँच-दस के बारे में भी कुछ परिचय दिया जाय तब इनकी हीन दशा पर जो दयाभाव है वह घृणा में बदल जायेगा। इन मानव-रूपी हिंस्र पशुओं में जो थोड़ी-बहुत मानवता है उसे ही कायम रखने के लिए ये धारदार संगीनें कितनी उपयोगी हैं यह पता चल जायेगा।

पुलिस के संगीनों के पहरे में चार-चार की पंक्ति में यह टुकड़ी इस प्लेटफार्म पर लाई गई। इनमें प्रत्येक के पैरों में बेड़ियाँ थीं जिन्हें कमर के पट्टे के साथ खनखनाती लोहे की छड़ के साथ बाँधकर रखा गया था। प्रत्येक की छाती पर एक जस्ते का बिल्ला था जिस पर दंड की अवधि और नाम खुदा हुआ था। प्रत्येक की बगल में उसका बिस्तर, एक हाथ में जस्ते की थाली थी। इनमें कुछ झुके हुए कराह रहे थे। इनमें जो पक्के ढीठ थे वे कुछ अकड़े हुए थे, फिर भी बन्दूक के डर से अपनी पंक्ति में दुबक के खड़े थे। इनमें पहली पंक्ति के कुछ लोगों का परिचय इस प्रकार है :

'यह सबसे पहला बेचारा ! इसका नाम इसकी छाती के बिल्ले पर रामदयाल लिखा है। इसे चौदह वर्ष की सजा मिली है। इसने अपने बड़े भाई की मृत्यु के बाद उसके एकमात्र पुत्र को विष देकर मार डाला जिससे सारी सम्पत्ति पर इसी का अधिकार हो जाय !

'यह दूसरा अपराधी सत्रह-अठारह वर्ष की छोटी आयु का गोपाल है। इसके पिता, चाचा एवं अन्य लोगों ने अपने खेत का नीलाम किये जाने के विरोध में साहूकार से बदला लेने के लिए उसके घर पर धावा बोल दिया। गोपाल भी उनके साथ गया। साहूकार को पटककर जब ये लोग उसकी पिटाई कर रहे थे तब गोपाल ने चक्की का एक पाट उठाकर उसके सिर पर दे मारा। साहूकार का भेजा ही बाहर आ गया। साहूकार का अपराध यही था कि उसने इनको ऋण दिया था। इस कुटुम्ब ने ऋण चकाना तो दूर साहूकार का अनाज, जानवर व कोठरी जला डाली। उसने इन पर मुकदमा किया और उसी के परिणामस्वरूप इनका खेत नीलाम

हुआ। इसके बाप को फाँसी हो गई और इसको आजन्म काले पानी की सजा।

'इस तीसरे बेचारे को देखते हो ? कितने अनुशासन से खड़ा है ! कितना नियमप्रिय दिखता है ! पर यह कैसा है। इसके कारनामों से पता चलेगा। यह बलूच है, नाम अल्लाबख्श। सिंध के हिन्दू मुहल्लों में जो डाके पड़ते थे यह उनमें भाग लिया करता था। यह इतना क्रूर बन गया कि इसे हिन्दुओं के लड़के-लड़कियों का मांस खाने का चस्का पड़ गया। इसने एक बार पेशावर जाने वाली एक गाड़ी में एक हिन्दू महिला को अपने बच्चों के साथ डिब्बे में अकेले बैठे हुए देखा। यह भी उसी डिब्बे में घुस गया। पहले इसने छुरा दिखाकर इस महिला से बलात्कार किया और इसी आवेश में इसने उस युवती के गाल का मांस अपने दाँतों से काट लिया और कच-कच चबाकर खा गया। बच्चे और महिला भय और पीड़ा से चीख उठे। इनका रुदन सुनकर इसने क्रोध में बच्चों को छुरे घोंपकर मार डाला। इसने उस महिला के मुख को भी छुरे से गोद दिया। यह अपने इस कार्य में इतना रम गया था कि इसे यह भी पता नहीं चला कि कब गाड़ी रुकी। गाडी के रुकते ही यह कूदकर भागा। इसे पकड़ने के लिए गई पुलिस के एक जवान की उँगलियाँ इसने ककड़ी की तरह चबा डालीं। न्यायालय में इसने पागल होने का नाटक किया। पर डाक्टरी जाँच से यही प्रमाणित हुआ कि इसे हिन्दुओं के छोटे-छोटे बालक-बालिकाओं के मांस को खाने की राक्षसी वृत्ति पैदा हो गई है और इसने इस कार्य को धर्म से जोड़ दिया है। इसे आजन्म कारावास का दण्ड मिला। इसे पागलखाने में भी रखा गया। वहाँ भी उद्दंडता दिखाने पर इसे कोड़े लगे, तभी इसकी अकल सुधरी और पागलपन का स्वाँग छोड़कर रास्ते पर आया। अब इसे काला पानी भेजा जा रहा है। कोड़े और संगीनों से यह अब सरकस के शेर व वन्य पशुओं की तरह हुक्म का पूरा पालन करता है।'

ऊपर इन तीनों के बारे में जो कुछ कहा गया है वह उपन्यास की कल्पना न होकर जीवन की वास्तविकता है। व्यावहारिक जीवन में भी सौ में से पिचहत्तर व्यक्ति इन्हीं काला पानी जाने वाले व्यक्तियों के समान आचरण करते हैं। परन्तु यदि अपराधों पर कुछ नियंत्रण है तो उसका

कारण यह डण्डा और यह संगीन का दबदबा और उनका प्रयोग ही है। डण्डा ही राक्षस मनुष्यों को मनुष्य बनाता है। राक्षसों का उपाय दण्ड और मनुष्यों का उपाय दया है।

जब इस प्लेटफार्म पर बंदी अपनी-अपनी बेड़ियाँ खटखटाते हुए चार-चार की अनुशासित पंक्ति में आ रहे थे, तभी 'ठहरो' इस कड़क आदेश से तत्काल सभी बन्दी एकदम खड़े हो गये। 'बैठो' बोलते ही सब बेड़ियों की खनखनाहट के साथ उकड़ूँ होकर बैठ गये। सामने जिस समुद्र में उन्होंने जाना था वह बड़ी-बड़ी लहरों के रूप में मानो क्रोध से गर्जन कर रहा था। इन कैदियों में कइयों ने पहली बार समुद्र देखा था। इस विशाल जलराशि को देखकर वे भय से काँप उठे। बोलने की मनाही होने पर भी वे आपस में फुसफुसाने लगे, 'बाप रे! यही काला पानी का समुद्र है! हमें किसी द्वीप में ले जा रहे हैं, क्या यह ठीक है? या हमें नौका में बिठाकर समुद्र में डुबा देंगे? यह फुसफुसाहट जब बढ़ गई, तब पुलिस फिर गरजी, 'चुप हो जाओ, नहीं तो इस डण्डे से चटनी बना दिये जाओगे!'

इस आदेश के साथ ही सब चुप हो गये। पर कुछ देर बाद एक नया बन्दी जिसने पहली बार समुद्र देखा था और भय से काँप रहा था, अपने पड़ोसी से पूछ बैठा :

'बाबूजी, कहो न, क्या हमें इसी समुद्र में डूबा देंगे?'

'नहीं-नहीं, बच्चा नहीं!' एक खुर्राट कैदी ने बीच में ही कहा। पुलिस की पीठ दूसरी ओर है यह देखकर बोला, 'यह बात झूठ है! काला पानी से भागकर आये एक खुर्राट कैदी को मैंने स्वयं जेल में देखा है। इस द्वीप को अन्दमान कहते हैं। हम सबको वहीं पर ले जाया जायगा।'

'हैं? क्या कहा?' वह नया कैदी जैसे जीवन मिल गया हो इस प्रकार एकदम बोला—'क्या काले पानी से कोई भाग भी सकता है? बाबूजी, यदि कहें तो हम आपकी बात सच मान लेंगे।'

'दस हजार में कोई एक दो ही। मैंने स्वयं ऐसे एक नराधम को जो काले पानी से भाग आया था, देखा है।' यह बात बाबूजी ने बड़ी सावधानी से कही थी पर उसके यह कहते ही एक पुलिसमैन ने जो बाबूजी पर

नज़र रखे था भागकर आया और उसने बाबूजी (अण्दमान में पढ़े-लिखे कैदियों को बाबूजी कहकर ही सम्बोधित किया जाता है) को पकड़ लिया। उसने झपट्टा मारकर उसके कुर्ते को पकड़कर उसे खड़ा किया और घसीट-कर अपने जमादार के पास ले गया और बोला, 'मेरे बार-बार चुप रह कहने पर भी यह कैदी बोलता ही जा रहा है। यही नहीं, यह दूसरे कैदियों को इसके लिए भी उकसा रहा है कि काला पानी की जेल तोड़कर हम भाग निकलेंगे।'

'क्या ?' क्रोध से जमादार चिल्लाया, 'काला पानी से भाग जाने का षड्यंत्र ? इस पागल का नाम क्या है ?'

पुलिसमैन ने उस बंदी का बिल्ला पढ़कर बताया, 'इस पर कण्टक लिखा है।'

जमादार ने इस बंदी का नाम और उसका नम्बर अपनी डायरी में लिख लिया और डपटते हुए बोला, 'कण्टक, यदि तेरी यह बात मैं ऊपर बता दूं तो वे तेरे गले में फंदा डाल देंगे। काला पानी से भागने वाले को गोली मार देते हैं। यदि पकड़ा गया तो फाँसी होती है। काला पानी में सबसे भयंकर अपराध यही माना जाता है।'

'परन्तु जमादार जी ! मैंने काला पानी से भागने के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा, मुझे...'

'चुप ! बदमाश, तू यही बात बताकर भड़का रहा था। मैं जो कह रहा हूँ क्या वह झूठ है ?' पुलिसमैन ने कहा।

जमादार ने उस नये कैदी और खुर्राट कैदी को खड़ा कर पूछा, 'क्यों रे, यह कण्टक तुम्हें क्या सिखा रहा था ?' नया कैदी थर-थर काँपने लगा परन्तु वह खुर्राट कैदी पहले ही बोल उठा :

'जमादार जी, यह बाबू बता रहा था कि काला पानी से कैसे भागा जाता है यह उसे मालूम है। वहाँ से भागने वाला एक व्यक्ति इसका नेता है। यदि हम उसके दल में शामिल हो जायँ और गुप्त भेद न खोलने की शपथ लें तब एक वर्ष की अवधि में ही सारे लोग जेल तोड़कर काले पानी से भागकर अपने घर वापिस पहुँच जायेंगे। मैंने इससे कहा बाप रे ! हम ऐसे दल में शामिल नहीं होंगे, हम कोई शपथ-वपथ नहीं लेंगे।'

इस खुर्राट कैदी की यह बात सुनकर कण्टक भौंचक्का खड़ा रह गया। फिर एकदम बोला, 'अरे, यह क्या बकवास है! इतना झूठ बोलने वाला भी कोई व्यक्ति हो सकता है? इसने एक भी बात ठीक नहीं कही। जमादार जी, मैं भगवान की शपथ...'

जमादार ने कण्टक की जाँघ पर एक जोरदार डण्डा मारा और गरजते हुए बोला, 'चुप!' और सारा मामला, सत्यासत्य का निर्णय इस एक डण्डे की मार के साथ ही समाप्त हो गया।

इतने में ही कहीं से टन-टन करके घण्टी बजने लगी। 'इन तीनों को अलग कर अलग-अलग पंक्तियों में बिठाओ' ऐसा आदेश देकर वह जमादार जिधर से घण्टी बज रही थी उधर तेजी से चला गया। इस बंदियों को अन्दमान जाने वाली नौका पर बिठाने का उत्तरदायित्व इस जमादार पर था, और यह घण्टी उस नौका के आने की सूचक थी। जमादार के मन से कण्टक का यह प्रकरण भी समाप्त हो गया। अन्दमान पहुँचने पर कोई भागता है या मरता है इसकी सिरदर्दी वह क्यों मोल ले!

थोड़ी देर बाद संगीनधारी पुलिसमैनों का गर्जन सुनाई दिया, 'सब खड़े हो जाओ, महाराजा आ गया है!'

कण्टक चौंककर खड़ा हो गया यह देखने के लिए कि यहाँ कौन महाराजा आ रहा है? परन्तु पुराने कैदियों ने समुद्र की ओर अंगुली दिखाते हुए कहा, 'महाराजा आ गया है, वह देखो।'

कण्टक ने देखा एक बड़ी-सी नौका 'भौं-भौं' करती हुई, ऊँची-ऊँची लहरों में से अपना रास्ता बनाते हुए गोदी की तरफ धीरे-धीरे आ रही है। इसके सामने महाराजा नाम लिखा हुआ था। महाराजा का मतलब यही जलयान, 'यही मुझे काला पानी ले जायगा?' कण्टक का दिल तेजी से धड़कने लगा।

आज तक हजारों अच्छे-बुरे स्त्री-पुरुष अपराधियों को यह महाराजा जलयान इस गोदी से उठाकर काला पानी ले जाकर छोड़ आया है, परन्तु उनमें से एक को भी यह वापिस इसी गोदी पर उतारने नहीं लाया। जो काला पानी गया वह मर गया, उसके लिए यह जग भी मर गया। इस पर चढ़ने वालों को यही लगता है कि वे यमपुरी जा रहे हैं। कण्टक सोचने

लगा, इस समुद्र को 'काला पानी' क्यों कहते हैं ? हिन्दू समाज में समुद्र-पार जाने का अर्थ है जात-पात, धर्म का नाश। यह एक समाजिक मृत्यु ही है। हिन्दू समाज में समुद्र पार जाने की पावन्दी जब से लगी है तब से समुद्र काला पानी ही लगने लगा है। अन्दमान जाने वालों को ही विशेष रूप से काला पानी क्यों कहते हैं ? समुद्र इतना काला नहीं है, फिर यह नाम क्यों पडा ?' पर हृदय में जो घबराहट, अनिश्चितता, मृत्युभय था उससे कण्टक को समुद्र काला ही दीखने लगा। उसने सोचा काला पानी को कोई दूसरा यथार्थ नाम भी तो दिया जा सकता था।

पाठको ! यह कण्टक और कोई नहीं, आपका परिचित किशन है। इसे और मालती को काले पानी की सजा होने के बाद वे दोनों अलग हो गये थे। मालती किस जेल में है यह यत्न करने पर भी उसे मालूम नहीं हो सका। उसे अनेक जेलों में रखने के बाद काला पानी जाने वाले वंदियों को इकट्ठा कर लाने की प्रक्रिया में वह इस चलान में यहाँ आ गया था। उसके मन में अब यही एक जिज्ञासा उठ रही थी कि क्या मालती भी इस चलान में काला पानी भेजने के लिये लाई गई है ? उसने चुपचाप कुछ पूछ-ताछ भी की कि क्या स्त्रियों को भी इस चलान में लाया गया है, और उसे मालूम पड़ा कि दण्डित स्त्रियाँ इस चालान में नहीं हैं।

मालती इस चलान में नहीं है इससे किशन को अच्छा भी लगा और बुरा भी। बुरा इसलिए कि वह उसे अब देख भी नहीं सकेगा। एक और व्यक्ति के भी यदि वह उस चलान में नहीं है तो उसे बड़ा सन्तोष था, वह व्यक्ति था रफीउद्दीन। उसे भी आजन्म कारावास और काला पानी की सजा मिली थी। किशन को भय था कि कहीं वह भी इस चलान में न हो। यद्यपि किशन ने अपना नाम बदल लिया था, पर चेहरा-मोहरा तो वही था। यदि उसने पहिचान लिया तो वह नराधम अपना बदला लेने से नहीं चूकेगा। पर मुझे भी उसका प्रतिकार करना होगा। इस प्रकार अच्छा-बुरा जो भी हो उसका सामना करना ही होगा, यह सोचकर उसने अपने मन को तैयार किया। पर मन ही मन यह कामना कर रहा था कि यह आपत्ति यदि टल जाय तो अच्छा ही है।

इस चलान के बंदियों की बेड़ियाँ खनखना उठीं। अपना बिस्तर,

थाली आदि लेकर ये लोग चार-चार की पंक्तियों में महाराजा की तंग सीढ़ी पर चढ़ने लगे। जहाज लहरों के कारण हिल रहा था। किशन को हिलती सीढ़ी पर चढ़ने की आदत न होने के कारण तथा भयभीत करने वाले विचारों में मग्न होने के कारण उसने सहारे के लिए एक खम्बा पकड़ लिया, तभी एक सिपाही ने 'आग बढ़ो' कहकर उसे अपना डण्डा ठोंस दिया। किशन पुनः पंक्ति में सीधा खड़ा होकर आगे बढ़ा और वे सब जहाज की सबसे नीचे की तली में उतर गये। इस तली में लोहे का एक पिंजरा था। इन कैदियों के लिए यह पिंजरा एक 'विशेष व्यवस्था' थी।

इस पिंजरे में पचास-साठ व्यक्ति ही सो सकते थे, पर उसमें इन सौ-सवा-सौ बंदियों को धकेलकर पिंजरे को बन्द कर दिया गया। जिसे जहाँ जगह मिली वहाँ उसने अपना बिस्तर लगा दिया। कौन पंजाबी ब्राह्मण है और कौन बंगाली चमार, कौन बलूची मुसलमान और कौन मद्रासी अय्यर, भील, कोली, मच्छीमार, भिखारी, सेठ, रोगी, मोटे, पतले सभी सारे भेद भुलाकर एक ही जगह बन्द कर दिए गये थे। ऐसी समता की हिम्मत रूस के बोल्शेविक भी नहीं कर सकेंगे।

किशन भी इस भीड़ में अपना बिस्तर रखकर बैठ गया। पहले से ही उसका जी मचला रहा था। नौका पर चढ़ते हुए ही कई बंदियों को उल्टियाँ आने लगी थीं, उसे भी उल्टी आ रही थी, पर उल्टी करने की जगह कहाँ है? जो जहाँ बैठा था वहीं उल्टियाँ कर रहा था। इस भीड़ में जो बंदी जितना अधिक निर्लज्ज था वह उतनी ही अधिक सुविधा ले रहा था। औरों को हटाकर पैर पसारकर लेट गये थे। सिपाहियों की गाली और डण्डों का भी उन पर कोई असर नहीं हो रहा था। किशन को भी एक खुर्राट कैदी लगातार धकेलकर अपनी जगह बढ़ा रहा था। किशन को तभी उल्टी हो गई, वह अपने बिस्तर पर उल्टी के कुछ छींटे पड़ने पर उसे गालियाँ दे रहा था। दूसरी ओर एक दमे का रोगी निरन्तर खाँस रहा था। बार-बार थूक रहा था। यह थूक किशन के बिस्तर और पैर पर भी पड़ रहा था। किशन अपने बिस्तर को और छोटा कर गठरी बनकर वैसे ही पड़ गया। इस जलयान के छूटने से पूर्व ही उसका भोंपू सुनाई देने लगा। उसकी मोटर घर-घर कर रही थी। किशन को यह

घर-घर मृत्यु से पूर्व की घर-घर लग रही थी। उसका भों-भों उसे यमराज के किसी कुत्ते के भौंकने का-सा लग रही थी। पेट की पीडा, हृदय की धड़कन, सिर में चक्कर से उसकी हालत बुरी हो रही थी। उसने सोचा, यदि मैं काला पानी से बच भी गया तो इस दुर्दशा से क्या मुक्ति मिल सकेगी? इसी बीच उसके मन में एक और विचार उठा। वह एकदम बैठ गया और बोला :

क्या इस दुर्दशा का अन्त नहीं होगा? क्या इससे मुक्ति नहीं होगी? क्यों नहीं होगी? क्या रफीउद्दीन काले पानी से नहीं भाग गया था? क्या मैं ऐसा नहीं कर सकता क्यों?—किशन ने तर्कशास्त्र का अध्ययन किया था। इस किंकर्तव्यविमूढ़ता में जैसे उसे एक झटका लगा हो। उसने सब बिचारों को दूर कर निश्चय कर लिया, 'काले पानी से भाग निकलना है, भाग निकलना है।'

सन-सन-खट-खट करते जहाज के पंखे-पहिये घूमने लगे। सभी पुलिस के छोटे-मोटे अधिकारी नौकर-चाकर चिल्ला उठे, 'जहाज चलने वाला है, छूटने वाला है।'

इसी बीच दो गोरे सार्जेण्ट अपने बूटों से भारी आवाज करते हुए हथकड़ी और बेड़ी पड़े एक कैदी को सख्त पहरे में लाकर उस पिंजरे के दरवाजे पर खड़े हो गये। एक आवाज के साथ दरवाजा खुल गया और विशेष व्यवस्था से लाये उस बंदी सहित सार्जेण्ट पिंजरे में आ गये।

इस खटपट में इतने सार्जेण्ट किस बंदी को लेकर आये हैं यह देखने के लिए किशन ने लेटे-लेटे ही आँखें खोलीं 'ये···अरे! यह तो वही रफीउद्दीन अहमद? वह उससे दस कदम दूर सीधा तनकर खड़ा हुआ था। मुट्ठियाँ कसकर आधा उठकर क्रोध और आश्चर्य से वह बड़बड़ा उठा। 'रफीउद्दीन···यह वही रफीउद्दीन है।'

उससे अपनी पूर्व-शत्रुता किशन के हृदय में जाग गई। उसे स्थान, समय, स्थिति सब कुछ भूल गया। उसे लगा कि रफीउद्दीन कहीं शेर की तरह उस पर झपट्टा न मारे, यह भावना आते ही किशन स्वयं झपटने की तैयारी में अपने बिस्तर की आड़ में बैठ गया।

तभी रफीउद्दीन और उसकी आँखें परस्पर टकरा गईं।

१०. अन्दमान के मार्ग पर

रफीउद्दीन से आँखें भिड़ते ही किशन ने यह सोचकर कि यह अब मुझ पर हमला करेगा, जवाब में अपना मुक्का तान लिया। पर रफीउद्दीन उसकी ओर एक क्षण देखने के बाद अन्य कैदियों को देखने लगा। ऐसा लग रहा था कि वह इस भीड़भाड़ में अपना बिस्तर कहाँ रखे इसके लिए किसी स्थान की खोज में है। इस स्थिति में किशन को भी विचार का और मौका मिल गया—'यदि इसने मुझको नहीं पहचाना है तो मुझे स्वयं आगे बढ़कर अपने को प्रकट नहीं करना चाहिए। मुझे यही विश्वास दिलाना होगा कि कण्टक नामक मैं कोई एक ही कैदी हूँ। जहाँ तक संभव हो इससे जान-पहचान होने के अवसर को यथासंभव टालने का प्रयत्न करना चाहिए।' ऐसा निश्चय करने के बाद किशन पुनः अपने बिस्तर पर लुढ़क गया और अधखुली आँखों से रफीउद्दीन की गतिविधि देखता रहा।

रफीउद्दीन ने अपना बिस्तर एक ऐसे कोने में रखा जहाँ से वह पहरा देने वाले सिपाहियों से आसानी से बातें भी कर सके। गोरे सार्जेण्टों के विशेष पहरे में उसे पिंजरे तक लाकर छोड़ने के कारण पहले ही सब बंदियों पर उसका रौब पड़ गया था। जिन कैदियों को मोटी-मोटी बेड़ी-हथकड़ियाँ पड़ती हैं उन्हें अन्य कैदी अधिक पापी न समझकर अधिक हिम्मत वाला समझते हैं। जो जितना बड़ा अपराध करता है उसका महत्त्व भी उतना ही अधिक बढ़ जाता है। इसलिये उसके कोने में बिस्तर डालते ही अन्य बंदियों ने अपने-आप उसके लिए जगह बना दी। यह कौन है? इस जिज्ञासा के बाद कानाफूसी में न केवल पास-पड़ोस के अपितु सभी कैदियों को पता चल गया कि यह काला पानी जाकर वहाँ से भाग आने वाला नम्बरी कैदी है। सब उसे आदर से देखने लगे और वह भी कैदियों में सम्राट की तरह अकड़कर बैठा था। उसका राज-चिह्न था पैरों में पड़ी मोटी-मोटी बेड़ियाँ।

सर्वत्र घना अन्धकार फैल गया था। जहाज कलकत्ता बन्दरगाह छोड़कर काले पानी के रास्ते पर बड़ी तेजी से बढ़ रहा था। कलकत्ते से अन्दमान का चार-पाँच दिन का रास्ता था। इस अवधि में कैदियों को केवल

चने-मुरमुरे ही दिये जाते हैं। एक तो उल्टी आदि के कारण लोगों को खाने की इच्छा नहीं होती और दूसरे इतने सारे लोगों के लिये खाना बनाने की व्यवस्था न करना और खर्च से बचना अधिकारियों के लिये अधिक सुविधा-जनक था। पिंजरा बन्द करने के साथ ही सबके चने-मुरमुरे बाँट दिये गये थे। कइयों ने उल्टियाँ आने व जी मचलाने के कारण अपने चने ऐसे ही रख दिये थे। रफीउद्दीन अभ्यस्त था, इसलिये उसे भयंकर भूख लगी हुई थी। उसने आसपास के बंदियों का भी चना-मुरमुरा डरा-धमकाकर वसूल कर लिया और उसे फाँकते हुए पिंजरे की सलाखों के पास आधा उकड़ूँ बैठकर इस प्रकार देखने लगा जैसे किसी की प्रतीक्षा कर रहा हो। एक कैदी के कुछ पूछने पर बोला, 'अभी थोड़ा ठहर, फिर बात करेंगे।'

वह जिसकी प्रतीक्षा कर रहा था उसे वह मिल गया। रात के नौ बजते ही पिंजरे का पहरा बदला। इस 'चलान' को कलकत्ते से लाने के लिए काले पानी के कुछ पुलिस के लोग कलकत्ते आये थे। इनमें से दो को इस नये पहरे पर लगाया गया था तथा रफीउद्दीन से इनकी अच्छी जान-पहचान थी। यह इन्हीं के पहरे की प्रतीक्षा कर रहा था। रफीउद्दीन ने इन पहरेदारों से हाथ मिलाया। इस हाथ मिलाने में रफीउद्दीन के हाथ से कुछ वस्तु दूसरे हाथ में गई; यह क्या थी यह स्पष्ट नहीं हुआ, पर थोड़ी देर बाद एक पहरेदार ने उसके बिस्तर पर बीड़ी का बंडल और दियासलाई की एक डब्बी डाल दी। इस घटना के बाद उसका रौब एक सर्वाधिकारी का-सा हो गया और वह जब-तब इसका उपयोग भी करने लगा।

रफीउद्दीन एक क्रूर मनुष्य था। परन्तु जब तक कोई इसकी क्रूरता को उकसाता नहीं था तब तक वह साधारण मनुष्यों की तरह व्यवहार करता था। काला पानी के नाम से घबराने वाले अनेक कैदियों को धीरज बँधाते हुए कहता, 'घबराओ मत, वहाँ दस हजार लोग अच्छी तरह से तीस-चालीस वर्ष तक मजे से जीते हैं। अनेक विवाह, और बाल-बच्चे पैदा कर अपना संसार भी चलाते हैं। खेत, गाय-बैल, घर आदि सब-कुछ वहाँ है। मैं भी तुम्हारी तरह पहले बड़ा घबराता था, परन्तु वहाँ पहुँच-कर मैंने हजार रुपये कमा लिये। उसने दस्त, उल्टी आने वाले कैदियों के

लिए कैदियों के कानून की बात कर, कप्तान से शिकायत करने की धमकी देकर, डाक्टरों से लड़कर दवाई दिलवाई। जिन्होंने उसे खाना दिया उन्हें उसने बचे हुए बीड़ी के टोटे भी चोरी से पीने के लिये दिये। विभिन्न प्रसंगों पर वह ऐसी बातें सुनाता, ऐसे पद और भजन गाता कि कई कैदी अपनी बीमारी और अपनी बुरी दशा की बात तक भूल गये। आजन्म कारावास के बंदियों के सामने, आगे-पीछे, नीचे-ऊपर एक ही प्रश्न मुँह बाये खड़ा था—'काला पानी कैसा होगा? वहाँ क्या-क्या कष्ट भोगने पड़ेंगे? काला पानी पहुँचने पर छुटकारा कैसे होगा?' जैसे आम व्यक्ति के मन में 'यमलोक कैसा है' यह जिज्ञासा होती है, उसी प्रकार इन बंदियों के लिए यह प्रश्न था कि काला पानी कैसा है? ऐसी मनःस्थिति में उनको रफीउद्दीन यमपुरी का भूगोल बताने वाला मूर्तिमान गरुड़ पुराण ही था। किशन के मन में भी काला पानी की जानकारी प्राप्त करने की उत्कट इच्छा थी, पर कहीं वह पहचाना न जाय इस डर से खुले रूप में रफीउद्दीन की ओर देखने के मौके को दो दिन तक टालता रहा।

परन्तु रफीउद्दीन चुप बैठने वाला नहीं था। उसका पहला काम विशेष दीखने वाले कैदियों के मुकदमे, व उनके चरित्र के बारे में जानकारी प्राप्त करना था। आजन्म कारावास के प्रत्येक कैदी की कथा एक उपन्यास की ही कथा होती है। उपन्यासों की दुष्टता, सुष्टता, संकट, हत्या, रक्तपात आदि सब बातें यहाँ मिल जायेंगी। यह पिंजरा खलनायकों का जीवित संग्रहालय है। जैसे कोई यात्री कोई उपन्यास पढ़ता है उसी प्रकार रफीउद्दीन इन बंदियों के जीवनरूपी उपन्यास का अध्ययन कर रहा था। अपने बिस्तर पर लेटे उल्लू किशन जैसी आकृति वाले इस व्यक्ति की ओर उसका ध्यान कई बार गया। उसे यह विश्वास था कि किशन उस भयंकर मुकदमे से मुक्त होने के बाद पुनः ऐसे किसी चक्कर में नहीं फँसेगा जिससे उसे अन्दमान आना पड़े। फिर भी उसकी तीव्र इच्छा थी कि इस व्यक्ति के जीवंत उपन्यास को भी शीघ्र पढ़ा जाय। उसने एक बार पड़ोसियों से पूछ ही लिया कि यह व्यक्ति कौन है? न बोलता है, न हँसता है, न चलता है। बड़ा खूंसट, कोई पहुँचा हुआ चोर मालूम पड़ता है।'

यह सुनकर दो-तीन कैदी एक-साथ बोल पड़े, 'नहीं-नहीं, हमारे साथ यह दस-बारह दिन से हैं। ये बाबू है। अंग्रेजी, संस्कृत पढ़ा है। इसे जेल में भी लिखाई-पढ़ाई का काम दिया गया था। बड़ा अच्छा आदमी है यह बाबू!'

रफीउद्दीन की उत्सुकता बढ़ी, 'इसका नाम क्या है? अपराध क्या है?'

'साहब लोग इसे कण्टक बाबू कहते थे। अपराध हत्या, खून।'

यह सूचना दो-तीन बार मिलने पर रफीउद्दीन को लगा कि उसें उसकी मुराद मिल गई है। रफीउद्दीन के ध्यान में आया कि काला पानी पहुंचते ही इस बाबू को महत्त्व का काम दिया जायगा। रफीउद्दीन की यह बात ठीक थी। क्योंकि आवेश में हत्या करने वालों को जेल में सुधार योग्य बन्दियों की श्रेणी में रखकर उनसे अच्छा व्यवहार किया जाता है। ऐसे बंदियों में यदि कोई पढ़ा-लिखा होता है तो उसे जेल में बंदियों-सम्बन्धी रिपोर्ट लिखने का काम दिया जाता है। अधिकारियों से सम्पर्क होने के कारण खुर्राट बंदियों का भविष्य इनकी रिपोर्ट पर निर्भर करता है। किसको वार्डर बनाना है, वार्डरों को लाभ व सुविधा के कार्य देना, जेल में आने-जाने वालों के काम लिखने, सिपाहियों की हाजिरी लेने, कारखानों का हिसाब रखने आदि के काम इन पढ़े-लिखे बंदियों को सौंपे जाते हैं। इस दृष्टि से न केवल 'बंदियों अपितु सिपाही आदि पर भी इनकी धाक रहती है। रिश्वत, चोरी-छिपे सामान लाना-ले-जाना आदि सब इन बंदी लेखकों के हाथ में होता है। इन्हीं को जेल की परिभाषा में बाबू कहा जाता है।

काले पानी से भागने के अपराध में पुनः काले पानी की सजा मिलने से रफीउद्दीन यह जानता था कि कुछ समय तक उसे वहाँ कड़े पहरे में रखा जायगा। इसलिए इस 'चलान' में यदि किसी बाबू से उसकी पहचान हो जाय तो उसको बड़ा लाभ होगा। यह सोचकर उसने स्वयं कंटक बाबू के पास आकर जान-पहचान कर ली। उसे जब मौका मिलता कण्टक बाबू के पास आ जाता, उसकी सहायता करता, और उससे गप्पें मारता। अंतिम दो दिन उसने कण्टक बाबू के साथ ही गप्पें मारते बिताये। कण्टक भी उससे काफी जानकारी चाहता था। रफीउद्दीन उसे बता सकता था कि

काले पानी से कैसे भाग सकते हैं। इसलिए वह साँप के प्रति गरुड़ की तरह रफीउद्दीन के विषैले दाँतों से बचता हुआ व्यवहार कर रहा था। एक दिन गप्पें मारते हुए वह पूछ बैठा :

'मियाँ जी, आप जैसा निर्भीक, चतुर व्यक्ति, जिसने काले पानी से भागने जैसे दुष्कर कार्य कर कीर्ति प्राप्त की और देश में सुरक्षित पहुँच गया, पुनः पुलिस के जाल में कैसे फँस गया ? यह हुआ कैसे ? काले पानी से मुक्त होकर आप इस संकट में न पड़ते तो कितना अच्छा था ! मुझे बड़ा बुरा लग रहा है इसलिए पूछ लिया है।'

'कण्टक बाबू, क्या कहूं ! मैंने वास्तव में बड़ा सात्विक जीवन बिताने का निश्चय किया था। काला पानी से भाग भारत पहुँचकर मैं फकीर बन गया। हिन्दू साधुओं पर भक्ति के कारण मैंने योग भी सीखा। कण्टक बाबू, तुम सच मानना, खुदा की कसम खाकर कहता हूं कि मैंने पहले जो कोई भी पाप किये वे किये, पर काला पानी से लौटने पर यदि मुझे किसी बात का लोभ था तो वह केवल भक्ति और योग का ही। भोग में मेरी अरुचि हो गई थी। मुझ पर जो संकट आया है वह किसी दुष्कृत्य के कारण नहीं; किन्तु परमात्मा मेरे से एक सत्कृत्य करना चाहता था और उसके कारण ही यह सब हो गया।' यह कहकर वह कुछ गंभीर विचार-मग्न सा चुप हो गया।

उसकी इस बात को सुनने वाले अनेक कैदी एक साथ ही बोल उठे, 'ऐसी बात है ? बोलो न मियाँ जी, क्या बात हो गई ? वह सत्कृत्य क्या है ?'

मेरा पूर्व चरित्र जानने वाला यहाँ कोई नहीं है इस पूर्ण विश्वास के साथ रफीउद्दीन एक धर्मवीर की तरह बोला :

'क्या कहूँ बाबू जी ! अच्छा आपने ग्वालियर नगर देखा है ?'

कण्टक बाबू ने उत्तर दिया, 'नहीं।'

अब ग्वालियर के विषय में जो मुँह में आये उसके कहने में कोई हर्ज नहीं है यह सोचकर रफीउद्दीन ने कहना शुरू किया, 'ग्वालियर के एक बड़े सेठ की एक अत्यन्त सुन्दर कन्या थी। नाम मालती था। वह जितनी गौर वर्ण, निर्मल सौन्दर्य वाली थी उतनी ही भक्ति-भावना वाली और

धार्मिक थी। मैं भगवे कपड़े पहनकर मंदिर में हिन्दू साधु के पास योगाभ्यास करता था। वह उसी मंदिर में प्रतिदिन पूजा के लिये आती थी। मुझे प्रतिदिन देखने से चाहे मेरे रूप पर, या मेरे साधुत्व पर उसकी भक्ति हो गई। वह पूजा के फूल मुझ पर ही चढ़ा देती थी। नैवेद्य मुझे ही दिखाती थी और रात को भजन के समय मेरे पास बैठ जाती थी। एक बार उसे ऐसे ही बहुत रात हो गई। 'मुझे अकेले घर जाने में डर लगता है, मुझे घर पहुँचा दो' ऐसी उसने जिद की। मैं गुरु जी से आज्ञा लेकर उसे घर पहुँचाने के लिये चल पड़ा। मंदिर नगर से कुछ दूर था। मार्ग में एक अमराई पड़ती थी जो उस समय एकदम निर्जन थी। वहाँ पहुँचते ही जैसे डर गई हो वह मुझसे चिपट गई। स्त्री-स्पर्श मेरे लिये निषिद्ध था। मैं क्या करता? उसने मेरे गले का ही चुम्बन ले लिया। डर से थरथर काँपती वह बोली, 'एक व्यक्ति की मुझ पर कुदृष्टि है और वह मुझे प्रतिदिन सताता है। मैं तुम्हारी देवता की तरह पूजा करती हूँ। तुम्हारे पास आना-जाना उसे असह्य है। कल उसने मुझे इसी स्थान पर रोककर मार डालने की धमकी दी थी, इसलिए मैं आज तुम्हें अपने साथ लाई हूं। मुझे उसके पैरों की आहट आ रही है।' मैंने पूछा 'उसका नाम क्या है? वह कौन है?' उसने कहा 'उस नीच का नाम किशन है।'

इस नाम को सुनते ही मेरे रोंगटे खड़े हो गये। मेरी-उसकी अच्छी जान-पहचान थी। काला पानी जाने से पहले मैं जब डाके डालता था तब किशन हमारी टोली का बड़ा बेधड़क डाकू था। काला पानी से भागकर लौटने पर वह मुझे गुप्त रूप से ग्वालियर में मिला था। उसने मुझे फिर से अपने साथ डाके डालने का आग्रह किया था, पर मैंने उसे स्पष्ट कह दिया, 'यह सब तुझे ही मुबारक हो, मैंने तो अपना जीवन प्रभु-सेवा में अर्पित कर दिया है।' इस पर वह बड़ा गुर्राया, मुझे गालियाँ दीं और बदला लेने की धमकी दी। इसलिये मैं किशन को बड़ी अच्छी तरह से जानता था। किशन बड़ा नीच और अधम था। कण्टक बाबू! मैं एक बात कहूँगा तो आप हसेंगे। मैंने इस पिंजरे में आते ही जब आपको देखा तो मुझे आपकी शक्ल किशन जैसी दीखी।'

रफीउद्दीन हँसा, और कैदी भी हँसने लगे। यह सुनकर किशन के

मन में खलबली उठी। वह धूर्त मैं ही किशन हूँ या नहीं इसी बात की पुष्टि के लिए तो यह सब नहीं बोल रहा? 'इसका यह प्रयत्न निष्फल करना होगा' यह सोचकर कण्टक ने भी हँसी में साथ दिया, और बोला, 'ठीक है मियाँ जी! किसन एक पूरा गधा था। मेरी शक्ल उससे मिलाकर आप क्या यह कहना चाहते हैं कि मैं गधा हूँ?'

हँसते हुए पर हाथ जोड़कर रफीउद्दीक क्षमा माँगने लगा—'अरे बाबू जी, यह क्या कहा? किशन की बुद्धि गधे जैसी थी, पर उसकी आकृति अच्छी थी। मैंने आपके मुख से उसके मुख की तुलना की थी। कहाँ सदाचारी कण्टक बाबू और कहाँ वह दुराचारी किशन!'

'अच्छा आगे क्या हुआ?' इस कहानी में रस लेते हुए एक कैदी ने सिलसिला आगे बढ़ाया।

'आगे क्या कहूँ भाई! मैं मालती को धीरज बँधा ही रहा था कि एक झाड़ी के पीछे से पत्थर आने शुरू हो गये। इस अबला की रक्षा को अपना धर्म मानकर मैंने उसे एक हाथ से पकड़ लिया और दूसरे हाथ से जवाब में पत्थर फेंकने लगा और जितना जल्दी हो सका नगर में पहुँच गया। जब उसका घर आया तब वह बड़े गद्गद कण्ठ से बोली, 'मेरे ऊपर वाले कमरे की ताली जो एकदम अलग है मेरे पास ही है इसलिए ऊपर चलो और जब तक मेरे हृदय की धड़कन सामान्य न हो जाय मेरे पास बैठना। फिर चले जाना।' उसकी बात न मानने का अर्थ था अबला के साथ दुर्व्यवहार, जो पाप होता। मैं उसके कमरे में गया। मेरे अन्दर जाते ही उसने अन्दर से ताला लगा लिया। कमरे में चारों तरफ सजावट थी, सुगंध थी, आदमकद शीशे लगे थे, पलंग, पुष्पपात्र, मानो इन्द्र भवन था। और कमरे के बीच में खड़ी थी अकलंक गौरवर्णा मालती, जैसे अप्सरा हो। उसने मेरे गले का एक और जोरदार चुम्बन लिया। कामोन्मत्त पुरुषों द्वारा स्त्रियों के बलात्कार की आपने अनेक घटनायें सुनी होंगी, पर इस कामासक्त स्त्री ने, मालती ने मेरे जैसे साधु पुरुष पर बलात्कार किया, ऐसी बात क्या आपने सुनी है?'

'यह सब जाने दो, परन्तु···' बात काटते हुए एक धूर्त कैदी छद्म हँसी हँसते हुए बोला, 'सच बोलो मीयाँ जी, बलात्कार ही चाहे क्यों न

हो, पर तुम्हें भी तो उमंग उठी होगी ? उसके कोमल गोरे शरीर के स्पर्श और चुम्बन से क्या तुम्हें मालती पर क्रोध आया ? भगवान साक्षी है सच-सच बोलना !'

इस इच्छित प्रश्न पर ज़ोर से हँसते हुए रफीउद्दीन आँख मटकाते हुए बोला, 'मित्रो, भगवान की शपथ ! मालती पर क्रोध ? ऐसी स्थिति में तो शुकदेव जी भी अपने होश खो बैठते। मालती तो मेरी जान है।' सभी कैदी ज़ोर से हँसने लगे। रफीउद्दीन की अंतिम बात से उसके काले चेहरे पर साधुत्व का जो रंग चढ़ा था वह स्वतः उतर गया। उसी को सँभालते हुए वह फिर बोला :

'उसने मुझे 'नहीं-नहीं' कहने का अवसर ही नहीं दिया और कहीं से एक रूमाल मेरी नाक पर रख दिया। उस रूमाल की गंध से ही मुझे मूर्च्छा आने लगी और मैं अर्ध-सुप्त-सा बिस्तर पर पड़ गया। इसके बाद मालती रातभर यथारुचि, यथामति विलास करती रही। सवेरा होने पर रूमाल सूँघने से आई मूर्च्छा को दूर कर वह मुझे पुनः होश में ले आई। होश में आने पर मैंने कहा, 'हे जादूगरनी, अब तो तू मुझे छोड़ दे ! दिन निकलने पर लोग हम दोनों को पकड़ लेंगे।' उसने तत्काल उत्तर दिया, 'प्रिय, यह क्या कहते हो ? कामरूप के एक यांत्रिक ने मुझे एक विद्या सिखाई है जिसके अनुसार मैं दिन में तुझे तोता बनाकर पिंजरे में बंद कर दूँगी और रात को तुझे पुरुष बनाकर तेरे साथ रमण करूँगी।' मैं बड़ा डर गया। कामरूप देश के जादूगरों की ऐसी हरकतों के बारे में मैंने काफी सुन रखा था। मुझे लगा कि मैं तोता बनने लगा हूँ। 'मालती नहीं-नहीं, ऐसा नहीं करो' मैंने प्रार्थना की।' कथा सुनने वालों की दिलचस्पी और बढ़ गई। उन्होंने फिर प्रश्न किया, 'फिर क्या हुआ ? रुको मत, बोलो !'

'फिर हुआ आजन्म कारावास !' कण्टक ने थोड़ा चिढ़ के साथ कहा। मालती के साथ किए गए दुर्व्यवहार के कारण उसका क्रोध पुनः उभरने लगा था।

रफीउद्दीन ने कहना शुरू किया, 'फिर क्या पूछते हो भाई, मुझे तोता बनाकर वह पिंजरे में बंद करने लगी। सौभाग्य से मुझे एक ऐन्द्रजालिक गुरु की याद आ गई। उसने मुझे समुद्र पर चलने की विद्या सिखाई थी।

इसी के बल पर मैं अन्दमान से भाग निकला था। उस गुरु ने मुझे कहा था कि यदि कोई तुम पर जादू करे तो तुम उल्टा जादू करने के लिए मेरा तीन बार नाम ले लेना। बस, मैंने गुरु का नाम लिया और तत्काल तोते से आदमी बन गया। वह जादूगरनी जब तक चौंककर देखती, मैं दरवाज़े की ओर लपका, पर हाय रे दुर्भाग्य, दरवाज़े पर ताला लगा था। झट-पट मैं खिड़की के पास गया और वहीं से छलांग लगाकर सीधा सड़क पर गिरा।...

'परन्तु भाग्य में कुछ और लिखा था। जैसे ही मैं सँभलकर खड़ा होकर चला ही था कि किसी ने चिल्लाकर मेरी कमर जोर से पकड़ ली। यह किशन था। यह मेरा पीछा करते हुए यहाँ आकर छिप गया था और मेरे बाहर निकलने की ताक में था। मुझे भी क्रोध आ गया और मैंने क्रोध में अपना चिमटा उसके पेट में घुसेड़ दिया। वह पापी वहीं ठण्डा हो गया। पर इस झगड़े को देखकर लोग इकठ्ठे हो गये और उन्होंने पुलिस बुलाकर मुझे गिरफ्तार करा दिया। मैंने भी मालती का नाम बदनाम न हो इस विचार से हत्या की जिम्मेवारी अपने पर ले ली और मुझे पुनः काला पानी हो गया। एक अबला की रक्षा करते हुए इस जंजाल में फँस गया। मैंने धर्म के लिए बलिदान किया।'

'उस राजकुमारी का क्या हुआ?' एक कैदी ने दुःखी मुद्रा में पूछा।

'क्या पूछते हो भाई, वह प्यारी मालती मेरे विरह में पागल हो गई। एक हाथ में माला लेकर वह 'हाय रफीउद्दीन! हाय रफीउद्दीन!' कहकर मथुरा की गली-गली में घूमते हुए जिस किसी से पूछती है—बता दे सखि! कौन गली गये शाम?'

रफीउद्दीन इस पद को गाने का उपक्रम कर ही रहा था कि अपनी तथाकथित हत्या से क्षुब्ध विषय बदलने के लिए कष्टक ने पूछा:

'परन्तु मियाँ जी, यदि आपको समुद्र पर चलने की विद्या सिद्ध है तो आप अभी समुद्र में छलांग लगाकर वापस क्यों नहीं जाते?'

'कष्टक बाबू, आप कितने भोले हैं! यदि पुलिस के सामने कूदूंगा तो स्थल पर पैर रखते ही वह मुझे फिर पकड़ लेगी। और दूसरी बात यह है कि यह विद्या स्त्री-स्पर्श होने पर फल नहीं देती। मालती से पूर्व मैंने

कभी स्त्री-स्पर्श नहीं किया था। अब पुनः तीन वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किये बिना शरीर उतना हल्का नहीं होगा जिससे पानी पर चला जा सके। वीर्य के संचय से उसका तेजोमय ओज मस्तक से भी ऊँचा जाना चाहता है, इस कारण शरीर अपने-आप ऊपर उठता है। योग विद्या में इसी को लघिमा सिद्धि कहते हैं। यह प्राप्त हो गई तो जल-स्तम्भन-मंत्र फल देगा। यह हो गया तो काला पानी ऐसा है जैसे बंगले में बिछाई दरी, जिस पर जब चाहो चल लो।'

'परन्तु मियाँ जी, इस आजन्म कारावास के स्थान को काला पानी क्यों कहते हैं?' एक कैदी ने पूछा।

'यह नाम गंवार लोग लेते हैं, असली नाम अण्डेमान है, अण्डेमान!'

'ये अण्डेमान नाम क्यों पड़ा? क्या यहाँ मुर्गियाँ अण्डों की खेती करती हैं?' एक और बंदी ने पूछा।

उसके इस अज्ञान पर तरस खाकर हँसते हुए एक इतिहासवेत्ता की तरह रफीउद्दीन ने कहना शुरू किया, 'अण्डेमान नाम कैसे पड़ा, यह अंग्रेजों को भी नहीं मालूम। हिन्दुओं में कुछ अज्ञानी लोग कहते हैं कि हनुमान जी ने अपने नाम की याद के लिये इस द्वीप का नाम हनुमान रखा जाय ऐसी प्रार्थना लंका से लौटते हुए सीता से की थी, पर यह बात झूठी है। मेरे गुरुजी ने मुझे जो बताया वह सत्य है। सुनो! सृष्टि के प्रारंभ में सर्वत्र पानी-ही-पानी था। उस समय मक्का शरीफ में ईश्वर का प्यारा एक औलिया रहता था। ईश्वर ने उससे कहा, 'एक नौका ले और पूर्व की ओर चल पड़, और वहाँ तक जा जहाँ से सूर्य उगता है। जहाँ तेरी इच्छा हो, जैसी आकार की वस्तु समुद्र में फेंकेगा वैसी आकार की पृथ्वी का निर्माण हो जाएगा। मैं मनुष्यों के लिए समुद्र में से और भूमि का निर्माण करना चाहता हूँ!' ईश्वर की आज्ञा मिलते ही यह औलिया नौका लेकर समुद्र में चल पड़ा। मक्का छोड़ने के कई महीने बाद भी समुद्र में स्थल का निर्माण करने योग्य स्थान उसे नहीं जँचा। पर फिर एक आकाशवाणी हुई, 'जहाँ तेरी नाक है वहीं स्थल का निर्माण कर।' यह सुनते ही औलिया ने अपनी बेल-बूटों से सजी हुई दरी समुद्र पर फैला दी। कैसा अद्भुत आश्चर्य था, इसके साथ ही बेल-फूलों से अलंकृत एक

सपाट, उर्वरा भूमि का निर्माण हो गया, वह भूमि है यह हिन्द, हिन्दुस्तान ! इसके बाद ईश्वर के नाम पर एक बकरे की बलि चढ़ाकर लंका का चक्कर लगाते हुए वह औलिया आगे चल पड़ा। कुछ दिनों बाद आकाश में प्रचण्ड बादल आये, समुद्र में तूफान उठा और उसकी नौका उलट गई। सब सामान डूब गया। औलिया भी डुबकियाँ लेने लगा। वह डूब भी जाता पर उसके एक हाथ में कुरान शरीफ थी, इसलिए तूफान का बाप भी उसे डुबा नहीं सकता था। अपने हाथ को ऊपर उठाते ही वह तैरने लगा, उसने अपनी नौका फिर सीधी की, तब फिर एक और आकाशवाणी हुई, 'इस समुद्र में ऐसे तूफान अक्सर आते हैं, इसलिए इस समुद्र में आने-जाने वालों की सुरक्षा के लिये यहीं एक स्थल का निर्माण कर।' यह सुनकर औलिया ने क्या वस्तु फेंकी जाय, इधर-उधर देखा, उसके पास की सभी वस्तुएँ डूब गई थीं। उसके एक हाथ में कुरान था तथा दूसरे में खाने के लिए मुर्गी का एक अण्डा सँभालकर पकड़ रखा था। औलिया ने इस अण्डे को ही समुद्र में फेंक दिया और बोला, 'भूमि बन !' बस तुरन्त अण्डे से भूमि बन गई। इसलिए इस द्वीप का नाम अण्डेमान पड़ा। अण्डे से बना द्वीप।'

'या खुदा, तेरी करामात।' एक मुसलमान कैदी धर्माभिमान से फुस-फुसाता हुआ हिन्दू कैदियों की ओर मुखातिब होकर बोला, 'देखा हमारे इस्लाम का बड़प्पन ? कैसे-कैसे औलिया हैं ! कुरान शरीफ में ईमान रखने से आदमी कैसी करामातें करता है। क्यों कंटक बाबू, आप इस किस्से को सच मानते हैं या नहीं ?'

इस मुसलमान बंदी ने हिन्दू धर्म की भद्द उड़ाई है, इसका करारा जवाब मिलना चाहिए इस आशा से हिन्दू बंदी कण्टक बाबू के उत्तर की उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे। कण्टक हँसा, 'यदि मीयाँ जी ने औलिया के बारे में जो कुछ कहा है वह ठीक है तो हमारे पुराणों में लिखी अगत्स्य ऋषि की कथा भी ठीक होनी चाहिए। यदि औलियों का ही मुकाबला हो तो तुम्हीं बताना कि अगत्स्य इस मुस्लिम औलियाँ से अधिक करामाती था या नहीं। बात यह है कि जिस समुद्र में यह मुस्लिम औलिया मुख, नाक, आँख में पानी भरने पर डुबकियाँ लगा रहा था वह समुद्र अगत्स्य

ऋषि की लघुशंका से बना था।'

सारे हिन्दू कैदी विजय के स्वर में 'हो-हो' करके अट्टहास कर उठे। कहने लगे, 'अच्छा मजा चखाया।'

इस शोर को सुनकर पिंजरे का पहरेदार गरजा—'बदमाशो, तुम्हें बोलने की सुविधा दी तो तुम ऐसी हरकत पर उतर आये ? यह काला पानी का पिंजरा है, तुम्हारे बाप का बंगला नहीं। अपने-अपने बिस्तर पर चलो।

सभी बंदी अपने-अपने बिस्तर पर चले गये, पर रफीउद्दीन चुप होकर कण्टक बाबू के पास ही बैठा रहा। पहरेदार उसे देखा-अनदेखा कर दूसरी ओर मुँह करके खड़ा हो गया। वातावरण शांत होने पर वह धीमे-से कण्टक बाबू से बोला :

'कण्टक बाबू ! इस पिंजरे में इतनी स्वच्छन्दता से बोलने की यह अन्तिम रात है। कल यह नौका काल पानी पहुँच जायगी। वहाँ हम सब को तालेबंद कोठरियों में अलग-अलग डाल दिया जायगा। मुझे तो और भी कड़े पहरे में बड़ी यातनायें दी जायेंगी। पर तुम शीघ्र ही बाबू बन जाओगे। अफसरों से सम्बन्ध होने से तुम्हें हम जैसे बंदियों के उपकार करने के सैकड़ों अवसर आयेंगे। तुम भी यदि पहले वर्ष मुझे सुविधायें दो तो मैं तुम्हारी इतनी सहायता करूँगा कि तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। अपनी जान-पहिचान, रिश्वत आदि से शीघ्र ही मुझे बाहर खुले में रखेंगे तथा कैदियों का जमादार बना देंगे। एक बात और बताऊँ ! जैसे मैं एक बार कालापानी के पिंजरे से निकल भागा था, वैसे ही तुम्हारी पैरों की बेड़ियाँ कटकर यदि तुम चाहो तो तुम भी वहाँ से···'

'अच्छा, मियाँ जी, मेरा तो संकल्प है ! पर इसका मार्ग क्या है ? साधन क्या है ? तुम बिल्कुल ठीक कह रहे हो इसे कैसे समझूँ ? तुम मुझे ठीक स्थिति समझाओ तो कुछ विश्वास भी करूँ !'

'अच्छा कण्टक बाबू, मैं यह सब मौका मिलते ही बताऊँगा। हम एक ही 'चलान' के हैं। एत चलान के लोग भाई-भाई बन जाते हैं। हमारा एक गोत्र हो जाता है। तुम मेरे पर विश्वास करो। मैं तुम्हारे लिये अपने प्राण भी दे दूँगा। हम चोर-डाकू हैं पर मन दुष्ट होने पर यदि चाहें तो

उतने ही अच्छे बन सकते हैं। यदि उपकार किया तो मेरे जैसे हिंसक पशु के समान व्यक्ति भी उसको भूलेगा नहीं एण्ड्रोक्लीज के शेर की तरह।'

'रफीउद्दीन!' पहरेदार चिल्लाया, 'खड़े हो जाओ, पहरेदार बदलने के लिए जमादार आ रहा है। अपनी जगह जा। मेरा पहरा समाप्त है।'

रफीउद्दीन एकदम खड़ा हो गया—'कैदियों को आपस में बोलने की सख्त मनाही है। जान-पहचान के पहरेदार के कारण ही हम बातचीत कर सके। अब कल सवेरे जहाज काला पानी पहुँच जायगा। अब सलाम। अभी जो कुछ कहा उसे भूलना मत। आज से कण्टक, तुम मेरे भाई हो। तुम चाहे मुझे कुछ भी समझो।'

जल्दी-जल्दी में इतनी बात कर रफीउद्दीन अपनी जगह चला गया। सवेरा होने पर सब ओर से शोर मच गया—आया! काला पानी आया!

इसे सुनकर क्रूर, खुर्राट कैदियों के भी दिल दहल गये—'आया! काला पानी आया!'

इन दण्डित कैदियों की तरह जैसे इस जहाज का भी हृदय दहल गया हो वह भी पहले से अधिक हिलता, झटके खाता घर-घर करता बंदरगाह में प्रविष्ट हुआ और जोर से भोंपू बजाकर अपने लक्ष्य पर पहुँचने की सूचना दी:

आया! काला पानी आया!...

खण्ड २

११. अन्दमान के आदिवासी

विश्व में ऐसे अनेक भू-भाग हैं जिनका भूगोल तो है पर इतिहास नहीं है। आज काला पानी नाम से ज्ञात अन्देमान द्वीप-समूह की गणना भी इसी प्रकार के भू-भाग में की जा सकती है।

नवीं या दसवीं शताब्दी से पूर्व जब हिन्दू राष्ट्र ने समुद्र-यात्रा पर प्रतिबन्ध लगाकर अपने पैरों में स्वयं बेड़ियाँ नहीं डाल ली थीं, जब विधर्मियों के साथ ही नहीं हिन्दुओं के ही विभिन्न वर्गों के साथ खान-पान करने से जात-पांत चली जाती है ऐसी भावना पैदा नहीं हुई थी, जब हिन्दुस्तान से बाहर जाकर विदेशियों, विधर्मियों के साथ अन्न-जल लेने से धर्म डूब जायगा ऐसी वाहियात धार्मिक मूर्खता हिन्दू समाज में व्याप्त नहीं थी, और जब समुद्र-यात्रा पर प्रतिबंध के कारण न केवल तीन दिशाओं में स्थित समुद्री सीमा, अपितु चौथी दिशा में स्थित भूमि-सीमा लाँघने पर भी धार्मिक चौकियाँ स्थापित कर प्रतिबंध नहीं लगा था, और जब हिन्दू राष्ट्र के त्रिविक्रमशील चरण सभी प्रकार के प्रतिबंधों से मुक्त थे, तब दक्षिण-पश्चिमी समुद्रों और महासागरों को लाँघकर हमारे हिन्दू राष्ट्र का महा-साम्राज्य तत्कालीन विश्व के सभी ज्ञात भू- प्रदेशों पर अपनी विजय-दुन्दुभी बजाता था। तब हमारी समुद्री रणनौकाओं के पथिक समुद्र की छाती को चीरते हुए दिग्दिगन्त में बिना किसी बाधा के दौड़ते थे। विदेशियों द्वारा लिखित और पढ़ाये जाने वाले भ्रष्ट भूगोल में आज जिसे 'अरब सागर' यह अपमानजनक नाम दिया गया है, तब वह हमारा 'पश्चिम समुद्र' था और आज जिसे कूपमण्डूकों ने 'काला पानी' कहकर भयानक नाम दिया है

वह अन्दमान द्वीप-समूह वाला समुद्र पूर्व-समुद्र था और इस पूर्व-समुद्र में चन्द्रगुप्त मौर्य के ईसा से भी तीन सौ-चार सौ वर्ष पूर्व वाणिज्य-पोत (नौकायें) और युद्ध-नौकायें दूर-दूर तक विदेशों में बिना किसी रुकावट के आते-जाये थे। तब यह समुद्र हम भारतीयों के लिए एक स्थल-सड़क के समान ही था।

इस पूर्व-समुद्र को ही लाँघकर मगध, आन्ध्र, पाण्ड्य, चेर, चोल आदि हिन्दू राज्यों ने अपनी बड़ी-बड़ी दिग्विजयिनी नौ-सेनाओं द्वारा स्याम, जावा और बोर्नियो से लेकर फिलिपाइन पर्यन्त हिन्दू राज्यों की, हिन्दू-धर्म और संस्कृति की प्रस्थापना की थी। हिन्दु चीन (इण्डोचायना) और फिलिपीन में हिन्दूराज्य स्थापित थे इसको विदेशी इतिहास का शोध करने वाले विद्वानों ने ताम्रपट्ट एवं शिलालेख आदि प्रमाणों से निर्विवाद रूप से प्रकट किया है। हिन्दू बौद्ध ही नहीं अपितु वहाँ हिन्दुओं के ही क्षत्रियवंशी राज्य थे। वहाँ पर भारतीय प्रान्त एवं नगरों के नाम, शिव, विष्णु, बुद्ध आदि देवी-देवताओं के मंदिर, वेद, मनुस्मृति, आदि हमारे संस्कृत-ग्रंथों से भरे पुस्तकालय, भारतीयों के साथ व्यापार, कला-संस्कृति, आदि बातें स्याम, जावा, ब्रह्मदेश, हिन्दु चीन, बाली और फिलिपीन में अनेक शताब्दियों तक आप्त-व्याप्त थीं, यह एक निर्विवाद इतिहास है।

परन्तु इस इतिहास में अन्दमान द्वीपसमूह जैसे छोटे-छोटे द्वीपों का नाम नहीं मिलता है, इस बात से हमें आश्चर्य नहीं होना चाहिये।

फिर भी अण्डमान से भारत का सम्बन्ध था उसका पहला प्रमाण इसका नाम है। जैसे आकृति के कारण जावा (यवद्वीप) नाम रखा गया उसी प्रकार अण्डे की आकृति के कारण उसका नाम अण्डमान रखा गया। इससे भी अधिक पुष्ट प्रमाण है कि भारतीय उस द्वीप पर गये थे, और इस द्वीप पर उनका ध्वज फहराता था, वहाँ पाण्ड्य राजाओं की प्रशस्ति का एक शिलालेख है। इस प्रशस्ति-पत्र से यह सिद्ध होता है कि ईसा की दसवीं शताब्दी के आसपास पाण्ड्य राजा का एक प्रबल सेनापति इस समुद्र पर दिग्विजय करने के लिये अपनी बड़ी-बड़ी सैनिक नौकायें लेकर निकला था। उसने आज पेगू नाम से विख्यात देश को जीता था।

वापिस आते हुए इस हिन्दू सेना ने अण्डमान आदि द्वीपसमूह पर अपना वर्चस्व स्थापित कर उसे पाण्ड्य साम्राज्य में सम्मिलित किया। इस स्पष्ट उल्लेख से अन्दमान के इतिहास की प्रथम पंक्ति प्रारम्भ होती है।

परन्तु इस इतिहास की पहली पंक्ति भी अधूरी रह जाती है। इसका कारण यह है कि इस हिन्दू के सैनिक या कोई अधिकारी वहाँ रहे या नहीं रहे, इस बारे में इतिहास पूर्णतः मौन है, इसका कुछ पता नहीं लगता। जब मैं अन्दमान में था तब एक विश्वसनीय अंग्रेज अधिकारी ने मुझे कहा था कि अन्दमान में खुदाई के समय एक राजमहल के अवशेष मिले थे; पर इस बारे में आगे क्या उपलब्धि हुई इस बारे में मुझे कुछ मालूम नहीं पड़ा। इस बारे में कोई उल्लेखनीय खोज हो या न हो, इतना निश्चित है कि गत तीन हजार वर्षों से वहाँ कोई बाहर से आये लोगों की कोई बस्ती टिकी नहीं।

पांड्य राजाओं की उपरोक्त प्रशस्ति के बाद वर्तमान काल में अन्दमान का संक्षिप्त उल्लेख मार्कोपोलो, निकोलो आदि यूरोपीय और अरबी पर्यटकों के विवरणों में मिलता है। इसके विवरण में भी वहाँ की बस्ती का उल्लेख न कर केवल समुद्र में उसकी सत्ता का उल्लेख-मात्र है।

अन्दमान के साथ बाहर के लोगों के सम्बन्ध के बारे में जैसे इतिहास उपलब्ध नहीं है उसी प्रकार अन्दमान के अपने लोगों में ही आपस का इतिहास भी मालूम नहीं है। इनमें कोई दन्तकथा भी प्रचलित नहीं है। इन लोगों में शिक्षा न होने से इनकी स्मृति-शक्ति भी बड़ी निर्बल है। जहाँ स्मृति होगी वहीं तो दन्तकथायें भी होंगी।

पाण्ड्य राजा की इस प्रशस्ति के अतिरिक्त अन्य किसी भी देश के इतिहास में अन्दमान का कोई उल्लेख नहीं है। कुछ यूरोपीय, अरबी यात्रियों ने इसका भूगोल ही बताया है। इस प्रकार अन्दमान ऐसा भू-भाग है जिसका इतिहास एक पंक्ति में ही है और वह है पाण्ड्य राजा का प्रशस्ति-लेख।

इतिहास न होने पर भी अन्दमान में मानव-समाज का अस्तित्व है। वहाँ का मानव भी पूर्णतः आदिम है, उसकी भाषा भी अनादि है। इनकी

जाति का आरंभ भी अज्ञात है।

कहते हैं कि मनुष्य पूँछ घिस जाने से बंदर से आदमी बना। यहाँ के लोगों को देखकर इस बात में कुछ सत्य की प्रतीति होती है। मुझे अन्दमान में एक डाक्टर ने ऐसे आदिवासी रोगी को दिखाया जो एकदम बन्दर की तरह था। उसकी अस्थि-संरचना बन्दर की तरह थी ; पुच्छास्थि इतनी बढ़ी हुई थी कि वह मनुष्य की तरह कुर्सी पर नहीं बैठ सकता था। उसकी ठोड़ी, मुख की फाँक, गाल आदि भी बन्दर से अधिक मिलते थे। अन्तर केवल यही था कि इसकी वाक्शक्ति में पचास-साठ शब्द होने पर भी इसकी वाणी मनुष्य की थी।

यह मनुष्य तो एक अपवाद था। परन्तु अन्दमान में इसकी जाति के लोग जिन्हें 'जावरा' कहते हैं, वे पूँछ घिसने से बने आदमी नहीं हैं। इनका सामान्य कद चार-साढ़े चार फुट, रंग एकदम काला, बाल सूक्ष्म, छोटे और घुँघरीले होते हैं। वहाँ के पुरुषों की भी दाढ़ी-मूँछ नहीं उगतीं। ये सभी स्त्री हों या पुरुष एकदम नग्न रहते हैं। भारतीय साधु लंगोट तो बाँधते हैं, यहाँ वह भी नहीं है। मशीनी कपड़ा तो दूर, इन्हें चरखे तक का मालूम नहीं है। नग्नता के कारण इनमें शान-शौकत का प्रश्न नहीं उठता। यदि कोई स्त्री विलासलोलुप हो तो वह कमर में कोई पत्ता बाँध लेती है। इसी प्रकार यदि किसी पुरुष को शान-शौकत करनी हो तो वह अपने शरीर पर लाल रंग की मिट्टी के पट्टे बना लेता है। इससे ही वह सन्तुष्ट हो जाता है। जो लोग मशीनीकरण को अधोगति का कारण मानते हैं उनकी दृष्टि से 'जावरा' अत्यधिक प्रगतिशील हैं, इन्हें मोटर, रेलगाड़ीतो दूर, बैलगाड़ी तक का मालूम नहीं। दियासलाई, जूते, दूध, मक्खन, फल, खेती-बाड़ी, घर आदि का कुछ मालूम नहीं। अत्यधिक सादगीपूर्ण जीवन बिताने पर भी, इनमें भी मद-मात्सर्य, सुख-दुःख, राग-द्वेष, प्रेम-कलह आदि की सभी भावनायें हैं। प्रकृति के अत्यधिक निकट जीवन-यापन करने पर भी इनमें भी असंतोष, असमाधान, जीवन-कलह आदि की भावना हमारे यंत्र के जीवन से किसी भी अंश में कम नहीं है।

अन्दमान की अनेक जातियों में जावरा जाति संभवतः सबसे प्राचीन

और सर्वाधिक जंगली है। अन्य जातियाँ जो दस-बारह के लगभग हैं, कारी, कोरा, टबो, बी, बलवा, जुबई, कोल आदि हैं। इनमें कोल नाम ध्यान देने योग्य है, क्योंकि इनकी तुलना भारत में कोल जाति से तथा उसके चरित्र से की जा सकती है। इस जाति के संघ अत्यधिक घने जंगलों में ऊँचे पहाड़ों या समुद्र-तट पर बसे हैं। इनका रूप-रंग, व्यवहार, परम्परायें, आदि भी उक्त परिस्थिति व वंशभेद से थोड़ा भिन्न हैं। इसलिये इनके संक्षिप्त विवरण में यदि कुछ विसंगति है तो उसका निर्णय पाठक करें।

जावरा आदि जातियाँ अत्यन्त क्रूर हैं। पहले अनेक तूफानों में कितनी ही विदेशी नौकायें यहाँ टूट जाती थीं या फँस जाती थीं तो इन जातियों के लोग असहाय लोगों पर हमला कर बड़ी क्रूरता से उन्हें मार डालते थे। आज भी उनका परिचित और जाति से भिन्न कोई भी विदेशी या अन्दमान की जाति का व्यक्ति दीखता है तो वे उसको घनी झाड़ियों के पीछे छिपकर अपने वाणयों का निशाना बनाते हैं या कोई इक्का-दुक्का मिल जाय तो उसको पकड़कर मार डालते हैं। यदि कभी किसी को जीवनदान मिल भी गया तो इसे उसका अद्भुत भाग्य ही समझना चाहिये। जावरों द्वारा मारे गये लोगों की छतों पर पत्थरों के ढेर लगे रहते हैं। अनेक जातियों में यह आम धारणा है कि उनके द्वारा जंगल में मारे गये परकीय व्यक्तियों की सूचना परिवारों तक पहुँचा दी जाती है। इसका कारण यह है कि वे पशु-पक्षियों और मनुष्यों में विशेष भेद नहीं करते।

इनमें स्त्री-पुरुष सम्बन्धी रीति-नीति भी बड़ी विचित्र है। स्त्री का स्थान पुरुषों की अपेक्षा हीन है। वृद्धा महिलाओं को आदर दिया जाता है। विवाह से पूर्व स्त्रियाँ पुरुषों से काफी हेल-मेल करती हैं। अविवाहित स्त्रियों के लिए यौन-सम्बन्धों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। अनेक जातियों में स्त्रियाँ अपने पति का चुनाव स्वयं करती हैं। कई जातियों में माँ-बाप के निश्चित करने पर ही विवाह निश्चित समझा जाता है। इनमें बहु-पत्नी वाद और बहुपतित्व भी अधिक नहीं है। कई जातियों में पुरुष अपने से कम आयु की विवाहिता स्त्रियों से बातचीत नहीं करते हैं। अपनी पत्नी की बहिन से दूर रहने का कठोर प्रतिबंध है। लड़के-लड़कियों के नाम अलग

अलग हों ऐसी व्यवस्था अनेक जातियों में नहीं है। माँ ही बच्चों का नाम-करण करती है। स्त्री के गर्भवती होने के लक्षण होते ही गर्भस्थ शिशु का नाम रख दिया जाता है। कई जातियों में कन्या के वय प्राप्त होने पर नियत सोलह फूलों में उस समय जो फूल खिलता है कन्या का नाम उसी फूल पर रख दिया जाता है। सामान्यतः पुरुष का विवाह पच्चीस वर्ष और स्त्रियों का अठारह वर्ष बाद ही होता है।

लड़का होने पर ये भी बहुत प्रसन्न होते हैं। पर कुछ जातियों में लड़का सात-आठ वर्ष का होते ही माँ-बाप के पास नहीं रहता। वह अपना अलग ही जीवन-क्रम चलाता है। यह जीवन-क्रम सबका एक-जैसा ही है। भोजन के लिए दिनभर शिकार करना और रात को नींद आने तक नृत्य करते रहना। नृत्य-समारोह में स्त्री-पुरुष निर्वसन ही नाचते हैं।

इनमें पुरुषों का शारीरिक गठन स्त्रियों की अपेक्षा अधिक सुघड़ है। स्त्रियाँ एकदम निर्बुद्धि होती हैं। इनका नितम्ब बहुत बेडौल और शरीर की तुलना में बहुत भारी होता है। स्त्रियाँ अपने बाल काटकर सिर को बड़ा चिकना रखती हैं। सम्भतः स्त्रियों के लिए यह बात सौन्दर्य-जनक समझी जाती है। इन लोगों की बुद्धि बचपन में कुछ ठीक होती है, पर आयु के बढ़ने के साथ उसका विकास रुक जाता है। मनुष्य विचारवान प्राणी है, आगे की सोचकर चलता है यह बात यहाँ के लोगों के लिए अपवाद है।

इनकी भाषा भी बड़ी सीमित है। यह केवल तात्कालिक शारीरिक आवश्यकता, भाव-भावना को व्यक्त करने वाली है। इस बारे में भी शब्द कम हैं। ये एक शब्द बोलकर अपनी अगली बात हाव-भाव, इशारों द्वारा ही व्यक्त करते हैं। यदि कोई अतिथि मिलता है तो शिष्टाचार के रूप में दोनों एक-दूसरे को टकटकी लगाकर कुछ देर देखते रहते हैं। यहाँ हर बीस मील बाद भाषा के शब्द, भाव बदल जाते हैं। किसी के मरने पर बड़े लोग बड़े ज़ोर-शोर से रोते हैं। छोटे बच्चों के मरने पर माँ-बाप ही रो लेते हैं। बड़े लोगों के मरने पर उसे बाँधकर एक के नीचे रख देते हैं। उस स्थान पर तीन महीने तक कोई नहीं जाता। इस अवधि में सम्बन्धी अपने माथे पर भूरी मिट्टी लगाते हैं और नाच-गाना बंद रखते हैं। कई

महीनों बाद ये मृत व्यक्ति की हड्डियाँ धोकर उनके टुकड़े कर उसके आभूषण बनाते हैं। ऐसी हड्डी को बीमार को छुलाने से रोग दूर होता है ऐसा उनका विश्वास है। इन हड्डियों में सिर की खोपड़ी या कपाल का विशेष महत्त्व है। इस कपाल का प्रयोग करने का अधिकार विधवा, विधुर या निकटस्थ सम्बन्धी को ही होता है। भूत-प्रेतों में इनका भी विश्वास है। वे समझते हैं कि अन्दमान मे जो भी प्राणी हैं वे सब उनके ही पूर्वज विभिन्न रूपों में घूम रहे हैं।

इनमें धार्मिक कर्मकाण्ड नहीं के बराबर है। केवल विवाह, मृत्यु आदि अवसरों पर कुछ परम्परायें चलती हैं। धार्मिक दृष्टि से किसी देवी-देवता की पूजा-अर्चना, मंत्र-तंत्र आदि नहीं हैं और न कोई पुरोहित-पण्डित ही। इस बात से इनका अपहास करना ठीक नहीं, क्योंकि ब्रह्मज्ञान और धर्म के बारे में अन्य धर्मग्रंथों में जो बातें हैं वैसी ही कुछ इनमें भी मान्यताएं हैं। पुलगा उनका एक देवता है जिसने इस जग का निर्माण किया है। मरने के बाद भूत जिस जगत में जाकर रहते हैं वह एक विशाल नारियल के वृक्ष पर टिका है। उनका पुलगा देवता भी हमारे महादेव की तरह एक ऊँचे पर्वत 'सैडलपीक' पर रहता है। यह पुलगा मुसलमानी खुदा की तरह अकेला न रहकर हिन्दुओं के महादेव की तरह पत्नी के साथ रहता है। ईसाइयों के भगवान के पुत्र ईसा की तरह इस पुलगे का भी एकपुत्र है। इस की अनेक कन्यायें भी हैं।

इस पुलगे के अतिरिक्त इनके द्वारा मान्य अदृश्य शक्तियों में समुद्री भूत 'जुरूवीन' और वनों का भूत 'एरम चोग' सताने वाले हैं। ये पुलगे की भी उसी प्रकार परवाह नहीं करते हैं जैसे शैतान अल्लाह की नहीं करता। इनके भूतों की एक बात अच्छी है कि 'एरम चोग' आग से डरता है। इसी बात को ध्यान में रखकर अंदमानी जंगली जाति के लोग अपने घरों में निरन्तर आग जलाये रखते हैं। प्राचीन काल में दियासलाई या आग जलाने के अन्य साधन न होने से जैसे अग्नि को निरन्तर जलाये रखना अनिवार्य था और संभवतः हमारी अग्निहोत्र की परम्परा का यह भी एक कारण हो, उसी प्रकार यहाँ घने जंगलों में साँप एवं अन्य प्राणियों एवं जंगल के

भूत 'एरम चोग' को दूर रखने के लिए सदा आग को जलाये रखना जरूरी हो गया है पर इतना होने पर भी इनकी यह अग्नि हमारी तरह अग्नि देवता नहीं बन सकी है। हमारी तरह इनकी स्वर्ग-नरक की भी कोई कल्पना नहीं है। इनका पुलगा भी संकट-निवारक देवता नहीं बन सका है।

अन्दमान के ये वनवासी एक-दो जिले-जितने वर्ग-क्षेत्र के टापू में रहते हैं, पर इनकी जनसंख्या तीन-चार हजार ही है। ये एकदम बिखरे हुए घने जंगलों में रहते हैं। ये वन इतने घने और दुर्गम हैं कि पिछले तीस वर्षों में एक बार भी इनका सर्वेक्षण नहीं हो सका है। बड़े-बड़े वृक्ष, वे भी लताओं से गुम्फित, वर्ष में नौ महीने निरन्तर वर्षा, सर्वत्र पानी ही पानी और दल-दल। इस दलदल में मच्छर, विषैली मक्खियाँ व जीव-जन्तु, विषधर सर्प, वृक्ष, झाड़ियों, लताओं, गुल्मों से आवृत संघन, अन्धकारपूर्ण वन मीलों तक फैले हैं। सूर्य की किरणें यहाँ के वनों के पृथिवी-तल को स्पर्श नहीं करतीं। अत्यधिक हरित-वर्ण की वनश्री के बावजूद ये वनमनुष्यों की बस्तियों के लिए प्रतिकूल हैं। साहसी अंग्रेज यात्रियों ने यहाँ कई बस्तियाँ बसाने का प्रयत्न किया और कई बस्तियाँ जन्तुओं, सर्पों, बीमारियों की शिकार होकर समाप्त हो गईं।

यहाँ आने वाले विदेशी लोगों को या भटके और क्षतिग्रस्त जहाज़ों के तट पर आने वाले यात्रियों को यहाँ के जावरा जाति के लोग अपने विषैले तीरों से मार डालते थे। इस कारण भी इस द्वीप की 'स्वतंत्रता' अनादि काल से लेकर सत्रहवीं शताब्दी तक कायम रही। यहाँ के देशभक्त साँप, बिच्छू, डाँस, मच्छर, जोंक, दलदल एवं असंख्य विषैले कृमिकीटों की सेना का भी इसके 'स्वतंत्र' बने रहने में कारण है। परन्तु अंग्रेजों ने प्रयत्न करके यहाँ पर जो एक बस्ती बसा ली है उसी का नाम 'काला पानी' है।

आजन्म कारावास के बंदियों को जब 'महाराजा' जहाज़ इस तट पर लाता है तब सबके हृदय धड़क जाते हैं—

'आया! काला पानी आया!'

१२. अन्दमान की जेल में

काला पानी पहुँचते ही बेड़ियों में जकड़े कैदियों को जहाज से उतारकर समुद्र-तट पर ही बने विशाल, दृढ़ जेल में कड़े पुलिस के पहरे में पहुँचा दिया गया।

इस जेल का नाम कक्ष-कारागार (सेल्युलर जेल) है। इस नाम को कैदियों ने सिल्वर जेल (चाँदी की जेल) नाम दे दिया है। अर्ध-शिक्षित आजन्म कारावास के कैदियों को जब पुलिस वाले 'इन्हें सिल्वर जेल में ले जाओ' कहते हैं तो इसे सुनकर आश्चर्य होता है।

कैदियों और पुलिस सभी को 'सिल्वर जेल' बोलते सुनकर कण्टक को भी आश्चर्य हुआ। केवल यह नाम ही आकर्षक या मोहक नहीं था जेल का भवन भी भव्य, विशाल, एक समान खिड़कियाँ, साफ-सुथरा, एक के बाद तीन समान मंजिलों, बीच में ऊँची बुर्जी। कण्टक को लगा कि पुलिस उसके साथ मज़ाक तो नहीं कर रही? जेलखाना कहकर वह उसे किसी अस्पताल में तो नहीं ले आई? यह सिल्वर जेल है या कोई सैनिटोरियम?

जेल में पहुँचने पर भी यहाँ का वातावरण भारत की जेलों की तरह उदासीन, भयानक, काली कोठरियों जैसा नहीं है। प्रकाश, वायु उन्मुक्त रूप से आता है। एक पंक्ति में एक-जैसे कमरों वाली तीन मंजिलें, अन्दर बड़े आँगन, बीच में वर्तुलाकार केले और नारियल की घनी वृक्षावली। अन्दमान के घने जंगलों में जैसे तीस-तीस फुट लम्बे अजगर कुण्डली मारे पड़े रहते हैं उसी प्रकार यह जेल एक अजगर की तरह मोहक लगती है।

इसमें प्रत्येक कैदी को एक-एक स्वतन्त्र कोठरी में रखा जाता है। ऐसी सात या-साढ़े सात सौ कोठरियाँ हैं। इसीलिये इसे कक्षागार—सेल्युलर जेल नाम दिया गया है।

बाहर से देखने वाले को प्रत्येक कोठरी में भरभूर प्रकाश दीखता है, परन्तु एक बार इस कोठरी में पैर रखते ही जब बाहर से दरवाज़ा बन्द हो जाता है, तब अन्दर वाले व्यक्ति का हृदय अन्धकार से भर जाता

है। प्राण छटपटाते हैं।

इस चलान के सभी कैदियों को अलग-अलग एक-एक कोठरी में बन्द कर दिया गया। तीन-चार दिन तक इसी प्रकार अकेले बन्द रखने के बाद उनके अपराध, दण्ड, आदि के कागज़ों के आधार पर उनका दो प्रकार का वर्गीकरण किया गया। जिन्होंने आवेश में अपराध किया और उनका यह पहला ही अपराध था उन्हें 'सुधारणीय वर्ग' में रखा गया। जो पक्के कई बार अपराध कर चुके थे उन्हें 'असुधारणीय वर्ग' में रखा गया। कण्टक को पहले वर्ग में रखा गया। वह हिन्दी, अंग्रेजी दोनों भाषायें जानता था, इसलिये उसे एक-दो महीनों में ही कार्यालय में बन्दी लेखक के रूप में काम मिल जायगा यह स्पष्ट हो गया। परन्तु रफीउद्दीन को उग्र दण्ड मिला था तथा वह अभ्यस्त बन्दी-वर्ग में था, इसलिये उसे पाँच वर्ष तक कारागार में ही बन्द रखने, कड़े पहरे में रखने और सख्त काम लेने का निर्णय किया गया।

अब अन्दमान में भयंकर, ढीठ और पक्के कैदी कम भेजे जाते हैं। इसलिये अब वहाँ आने वाले कैदियों को काफी सुविधायें मिलने लगी हैं। परन्तु तीस-पैंतीस वर्ष पहले यहाँ केवल भयंकर और पक्के घुटे हुए कैदी ही भेजे जाते थे! उन पर रौब रखने के लिए उन्हें कठोर नियंत्रण में रखा जाता था और कड़ा काम लिया जाता था। इसके बिना इन भयंकर राक्षसी वृत्ति के कैदियों को ऊपर उठाना या उनके स्वच्छन्द अस्तित्व से समाज को होने वाले कष्टों से मुक्त रखना संभव नहीं था।

रफीउद्दीन जैसे विकृत हृदय वाले अपराधी ऐसी कड़ी व्यवस्था और नियंत्रण को भी धत्ता बताकर काला पानी से भाग जाते हैं और अपने ठिकानों पर पहुँचकर समाज में पुनः उत्पात, अत्याचार करने लगते हैं। रफीउद्दीन के भाग जाने पर इस नियंत्रण को और कठोर कर दिया गया था। ऐसे बंदियों को पूरी टक्कर देने के लिए उनसे कठोर और निर्मम व्यवहार करने वाला चतुर अधिकारी उनपर निगरानी के लिए नियुक्त किया गया था। रफीउद्दीन का अब एक ऐसे ही कठोर हृदय अधिकारी से पाला पड़ना था।

रफीउद्दीन शुरू में ही समझ गया कि उसके पूर्व-परिचित व्यवस्था-अधिकारियों का तबादला हो गया है। इसलिए उसने इस नये अधिकारी की आँखों में धूल झोंकने के लिए चुगली, खुशामद, पैरों में सिर रख देना, बक-बक करना, गालियाँ देना, उद्धत व्यवहार, हँसी-मजाक, आदि साम-दाम के सभी उपाय बरतने लगा।

नया जेलर अपराध-वृत्ति के आधार पर बंदियों के स्वभाव-चरित्र का अध्ययन कर रहा था, उनसे मिलता था तथा इस बात का अनुमान लगाता था कि किस बंदी के पेंच कितने कसने चाहिये। इस प्रसंग में वह एक दिन जेल के मुख्य जमादार के साथ रफीउद्दीन की कोठरी के सामने भी पहुँच गया।

'क्यों रफीउद्दीन ! तू ठीक है ? कोई शिकायत तो नहीं ?'

'सरकार ! आप ही माँ-बाप हैं अब हमारे !' रफीउद्दीन बड़ी नम्रता से हाथ जोड़कर बोला, 'आप चाहे मुझे फाँसी दे दें, पर इस अकेली कोठरी में मुझे अकेला मत रखिये। मैं किसी से बात भी नहीं कर सकता। यदि यही हालत रही तो मैं कुछ ही दनों में पागल हो जाऊंगा, पागल।'

'अकेला रहने से तू परेशान हो गया है ?' अधिकारी हँसते हुए बोला, 'तेरी परेशानी का यही कारण है न ? अच्छा जमादार, इसे साथ के लिए एक बीवी ला दो। हमारी स्त्रियों की जेल में जितनी चाहो उतनी बीवियाँ हैं !'

जेलर मजाकिया है यह देखकर रफीउद्दीन एकदम खुल गया। इतने दिनों की चुप्पी के दबा बात भी निकली तो बीवी की। वह एकदम अपने रंगीले रूप में आ गया और बोला :

'साब, उसे स्त्रियों का जेलखाना क्यों कहते हैं ? अधिकांश कैदी उसे बीवीखाना कहते हैं और जो रसिक कैदी हैं वे उसे चिड़ियाघर कहते हैं। परन्तु साब, उस चिड़ियाघर के किसी पंछी को आप हमारे जैसे लोगों के पास कहाँ भेजेंगे ? वह जो सामने काला कोयले जैसा कौवा—कण्टक बैठा है न, जो मेरे ही चलान का है, उसी के पास आप चिड़िया भेजेंगे। वह भी मेरी तरह हत्यारा, आजन्म कारावास का अपराधी है।

सरकार का इस प्रकार का पक्षपात क्या ठीक है ? मुझे पाँच वर्ष का कठोर कारावास और उसे हलका काम देकर बंदी लेखक बनाने का आश्वासन दे दिया गया है। यदि उसे लिखना आता है तो मुझे लड़ना आता है। आप मुझे लड़ाई पर भेज दीजिये। सरकार यदि मेरा सिर चाहेगी तो भी मैं पीछे नहीं रहूँगा, आप देख लेना।'

'अरे वाह ! क्या मौके की बात कही है ! सरकार को इस समय एक सिर की जरूरत भी थी ! वे जरर्रे वाले हैं न, इस काला पानी के घने जंगलों में रहने वाले राक्षस, उन्होंने मनुष्य के सिर के कपाल को घिसकर चमकाकर उसमें रंगीन सीपियाँ जड़कर एक सुन्दर शराब का प्याला बनाने को कहा है। इस प्याले को सरकार लन्दन में आयोजित एक प्रदर्शनी में रखेगी। तुझे उसी जरदे वाले के पास भेज देंगे। तेरा सिर भी ऐसा है कि उन्हें ऐसे सिर से अपना मनपसन्द प्याला बनाने में सुविधा रहेगी !' साब ने ज़ोर से ठहाका लगाया।

'मेरा सिर ? नहीं-नहीं ! इस काम के लिए तो उस डोम कण्टक का सिर ही उपयुक्त है। साब, सिर के काम में बाबू लोग ही अधिक सिर खपाते हैं। घिसने, चकाने और जड़ने के लिए बाबू लोगों का सिर ही ठीक होगा।'

'कण्टक का सिर तो ब्राह्मण का सिर है न ? क्यों जमादार ? ब्राह्मण की खोपड़ी का अर्थ है भरी हुई खोपड़ी, उसमें दिमाग भरा होगा। हमें तो खोखली खोपड़ी चाहिये, जैसी तेरी है। हमें पुलिस ने बताया है कि कण्टक का घराना बड़ा, कुलशील वाला और बुद्धिमान है। उसका पिता भी बड़ा विद्वान शास्त्री था।'

'हा-हा ! केवल शास्त्री ही नहीं इस कण्टक का पिता बड़ा ज्ञानी और परोपकारी भी था। इसके पिता ने अपनी अपार सम्पत्ति एक अनाथालय को दान दे दी थी।'

'अच्छा ! ऐसी कितनी सम्पत्ति थी ?' आश्चर्य से जमादार बीच में ही पूछ बैठा।

'तीन मरगिल्ले लड़के और एक लड़की !' रफीउद्दीन हँसा। भोला

जमादार कुछ समझ नहीं सका। रफीउद्दीन फिर बोला, 'ये सारे लड़के उसने अनाथालय को दे दिये। इन तीन लड़कों में सबसे बड़ा यह मुक्खड़ कण्टक, बाबू बनना चाहता है। इसकी बहिन कलकत्ते के मछली बाज़ार की बीवी बनकर पान-पट्टी की दुकान चलाती है। कहाँ का शील और कहाँ का कुल ? मैंने स्वयं उसे देखा है। उसकी दुकान का पान भी खाया है। उसने जो कुछ गप्प मारी पुलिस ने उसे ही लिख लिया है। ऐसा मुक्खड़ बाबू बन गया और हमारे जैसे विश्वासी सिपाही, ऐसी कोठरियों में अपनी मौत मर रहे हैं।'

'परन्तु तू काला पानी से भागा हुआ कैदी है यह बात मत भूल !'

'सरकार ! यह मैंने अक्षम्य अपराध किया, इसका मुझे भारी पश्चात्ताप है। इससे मुझे मिला क्या ? अधिक यातना और पहले से भी अधिक बेड़ियाँ। आप जो भी काम देंगे करूँगा। आप मुझे भगायेंगे तब भी मैं काला पानी से नहीं जाऊँगा। यहाँ घर बनाऊँगा पर मेरी शादी कर देना साब, मैं यहीं मरूँगा। मेरी यही प्रार्थना है कि इस काल कोठरी से मुझे बाहर निकाल दें।'

'अच्छा जमादार ! कल से इसे तेल का कोल्हू चलाने का काम दे दो। तू यदि पूरा और अच्छा काम करेगा तो चार-छह महीने बाद हकला काम देंगे। पर देख, अपनी ये बक-बक करने की आदत छोड़ दे। यदि तूने किसी का आदेश भंग किया और जेल के नियमों को तोड़ा, या मस्ती की तो ध्यान रख तेरी एक-एक हड्डी चूर-चूर कर दी जायगी। हमें जेल से भागने वालों को गोली मार देने का अधिकार भी मिल गया है। पिछली ढिलाई का अब पुनः लाभ उठाने का प्रयत्न नहीं करना। अब तेरा पाला मुझसे पड़ा है। तेरा पिछला अपराध मैं भुला सकता हूँ। जमादार ! इसे कालकोठरी से निकालकर तेल-कोल्हू में ले जाना तथा दिन में वहाँ आने वाले बंदियों से बात भी न करने की अनुमति देकर रात को पुनः इसी कालकोठरी में बन्द कर देना।'

इस कक्ष-कारागार की प्रत्येक बैरक-शृंखला के आँगन में छप्पर डालकर उसमें तेल-घानी का कोल्हू लगाया गया था। इस कोल्हू के जूए में

बैल के स्थान पर दो बंदी इसे चलाते हैं। इस घानी में सरसों डालकर प्रातः से सायंकाल तक तीस पौण्ड तेल निकालना पड़ता है। जूए में जुते कैदियों को एक वार्डर चाबुक लेकर बैलों की तरह ही हाँकता है। ऐसे कई कोल्हू हैं तथा काम की निगरानी के लिए बंदियों में से ही एक ताण्डेल—दुय्यम जमादार—नियुक्त होता है। यह तेल निकालने का काम इस जेल में सर्वाधिक कठोर है। ढीठ, घुटे हुए कैदी भी इस छप्पर में घुसते ही काँप जाते हैं। जब तक पूरा तेल नहीं निकलता, तब तक खाना भी नहीं देते हैं। तभी ये नियत्रण में रहते हैं।

कोल्हू के इस काम के बारे में रफीउद्दीन को पूरी जानकारी थी। बिना काम किये ही काम कैसे पूरा होता है यह रहस्य उसे मालूम था। इस पर निगरानी के लिये जो ताण्डेल था वह भी रफीउद्दीन का पुराना परिचित था। इसलिए जेलर द्वारा दिया गया कठिन कार्य भी रफीउद्दीन को बड़ा आसान लगा। पहले ही दिन रफीउद्दीन ने इस ताण्डेल के हाथ में कुछ रख दिया और उनका पुराना परिचय फिर नया हो गया। रफीउद्दीन दिनभर बैठा गप्पें मारता तथा उसकी जगह चोरी के अन्य वंदियों को काम पर लगाया जाता और तेल निकालनेवाले का नाम रफीउद्दीन लिखा जाता। इस प्रकार चार-पाँच दिन निकल गये।

इस ताण्डेल के अधीन जो कैदी वार्डर थे, उनमें जोसेफ नाम का एक वार्डर इस ताण्डेल का बड़ा विश्वास-पात्र था। यह ताण्डेल के लिए बड़े-बड़े लोटों में दही चुराकर लाता था। कैदियों को सप्ताह में दो बार दही मिलता था। सब कैदियों को दही बाँटने के बाद जो दही बच जाता था उसे यह वार्डर धौंस जमाकर इस ताण्डेल के लिए ले आता था और वे इस छप्पर की आड़ में चोरी से खाते थे। जोसेफ को गहने और रुपये लूटने के लिए अपने अतिथियों को भोजन में विष डालकर मार देने के आरोप में आजन्म कारावास की सजा मिली थी। इस ताण्डेल को कुल्हाड़ी से अपनी पत्नी को टुकड़े-टकड़े करने के आरोप में आजन्म कारावास मिला था और यहाँ गत दस साल से था। ऐसी थी इस ताण्डेल और जोसेफ की जोड़ी। इन्हीं पर इन कोल्हुओं में पूरा तेल निकालने की जिम्मेवारी थी।

जो रिश्वत देते थे या दबंग थे उनको काम न करने की सुविधा थी, शेष बंदियों से जैसे-तैसे पूरा काम लिया जाता था।

ताण्डेल के सभी चोरी के कार्यों में जोसेफ का सहयोग होने के कारण तथा उसके विश्वासपात्र होने से ताण्डेल उससे कोई बात छिपाकर नहीं रखता था। छिपाकर रखना भी कठिन ही था। रफीउद्दीन ने जब-तब तम्बाकू देकर और कभी-कभी अफीम देकर जोसेफ को अपना बना लिया था। ताण्डेल चाहे कितना ही प्रसन्न हो वह वार्डर को ताण्डेल नहीं बना सकता था; यह काम जेलर ही कर सकता था। इसलिये जोसेफ ने जेलर की कृपा प्राप्त करने के लिए 'तुरत दान महाकल्याण' का नुस्खा—चुगली—का मार्ग अपनाया। इस छपरी के नीचे क्या दुष्कर्म होते हैं इनकी सूचना चुपचाप किसी को मालूम न हो इस प्रकार जोसेफ जेलर को देने लगा। 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' इस न्याय से जेल-अधिकारी भी अपने क्षेत्र में व्यवस्था बनाये रखने के लिए इस प्रकार के गुप्तचर रखते हैं। जोसेफ की चुगलियों में कुछ बातों को अनिवार्य मानकर उसने कुछ ध्यान नहीं दिया, पर जो एकदम अक्षम्य थी उनको वह स्वयं जाकर इस प्रकार पकड़ता था कि कैदियों को भी न पता चले कि यह जोसेफ की चुगली का परिणाम है।

आठ दिन बाद दोपहर को जब कार्यालय के सारे लेखक, आदि घर चले गये थे, तब जेलर चुपचाप अकेला ही कार्यालय में आया। उसने सिपाही को आवाज़ दी, पहरे पर तैनात सिपाही भागकर आया। जेलर ने उसे जेल के अन्दर से जोसेफ वार्डर को बुलाने का आदेश दिया। आदेश मिलते ही सिपाही गया और वह जोसेफ को ले आया तथा पुनः अपने पहरे पर चला गया।

'क्यों जोसेफ ?' जेलर ने पूछा,'कोल्हुओं का काम कैसा चल रहा है ? नया कैदी रफीउद्दीन पूरा तेल निकाल रहा है या नहीं ? या उसकी किसी से साँठ-गाँठ चल रही है ?'

'साब, उसका निकाला गया तेल पूरा-पूरा नापकर दिया जा रहा है···।'

'क्या ? ऐसा पक्का अपराधी भी पहले दिन से पूरा काम कर रहा है ? ठीक बोल, घबरा मत !'

'साब, तेल तो पूरा नापकर दिया जा रहा है, पर सारा रफीउद्दीन नहीं निकालता। आप जब सवेरे दौरे पर आते हैं तब वह जैसे-तैसे तेल निकालने का काम करता है। पर इसके बाद बैठ जाता है और उसके बदले कोई और ही उसका काम कर देता है। एवज़ी कैदी की व्यवस्था ताण्डेल ही करता है।'

'क्या कहा ?' जेलर गरजा,'तूने यह बात पहले ही क्यों नहीं बताई ? मैंने तुझे क्या काम दे रखा है यह क्या तुझे मालूम नहीं ? क्या तुझे टहलने के लिए रखा गया है ?'

'साब, क्षमा कीजिये। पहले भी कई कैदियों से कोई काम न लेकर ताण्डेल दूसरे कैदियों से काम लिया करता था, आपसे यह बात धीरे से कही भी थी पर आपने ध्यान नहीं दिया।'

'किस बात पर ध्यान दिया जाय और किस बात पर नहीं यह मेरा मामला है। जो कमज़ोर और सुधारणीय है उनके लिए नियन्त्रण को कुछ ढीला भी किया जा सकता है, पर इस रफीउद्दीन ने अनेक भयंकर अपराध किये हैं, इस पर भी वह काला पानी से भागा हुआ है, उसके लिये कोई रियायत ठीक नहीं। बता, ताण्डेल उससे कोई काम क्यों नहीं लेता ? क्या रफीउद्दीन उसका बाप है ?'

'सरकार, यह बात मुझे भी ठीक तरह मालूम नहीं। नहीं तो मैं यह गुप्त बात भी आपको बता देता। पर मुझे ऐसा लगता है कि रफीउद्दीन ने ताण्डेल की मुट्ठी गरम कर दी है।'

'पैसा ? रफीउद्दीन के पास ? स्वयं जमादार सवेरे-शाम उसकी तलाशी लेता है न ? मैंने ऐसा करने का कठोर आदेश दे रखा है।'

'जमादार तलाशी तो रोज लेता है। रफीउद्दीन के पास पैसे हैं यह भी ठीक है। पर वह कहाँ छिपाकर रखता है यह पता नहीं चलता। ताण्डेल अपने पैसे से उसके लिए इतनी तम्बाकू और अफीम थोड़े ही ला सकता है ?'

'यह बात है ! इसमें से कुछ तम्बाकू, अफीम तुझे भी मिलती है, इसलिए तूने मुझे अब तक यह बात क्यों नहीं बताई।'

'देवता की शपथ, साब, मैंने उसके तम्बाकू को चिमटे से भी नहीं छुआ। परन्तु वह ताण्डेल को पैसा देता है, इस बारे में पूरा प्रमाण न होने से मैंने आपको नहीं बताया, नहीं तो आप मुझे ही झूठा बताते। अब मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इस रहस्य का भी शीघ्र ही आपके सामने भण्डाफोड़ कर दूँगा। ताण्डेल के पेट में घुसकर उसका यह रहस्य मालूम करूँगा। कल ही इन दोनों में कुछ लेन-देन होने वाला है, ऐसी भनक मेरे कानों पर पड़ी है। पर मुझे ताण्डेल से डर लगता है। मैं तो केवल वार्डर हूँ, मेरे अन्नदाता, आप मुझे ताण्डेल बना देंगे न ?'

'तब तू इस ताण्डेल से अधिक रिश्वत लेकर दुष्ट बन जायगा। एक बात है, तू मुझे प्रमाण-सहित बता कि रफीउद्दीन पैसे कहाँ रखता है या ताण्डेल को पैसे लेते हुए पकड़ा। तब मैं तुझे ताण्डेल बनाने के बारे में विचार करूँगा। अब जा अपना काम देख ! पर ठहर, तुझे अकेला बुलाया है इसलिए अन्य कैदियों को सन्देह हो जायगा। इलिए ऐसा कर कि यह एक चिठ्ठी ले जा और ताण्डेल से कहना कि सरसों के तेल के तीन कनस्तर अभी मद्रास के लिए जहाज पर भेजने हैं। कहना, यह पत्र देने के लिए ही मुझे बुलाया था !'

अधिकांश जेलों में बारह से दो बजे तक का समय सर्वाधिक ढिलाई का होता है। सभी बड़े अधिकारी भी अपने घर चले जाते हैं। इसलिए सिपाही और बंदी अधिकारी भी अपने पैर फैलाकर सो जाते हैं। केवल बहुत जरूरी काम ही चलते रहते हैं।

ऐसे समय में यह जेलर जेल के मुख्य द्वार के पास बने अपने बंगले की पहली मंजिल की खिड़की के पास खड़ा था। उसने देखा कि वार्डर जोसेफ उसके बंगले की ओर आ रहा है। उसने दूर से ही जोसेफ को ऊपर चले आने का आदेश दिया। पहरेदार सिपाही ने उसे बंगले में जाने दिया।

जोसेफ ने झुककर सलाम किया और बोला, 'साब ! आप यदि अभी

चलें तो ताण्डेल को सप्रमाण पकड़ा जा सकता है। रफीउद्दीन ने सोने की गिन्नियाँ ताण्डेल को दी हैं। यह गिन्नी ताण्डेल ने अपनी बनियान की चोर जेब में सी कर रख ली है। अभी दो और गिन्नियाँ रफीउद्दीन के पास हैं। ताण्डेल ने उसे तम्बाकू और अफीम लाकर दी है। ये भी सरसों की बोरियों में छिपाकर रखी गई हैं। इस समय दोनों छप्पर की आड़ में पीछे की ओर निश्चिन्त होकर नींद के झोंके ले रहे हैं। मैं कपड़े धोने के बहाने इधर आ गया हूँ, मुझे किसी ने नहीं देखा है। मैंने सूचना दी है यह किसी को मालूम न पड़े। नहीं तो कोई मेरा सिर फोड़ देगा या गला ही काट देगा। साब, आप अभी जल्दी चलिये!'

'ठीक है, तू जा। यदि ये सारे पकड़े गये तो तुझे तरक्की मिलेगी। तू उसी छप्पर में अपने काम पर जाकर चुपचाप बैठ।'

जोसेफ के जाते ही जेलर ने जमादार को अपने साथ लिया और नित्यप्रति के अपने दौरे के मार्ग को बदलकर वह ऊपर के टावर की तीसरी मंजिल के चक्कर पर आकर, वहाँ मिलने वाली सभी बैरकों के मार्गों में से रफीउद्दीन की बैरक के तीसरे मंजिल का दरवाज़ा खोलकर वह अचानक उस छप्पर के आँगन में उतर गया। कोई उसे देख न पाये वह जोसेफ द्वारा बताये गये स्थान पर पीछे पहुँच गया जहाँ ताण्डेल और रफीउद्दीन अफीम के झोंके ले रहे थे। रफीउद्दीन के स्थान पर कोई एक अन्य कैदी घानी चला रह था।

'ताण्डेल!' जेलर गरजा।

ताण्डेल एकदम घबराकर उठा, पैर लड़खड़ा रहे थे, मुँह पर रुलाई थी। वह हाथ जोड़कर खड़ा रहा।

'तेरे पास कोई नियम-विरुद्ध वस्तु है? उस कुर्ते में क्या सी रखा है?··· क्या कहा? कुछ नहीं?···जमादार! इसकी तलाशी लो। इसके कुर्ते की निचली पट्टी फाड़कर देख।'

जेलर द्वारा जमादार को दिये इस आदेश को सुनते ही रफीउद्दीन अपनी घानी की ओर चला।

'ठहरो, कैदी रफीउद्दीन, ठहरो! पकड़ो उसे!'

दो-तीन वार्डरों ने जेलर की यह आवाज़ सुनते ही ऊपर की ओर जाते हुए रफीउद्दीन का रास्ता रोक लिया। रफीउद्दीन खड़ा हो गया। उसके चेहरे पर भय के बदले हिंसावृत्ति झलक रही थी। जिस वार्डर ने हाथ पकड़ रखा था उसे बार-बार झटक रहा था।

जमादार ने ताण्डेल का कुर्ता लेकर उसकी नीचे की पट्टी जैसे ही फाड़ी, एक गिन्नी खनखनाते हुए नीचे गिरी।

जेलर ने दूसरा आदेश दिया, 'इस रफीउद्दीन की भी तलाशी लो।' इस आज्ञा के मिलने पर जमादार जैसे ही आगे बढ़ा, रफीउद्दीन ने कमर में खोंसी हुई कोई वस्तु बड़ी चालाकी से निकालकर हाथ में ले ली। जमादार चिल्लाया :

'साब ! साब ! इसके हाथ में पैसे हैं। गिन्नियाँ हैं, इस हाथ में, पकड़ो ये हाथ !' जमादार, वार्डर उसका हाथ पकड़ने लपके तभी उसने चक्कर खाकर अपने हाथ की चीज मुँह में डाल ली।

'इसने अपने मुख में गिन्नयाँ डाल ली हैं एकदम गिन्नियाँ हैं, हमने अपनी आँखों से देखी है।' जमादार, वार्डर दोनों ही शपथपूर्वक चिल्लाने लगे।

जेलर गुर्राया, 'रफीउद्दीन, अपना मुख खोल ! खोल ! मुख खोल !'

एक-दो वार जमादार के हाथ को झटका देकर अपनी गर्दन नीची करने के बाद रफीउद्दीन स्पष्टता से अकड़कर बोला :

'साब, बिना मतलब के यह क्या हो रहा है। किसी की चुगली सुनकर मुझ गरीब को परेशान किया जा रहा है। यह देखिये अपना मुँह खोलता हूँ। इसके अन्दर कुछ है क्या ? यदि मेरे मुख में सोने की खान होती तो क्या मैं बातचीत भी कर सकता था ?' जेलर के सामने वह अपनी जीभ आगे-पीछे करके अपना मुँह जमादार को दिखाने लगा, पर मुँह में कुछ भी नहीं दीखा।

'क्यों जमादार ! किधर हैं इसके मुख में गिन्नियाँ ? कहाँ हैं ?' जेलर ने पूछा। घबराया हुआ जमादार अपने पिछले कथन को दुहराने लगा, 'इसके मुख में कोई चीज जरूर थी साब, जरूर थी।'

'मेरे मुख में कुछ है, यह बात ठीक है, और वे हैं सोने जड़े मेरे दाँत। इनकी चमक से तेरे जैसे भुक्खड़ों को सोना दीखने लगा। अरे दुष्ट, आज नहीं तो कल, तेरे इस सिर को चकनाचूर करके रहूँगा।'

रफीउद्दीन बिना किसी की परवाह किये जमादार को गालियाँ देने लगा। यह दुष्ट कैदी आपे से बाहर हो रहा है यह देखकर जेलर गरजा :

'अभी इसके हाथ में हथकड़ियाँ डाल दो। इसे यहीं पकड़कर रखो। यह सिर ऊपर-नीचे कर रहा था, इसने निगल ली हैं ऐसा लगता है।'

रफीउद्दीन के हथकड़ियाँ डालने के बावजूद सिपाही उसे पकड़कर खड़े थे। तब जेलर ने छप्पर के ऊपर कोने में सरसों के थैले को खोलकर देखा तो उसमें अफीम की डिब्बी मिल गई।

जोसेफ द्वारा दी गई सूचना अक्षरशः सही निकली। जोसेफ दूर से ही यह सब देख रहा था। पर इस घोटाले के मुख्य अपराधी रफीउद्दीन के पास से कुछ भी नहीं मिला। जेलर को पहले भी एक-दो ढीठ कैदियों से पाला पड़ चुका था। उसने रफीउद्दीन के पीछे पड़ जाने का निश्चय कर लिया और डाक्टर बुलाकर रफीउद्दीन की उल्टी लाने की दवाई देने को कहा।

रफीउद्दीन को उसी तरह कोठरी में ले जाकर उसे उल्टी करने की दवाई दी गई। पर उसने दवाई का प्याला दीवार पर दे मारा। 'इसे जबर-दस्ती पिलाओ!' जेलर ने गरजकर आदेश दिया। जमादार, सिपाही आगे बढ़े। धक्का-मुक्की लात-घूँसा मारते-खाते रफीउद्दीन जमीन पर गिर पड़ा, उसे जबरदस्ती मुख खोलकर दवाई पिलाई गई और पहरा बैठा दिया गया। शाम तक तीन-चार बार उल्टियाँ हुईं पर उसमें एक भी गिन्नी नहीं निकली। जेलर भी चक्कर में आ गया, क्योंकि उसने रफीउद्दीन को गिन्नियाँ निगलते स्वयं देखा था। डाक्टर से परामर्श करने पर उसने दस्तों की दवाई देने को कहा और यह दवाई भी रफीउद्दीन को पहले की तरह दबोचकर पिला दी गई। रात को उसके कमरे में एक बड़ा कूँडा रखकर उसकी कोठरी का ताला लगा दिया गया और सब लोग अपनी-अपनी ड्यूटी पर चले गये।

वह रात रफीउद्दीन ने असह्य कष्ट में बिताई। पहले उल्टियाँ, फिर

दस्त। उसका सारा शरीर एकदम अकड़ गया था और भारी दर्द कर रहा था। दिनभर उसके साथ अन्याय, दुर्व्यवहार किया गया है इस बात को याद करते ही वह आग-बबूला हो रहा था। उसने दुनिया के साथ पहले या अब क्या छल किया है, या उसने कभी किसी दूसरे को हानि पहुँचाई है, यह विचार कभी उनके मन में आया ही नहीं। उसके शब्दकोश में छल का अर्थ, उसे कष्ट देना और अन्याय का अर्थ उसकी इच्छा के विरुद्ध जो किया जा रहा है, था। इसके अलावा इन शब्दों का कुछ और भी अर्थ होता है, उसने सोचा ही नहीं था। वह यही सोच रहा था मुझ अकेले को सबने मिलकर कितना सताया, मारा-पीटा, दबोचा। मेरी तम्बाकू-अफीम भी छीन ली।

उसका मन कर रहा था कि जमादार और जेलर सामने आ जाय तो उनका गला ही घोंट दे। पर इसके लिए कोई उपाय सोचना होगा। उसे एकदम लाहौर जेल के नूर मोहम्मद की याद आ गई जिसने पागल होने का स्वाँग रचा था। उसने निश्चय कर लिया कि वह भी पागल बनने का स्वाँग रचेगा। होने दो सवेरा। मेरा दरवाज़ा खोलते ही, जमादार, डाक्टर, जेलर सबको ऐसा मज़ा चखाऊँगा कि बस, और दें मुझे दस्त की दवा! अपनी योजना पर वह अपने-आप ही जोर-जोर से हँसने लगा।

जेल में हजारों में एक जब कोई कैदी ऐसी-वैसी चीज निगल लेता है तथा उसे दस्तों की दवाई दी जाती है, तब अगले दिन प्रातः अधिकारी स्वयं उसकी कोठरी खोलता है और भंगी से उसकी दस्त की जाँच कराते हैं कि वह वस्तु निकली या नहीं। तदनुसार जमादार और दो वार्डर सवेरे ही रफीउद्दीन की कोठरी के सामने आ गये। जमादार ने जैसे ही लोहे के फाटक को खोलकर पैर अन्दर रखा, तभी अन्दर रखे दस्तों से भरे टमरेल को रफीउद्दीन ने जमादार के मुख पर दे मारा। जमादार का मुख, नाक, कपड़े सब दस्त से सन गये'। उसे उलटी आने लगी और वह 'छी-छी' चिल्ला उठा।

रफीउद्दीन आनन्द लेता हुआ जोर-ज़ोर से हँसने लगा।

'मेरे पेट का सोना चाहिए था न तुझे? अरे पाजी, भंगी, ले इसे खा-

पी। इस सोने से तेरा सारा शरीर मढ़ दिया है मैंने। हरामी···'

गन्दी-गन्दी गालियाँ देता हुआ रफीउद्दीन एक कोने में टमरेल लेकर खड़ा हो गया।

लज्जा, क्रोध और घृणा से परेशान जमादार चिल्लाया, 'वार्डर, देखते क्या हो? इस सूअर को ठिकाने लगाओ!'

वार्डर आगे बढ़े, पर इस अघोरी रफीउद्दीन ने अपने शरीर पर भी दस्त थोप रखा था। इतने आदमी होने पर भी उसे पकड़ने कोई आगे नहीं बढ़ रहा था।

जेलर भी आ ही रहा था कि वह शोर-शराबा सुनकर सिपाहियों के साथ दौड़ता हुआ आया। सब घटना देखकर उसने क्रोध से रफीउद्दीन के सिर पर अपना डण्डा मारा। रफीउद्दीन ने टमरेल में बची-खुची विष्ठा जेलर पर उलट दी। पर इसके साथ ही जमादार, वार्डर और सिपाही सब उस पर टूट पड़े और उन्होंने उसकी पिटाई शुरू कर दी। रफीउद्दीन जमीन पर पड़ा हाय-हाय करते बोला:

'मारो मत साब, तुमको कैदी को मारने का हुकुम नहीं है। तुम जेल का नियम तोड़ रहे हो। अन्याय! सरासर अन्याय! हत्यारो, कसाइयो, तुम सब भारी बदमाश हो!'

'अरे सूअर!' जेलर गरजा, 'जेल के नियम अब तुझे याद आ रहे हैं। लोगों की गर्दन काटने वाले राक्षस! तेरी भी गर्दन मरोड़ी जाने के साथ तुझे न्याय-अन्याय का पता चला है। और मारो इसे, मर भी जाय तो भी चिन्ता नहीं! दरिन्दों में भी पशु! टट्टी का कीड़ा!'

रफीउद्दीन अब कुछ नरम पड़ा और लम्बी साँस लेता हुआ अधमरा-सा पड़ गया।

भंगी ने दस्त की जाँच की। उसमें कोई पैसे या गिन्नी नहीं निकली। जेलर की बेइज्जती हो गई है यह देखकर घायल होने पर भी रफीउद्दीन हँसने लगा।

'क्यों? मेरे पेट में सोना ही सोना था न? ले लो, जितना चाहिए उतना ले लो।'

डाक्टर भी बोला, 'आपने इसे व्यर्थ में ही यह कष्ट दिया।' उसने बाहर होकर जेलर से कहा, 'इसने कुछ निगला है ऐसा तो नहीं लगता।'

जेलर ने कहा, 'यह जिम्मेदारी मेरी है। आप लोग मनुष्यों के स्वास्थ्य की परीक्षा ले सकते हैं, राक्षसों और जंगली सूअरों की नहीं। जेल की दुनिया कैसी है इसका ज्ञान तुम्हारे जैसे नई डाक्टरी पढ़कर आने वाले अधिकारियों को शीघ्र मालूम नहीं। इसे एक बार और उल्टी आने की दवाई मिलनी चाहिए।'

'क्या ? उल्टी की दवाई ? इससे कोई लाभ नहीं होगा। इसके पेट में कोई पैसा नहीं है, होता तो पहले ही निकल आता।'

'पेट में न सही ! जरा ठहरो, मैं ज़रा देखकर ठीक-ठीक बताता हूँ। यह कहकर जेलर ने जमादार को आदेश दिया, 'इसके फिर हथकड़ी डालो और भंगी से कहो कि इसे धो डाले।'

यह सुनकर रफीउद्दीन चिल्लाया, 'क्या भंगी मुझे धोयेगा ? मैं क्या टट्टीघर का फर्श हूँ ? मेरी जात लेना चाहते हो ? मैं भंगी को मार डालूंगा। तू साहेब नहीं, किसी भंगी का बेटा…'

यह सुनते ही एक बार सबने उसकी अच्छी मरम्मत की और जेलर ने उसके गले को दबाकर इतनी जोर से चिमटी काटी कि रफीउद्दीन एक-दम चीख उठा। डाक्टर घबरा गया, उसने आगे बढ़कर जेलर का हाथ खींच लिया और कहा, 'यह क्या ? गुस्से में तुम उसका गला घोंटकर क्या मार ही डालोगे ? कुछ गड़बड़ हो गया तो ?'

'गड़बड़ कुछ नहीं होगा, सब ठीक होगा।' जेलर मुस्कराया। उसने कहा, 'डाक्टर ! इस कैदी के गले का खोखला स्थान भरा हुआ है। मुझे इसी बारे में शंका थी। मैंने जान-बूझकर गला दबाकर यह देख लिया है। मेरे दबाते ही गले की वस्तु इसके मुख में आ गई थी और वह उसे बार-बार फिर निगल रहा था। इसे उल्टी आने की एक जोरदार खुराक दो, सब बाहर आ जायगा।'

डाक्टर ने इच्छा न होने पर भी जैसे-तैसे दवाई दे दी और सबने उसे जबर्दस्ती रफीउद्दीन को पिला दी। उसको दो-तीन उल्टियाँ भी आईं

पर उसमें कुछ नहीं था। पर जेलर ने रफीउद्दीन के कानों के पास गले को दबाकर अपना हाथ ऊपर सरकाना शुरू किया। अगली उल्टी के दौर में रफीउद्दीन के खुले मुख से एक-एक कर पाँच गिन्नी गिरीं और बाद में अफीम का एक ढेला भी।

अब तक इन गुप्त रखी गई गिन्नियों के बल पर ही रफीउद्दीन विभिन्न जेलों में बड़े सुख-चैन से रहता था। पाँच गिन्नियों का अर्थ जेल में पाँच लाख रुपये है। अपनी इन्हीं गिन्नियों के बल पर रफीउद्दीन बिना काम किये, अन्य बंदियों को अपनी सेवा में रखता था। अब वह निष्कांचन, दरिद्री, मुक्खड़ हो गया था। आज वह वैभवशून्य अन्य कैदियों के समान हो गया।

और, उसी दिन उसके अपराध पर विचार करने के लिए अधिकारियों की एक बैठक में जेल के नियमों के अनुसार रफीउद्दीन को तीस कोड़े मारने का निर्णय किया गया।

कोड़े मारे जाने की सजा सुनते ही रफीउद्दीन जैसा दुर्दम्य कैदी भी काँप गया। आजन्म कारावास उसने हँसते हुए सुनी थी, पर कोड़ों की सजा सुनकर वह अत्यंत डर गया था।

जिस दिन कोड़े मारे जाने वाले थे उससे पहली रात रफीउद्दीन सो नहीं सका। उसे सपासप कोड़ों की आवाज आती रही। जेलों में प्रचलित किंवदन्ती के अनुसार यदि कोई अपना मूत्रपान करे तो उसे कोड़े मारे जाने का आभास नहीं होता है, इसलिए रफीउद्दीन ने भी सवेरे उठ टमरेल में अपना मूत्र इकट्ठा कर उसे पिया। कुछ कुरान की आयतें पढ़ीं और जैसे किसी धर्म-युद्ध में जा रहा हो इस प्रकार सफलता के लिए खुदा का नाम जपने लगा—

'अल्ला तू रहीम ! खुदा तू रहम कर !' इसका जाप जब वह कर रहा था, तभी कोठरी खोलने वाला सिपाही आ गया और उसने खटाखट दरवाजा खोल दिया। जेल के बीच में एक ऐसा चौक था जिसे सभी मंजिल के कैदी देख सकते थे। रफीउद्दीन को उसी चौक में लाकर खड़ा किया गया। वहाँ एक टिकटिकी खड़ी थी। इसी टिकटिकी पर खड़ा कर

उसके पैर इसी टिकटिकी में लगे दो लोहे के कड़ों में तथा हाथ सिर से भी ऊपर लगी दो कड़ियों में कस दिए गए। वह केवल एक लंगोट पहने था। उसके गले में भी एक पट्टा बाँध दिया गया था।

कोड़े मारने का कार्य समाप्त होने पर आवश्यक दवा-दारू करने के मिश्रक (कम्पाउण्डर) सब दवा-दारू ले आया था। थोड़ी देर बाद डाक्टर भी आ गया। सिपाही खड़े थे। रफीउद्दीन आज एकदम मुर्झाया हुआ था। सदा की तरह उसके चेहरे पर दीखने वाली उद्दण्डता आज गायब थी। अपना भेद खोलने वाले जमादार को देखकर भी वह चुप रहा। एक शब्द भी नहीं बोल पाया।

टन, टन, टन घण्टी बज उठी और तत्काल टावर में बैठा जेलर अपने भारी बूटों की आवाज़ करता हुआ बाहर आया। इसके पीछे ही एक निक्कर और जाकेट पहने मांसल शरीर और स्फूर्त शिराओं वाला, एक अस्तव्यस्त बालों वाला कोड़े मारने वाला था। इसके हाथ में तीन अंगुल मोटी एक लम्बी बेंत थी। रफीउद्दीन को यह बेंत दीखी नहीं, पर इस हलचल से वह समझ रहा था क्या होगा और भय से काँप उठा।

'मारो!' जेलर ने आदेश दिया। इस आदेश से ही मानो नितम्ब पर वेंत पड़ी हो, रफीउद्दीन ने बड़े गिड़गिड़ाकर कहा, 'साब! धीमे मारो।'

अपने हाथ की बेंत को सिर पर से घुमाकर कोड़े वाले ने निशाना जमाया।

'एक!' जेलर ने गिनती शुरू की और बेंत सटाक् से रफीउद्दीन की नितम्ब पर पड़ी। 'हाय मरा!' रफीउद्दीन चिल्लाया।

'दो! तीन! चार! पाँच! छह!'

रफीउद्दीन के दोनों नितम्बों से खून के फव्वारे निकल रहे थे, मांस के लोथड़े गिर रहे थे। आसपास खड़े कैदियों को भी दया आ रही थी। उनमें कण्टक भी था। पर उसे यह भी याद आया कि यही वह रफीउद्दीन है जो लकड़ियों की तरह कुल्हाड़ी से लोगों के सिर फोड़ता था। एक वर्ष पूरा होने पर युवतियों के प्राण लेने वाला नर-राक्षस। नृशंस।

'सात ! आठ ! नौ ! दस !' एक के बाद एक बेंत पड़ रही थी। रफीउद्दीन बेहोश हो गया था। केवल बेंत लगने पर चीखता था।

'अट्ठाईस ! उन्तीस ! तीस !!'

तीसवीं बेंत मारते ही कोड़े मारने वाला अपनी बेंत फेंककर जमीन पर बैठ गया। वह पसीने से लथपथ था। वह बुरी तरह थक गया था।

डाक्टर एकदम आगे बढ़ा। रफीउद्दीन को टिकटिकी से उतारा गया। उसकी नाड़ी देखकर उसके घावों पर मरहम-पट्टी की गई और उसे जेल के अस्पताल में बनी एक अलग कोठरी में बंद कर बाहर से ताला लगा दिया गया।

उस रात घावों से उठने वाली वेदना से, उसका सारा शरीर उत्तप्त हो गया। ज्वर हो गया और ज्वर की यह उष्णता मस्तक में भी चढ़ गई। इससे उसके मस्तिष्क का शिराजाल उच्क्षुब्ध हो गया। इस शिराजाल के केन्द्र में विचारों के धक्के से अकस्मात् जो कोई भी भाव उठता है उसका समग्र चित्र इतनी स्पष्टता से सामने आता है कि ऐसा लगता है कि सारी घटना प्रत्यक्ष घटित हो रही है। इसी बीच यदि इस केन्द्र में कोई दूसरा भाव उगता है तो एक नई ही चित्रावली (फिल्म) आँखें बंद होने पर भी सामने दीखने लगती हैं। शृंखला में अनेक असंभाव्य दृश्य भी विचित्र रूपों में सामने आते हैं। रफीउद्दीन की भी यही स्थिति थी।

ज्वर की तीव्रता होने पर भी जब तक वह सामान्य रूप से होश में था उसे यही विचार आ रहा था कि उसकी इस दुर्दशा का कारण उसके अपने ही दुष्कृत्य हैं। उसे बार-बार पश्चात्ताप हो रहा था। वह यही सोच रहा था कि उसने पाप-कर्म क्यों नहीं छोड़े ? काला-पानी से भागकर चले जाने के बाद स्वदेश पहुँचने पर चोरी-डकैती कर-के अपार धन प्राप्त कर लिया था। असीमित इन्द्रिय-सुख का उपभोग किया। इतना हो जाने के बाद यदि किसी अन्य प्रान्त में जाकर व्यवस्थित जीवन शांतिपूर्वक बिताता तो इस संकट में क्यों पड़ता ? इस चिंतन में उसका विवेक उसे इतनी ही प्रतीति करा सका कि पुष्कल धन तथा बिहार की उस तरुणी को भगा ले जाने के याद उसे समाज-विरोधी कार्यों को

बंद कर देना चाहिए था। यह अन्तिम विचार ही उसके सम्पूर्ण मस्तिष्क में प्रमुख रूप से व्याप्त हो गया।

'अरे रे ! बिहार की उस सुन्दर तरुणी से नियमपूर्वक विवाह करके मैंने अपना जीवन शांति से क्यों नहीं बिताया ? हाय ! मैंने उस सुन्दरी को खप्पर की तरह उस बाढ़ में क्यों दिया ! हे नीच ! तूने पानी में डूबती उसका सिर भी पत्थर से फोड़ डाला। हाय माँ, मैंने यह क्या किया ? इन्हीं बातों को बोलते, बकझक करते उसकी स्मृति में गुलाम-हुसेन का प्रकरण सामने आ गया।

'हरामी, दुष्ट ! मुझे मेरी मालती वापिस दे। मैंने उसे तेरे पास धरोहर के रूप में रखा था—वह मेरी है, मेरी···तूने उसे अपने पास रख लिया है। ···गुलाम, उसे देता है या नहीं ? मारो, मारो !' पाँव खींच लिया। हाय-हाय ! मर गया ! मर गया !! इसी उत्तेजना में उसके घावों में दर्द की एक और लहर उठी, वह कुछ सँभला पर थोड़ी देर बाद फिर बड़बड़ाने लगा :

'गुलाम हुसेन यदि मालती को नहीं ले गया, तो वह कहाँ होगी ? हाय ! चोर के घर छिछोर आ गया। उसने मालती को अपने पिंजरे में बंद कर रखा होगा ! मालती गुलाम हुसेन के जनानखाने में ! पर अरे, यह मालती लाहौर के बाज़ार में ! मालती ! तू यहाँ बाज़ार में कैसे ?···लाहौर के बाज़ार में मालती को अचानक देखकर उसने उसका चुम्बन लिया। आ-आ ! प्यारे रफीउद्दीन, तू मुझको छोड़कर कहाँ चला गया था ?

'···गले में हाथ डालकर जैसे ही मालती उसे अपने कमरे में ले गई, उसके सारे कपड़े उतारे, तभी कमरे में एक सन्दूक में से किशन एक छुरा लेकर बाहर कूदा ! बाप रे ! विश्वासघात, विश्वासघात ! उस दुष्ट स्त्री ने विश्वासघात किया ! यह मालती, राक्षसी मालती !···'चुप हो राक्षस ! किशन, इसे उस टिकटकी से बाँध दे, जिस पलँग पर वह मेरे साथ सोना चाहता था उसी को टिकटकी बना दे !'

पलँग की अकस्मात् टिकटिकी बन गई। मालती के क्रोध ने भयंकर रूप धारण कर लिया। बड़बड़ाते हुए उसे मालती की एक बिखरे बालों वाली,

माथे पर सिन्दूर लगाये, साँप की-सी लाल-लाल जीभ लपलपाती एक विकराल आकृति आ गयी। किशन ने रफीउद्दीन को टिकटकी पर बाँध दया और उसकी पीठ पर खून के फव्वारे उड़ाने वाला एक ज़ोरदार कोड़ा मारा !

'हाय, हाय ! मालती, पाँव पड़ता हूँ, मुझे छोड़ दो, धीरे मारो, मालती, क्षमा, क्षमा, क्षमा।'

···पर मालती रक्त से सने काँटेदार कोड़े को मारती जा रही थी, गिनती जा रही थी—

'तीन ! चार ! पाँच ! पचास !' दिनभर के झटके में रफीउद्दीन स्वयं चिल्ला उठा, 'सौ !'

१३. नई बस्ती के निवासी

'उषा, अरी उषा ! आज बोलती क्यों नहीं ? वहाँ घर में क्या कर रही है ? इधर आ, आ !'

साठ से भी ऊपर की आयु, पर अब भी आवाज़ में कड़कपन और तना हुआ शरीर। ऐसा एक व्यक्ति अपने सादे, खपरैल वाले, साफ-सुथरे मकान के आँगन में बैठा हुआ अपनी सात-आठ वर्ष की नातनी को बुला रहा था। दोपहर को दो-तीन बजे जब आँगन में छाया आ जाती थी तो वह वहाँ आकर इसी प्रकार बैठ जाता है। काम-काज समझाकर गोरुओं के जंगल से, बच्चों के स्कूल से और अपनी बहू—इस नाती की माँ—के काम पूरा कर घर आने तक यह वृद्ध जब तक उस खाट पर बैठता है उसके साथी यह दो नाती—उषा और उसका बड़ा भाई बारह वर्षीय मोहन और पान का बटुआ थे। यह उन्हें कुछ सिखाताथा, पढ़ाता था, कहानी सुनाता था, आँगन में लगे फूलों के पौधों को पानी देता या आम आदि के पेड़ों की रखवाली करता था।

इस घर के आस-पास तीस-चालीस घर इसी प्रकार के सादे झोपड़ीनुमा थे और इनसे मिलकर एक छोटा-सा गाँव बन गया था। यह गाँव

कोंकण का एक गाँव जैसा ही लगता था। 'अन्दमान' को पूर्वी समुद्र का कोंकण का प्रतिरूप कहा जा सकता है।

'उषा ! अरे, दिखाई क्यों नहीं देती। मोहन कहाँ है ?' वृद्ध ने पुनः प्रश्न किया।

'क्यों री ! आज मेरे से क्या भूल हो गई ? अच्छा मोहन, तू ही आ, मैं आज उषा को बढ़िया पान का बीड़ा देना चाहता था पर वह रूठी ही हुई है। आ तू ही ले ले !'

वृद्ध की यह बात सुनकर मोहन दौड़ता हुआ आया। मोहन पान का बीड़ा लेने वाला है यह देखकर उषा अपनी गुड़िया फेंककर दरवाज़े पर आई और थोड़ा दरवाज़ा खोलकर रूठी आवाज़ में बोली, 'अप्पा ! मैं क्या तुमसे रूठी हुई हूँ ?'

'फिर तू बोलती क्यों नहीं ? तुझे पान नहीं चाहिये क्या ?'

'मुझे चाहिये, पर इसे मोहन के हाथ भेज दो। तुम पान देने से पहले मेरा पप्पा लोगे, मुझे तुम्हारी मूँछें चुभती हैं। तुम्हें पान देना है तो यहीं दे दो।' उषा ने अपने मन की बात कही।

'मेरा क्या बिगड़ता है। जिसे पान चाहिये वह पप्पा देगा। यदि मूँछ न चुभे इस प्रकार पप्पा लूँ तो दोगी ?' अप्पा ने फिर कहा।

यह सुनकर उषा ने आती हूँ तो नहीं कहा पर धीरे-धीरे कदम रखते हुए अपने दादा के पास आ गई और गोदी में बैठ गई। दादा ने उसे प्यार किया और मोहन और उषा को पान खिलाया और दोनों को अपने पास बिठाकर उनसे बातें करने लगा।

इतने में ही सामने की टेकरी से एक व्यक्ति को उतरता देखकर मोहन ताली पीटते हुए बोला, 'अप्पा-अप्पा देखो, कण्टक बाबू आ रहे हैं !'

उषा ने भी अनुमोदन किया, 'हाँ, हाँ ! कण्टक बाबू ही हैं।'

अप्पा उस समय कलकत्ते से आया एक हिन्दी पत्र पढ़ रहे थे। अ[illegible] बार हटाकर उन्होंने देखने का प्रयत्न किया, पर उन्हें लगा कि कण्टक बाबू न होकर कोई अन्य ही है।

उषा ने ज़ोर देकर कहा, 'अप्पा, ये कण्टक बाबू ही हैं, आप मेरी आँखों

से देखिये न !' यह कहकर वह अप्पा की गोदी में बैठकर बोली, 'अप्पा, मेरी आँखों से देखो !'

इस वृद्ध ने उषा का मन रखने के लिए उसका सिर अपनी आँखों के सामने दूरबीन की तरह रखकर देखा और कहा, 'देखो, मुझे क्या-क्या दीख रहा है ।'

'तू ठीक कहती है। ये कण्टक बाबू ही हैं। और ये देखो, मेरी चिड़िया उषा एक समझदार लड़की की तरह अपनी स्लेट, पेंसिल और पहला कायदा लेकर कण्टक बाबू से पढ़ रही है। मुझे मोहन भी पढ़ता हुआ दिखाई दे रहा है। देख, मुझे तेरी आँखों से कितना साफ़-साफ़ दिखाई दे रहा है। तू पढ़ेगी न अब कण्टक बाबू से ?'

'हाँ मैं पढ़ने बैठूँगी, पर कण्टक बाबू के पास नहीं तुम्हारी गोदी में।'

'नहीं बेटी, ऐसे कैसे पढ़ोगी ? गुरुजी गुरुजी हैं। वे कितने अच्छे हैं !'

'अप्पा, कैसे अच्छे ? सच्ची बात तो यह है कि उन्हें कुछ पढ़ाना आता ही नहीं।'

'तुझे कैसे मालूम कि कण्टक बाबू को कुछ नहीं आता ?'

'इसमें मालूम करने की क्या बात है। मैं तो प्रायः यह देखती हूँ। वे मुझसे और मोहन से ही पूछते हैं—कलकत्ता कहाँ है ? बम्बई कहाँ है ? अंग्रेजी में माँ को क्या कहते हैं ? बिल्ली को क्या कहते हैं ? और तो और मेरे से पूछते हैं दो पंजे कितने होते हैं ? ऐसे दिनभर हमसे ही पूछते रहते हैं। यदि उन्हें मालूम होता तो हमसे पूछते क्यों ? पहाड़े तक नहीं आते।'

इतने में ही कण्टक बाबू आँगन में आ गये। उनके हाथ में नित्य की तरह मिठाई की थैली थी। उसे देखते ही उषा उसकी ओर लपकी।

'क्या बात है कण्टक गुरुजी,' अप्पा ने हँसते हुए कहा, 'तुम्हारे शिष्यों ने तुम्हें परीक्षा में अनुत्तीर्ण कर दिया है यह जानते हो ?'

'वह कैसे ?' कण्टक ने जिज्ञासा से पूछा।

'हमारी उषा कहती है कि आपको पहाड़े तक नहीं आते हैं। आपको जब मालूम नहीं होता तब उषा से पूछते रहते हैं। दो पंच कितने ? तीन दहाई कितने ? उसके बताने पर ही आपको कुछ आता है।'

'यदि ऐसा है तो मैं एक प्रश्न पूछता हूँ, यदि उषा ने बता दिया तभी मैं समझूंगा कि वह ठीक कहती है। पूछूं प्रश्न ?'

'हाँ पूछो, अभी उत्तर दूंगी, पर ऐसा ही प्रश्न पूछना जो मुझे आता हो।' उषा ने चुनौती स्वीकार की।

'तो सुनो, एक आम बेचने वाली एक टोकरी आम लाई थी। इस टोकरी का मूल्य दो रुपये था। इसने इन आमों को आधा-आधा कर दो टोकरियों में डाल दिया। बताओ प्रत्येक टोकरी की क्या कीमत हुई ?'

मोहन ने एकदम उत्तर दिया, 'मैं एक-एक रुपया दूंगा।'

परन्तु उषा कुछ देर विचारकर झिड़कते हुए बोली :

'मैं एक पैसा भी नहीं दूंगी।'

'क्यों ?' अप्पा ने उषा से प्रतिप्रश्न किया।

'जब बाजार में पूरे अच्छे आम मिलते हैं, तब आधे कटे गन्दे आम कौन लेगा ?' 'आम आधे-आधे करके', वाक्य का अर्थ उषा ने दूसरा ही लगाया और अनपेक्षित उत्तर दिया।

इस अनपेक्षित उत्तर को सुनकर तथा उषा की बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करते हुए अप्पा ने उसकी पीठ थपथपाई और कण्टक से बोले :

'कहिये गुरुजी, हमारी उषा को जितना मालूम है, उतना तुम्हें भी नहीं आता यह बात ठीक निकली न ?'

'बाबा, बिल्कुल ठीक निकली। इस चिड़िया ने गुरुजी को जो पाठ सिखाया है उसकी फीस के रुपये ये मिठाई देता हूँ।' कहकर कण्टक ने एक पेड़ा मोहन को और एक उषा को दिया।

कण्टक बाबू को खाट पर बैठने का इशारा करते हुए बाबा जब अपना पैर मोड़कर एक ओर खिसकने लगे, तब उनके घुटने में बड़ी जोर की वेदना हुई और वे कराह उठे।

'एकदम ऐसा क्या हो गया, ऐसा क्यों चीखे, पाँव में कुछ हो गया है क्या ?' कण्टक बाबू घबराकर पूछते हुए बाबा के पैर दबाने लगा।

'यहाँ, यहाँ घुटने में।' अप्पा अपना घुटना धीरे-धीरे आगे-पीछे करने का प्रयत्न करते हुए बोले, 'इस घुटने में पिछले दो-तीन दिन से ऐसी ही

पीड़ा उठ रही है। एक पुराना घाव है पैर में। अब वृद्धावस्था से निर्बलता के कारण वह घाव फिर पीड़ा दे रहा है।'

'पुराना घाव ! कैसे लगा ?' कण्टक ने पूछा।

'अरे, इसका एक इतिहास है। यह घाव सन सत्तावन के स्वतंत्रता-युद्ध में अंग्रेज की गोली से घावा था। मैं क्रांतिकारियों की ओर से लड़ रहा था। मैं क्रांतिकारी था।' यह कहकर वह वृद्ध और तनकर बैठ गया। वह और भी अधिक ऊँचा दीखने लगा।

'आप क्रांतिकारी थे ?···अंग्रेजों से आमने-सामने होकर लड़े थे ?' कण्टक ने एक-एक शब्द पर बल देते हुए पूछा। वृद्ध ने उसी दर्प के साथ 'हाँ' कहकर अपना सिर हिलाया। कण्टक उसे आदर की दृष्टि से देखता रह गया। वह एक सीधा-सादा वृद्ध गृहस्थ कण्टक के लिये एक योद्धा, लड़ाकू वंदनीय वीर और एक पौराणिक पुरुष हो गया। क्षण-भर इस वृद्ध को उसी प्रकार देखते हुए कण्टक ने पूछा :

'अप्पा, आपने आज तक मुझे इस बारे में कुछ भी नहीं बताया ? गत छह महीने से मैं आपके प्रेमपूर्ण परिवार में बहुत घुल-मिल गया हूँ। मैंने आपका पूर्व-जीव नस्वयं क्यों नहीं पूछा इसका भी कारण है, क्योंकि यहाँ आजन्म कारावास का दण्ड भोगने वालों में से बहुतों का पूर्ण जीवन घृणित अपराधों से जुड़ा है और वे उसे सामान्यतः छिपाना चाहते हैं। इसीलिए इच्छा होने पर भी मैंने आपके बारे में कुछ पूछा नहीं। आप सन सत्तावन के युद्ध में लड़े यह राजकीय अपराध होने पर भी अनैतिक, नीच कर्म नहीं है यह भी मानता हूँ। इसलिए आपने स्वयं अपना यह इतिहास क्यों नहीं बताया ? स्वतंत्रता-युद्ध के बारे में जानने की मेरी बचपन से ही बड़ी ललक रही है। मेरे दादा श्रीमंत नाना साहेब की सेवा में थे। मेरे पिता मुझे बचपन में ही यह बताया करते थे। वे तात्या टोपे का नाम प्रायः लिया करते थे।'

'इसी वीर तात्या टोपे की सेना का मैं एक सिपाही था।' वृद्ध ने बताया।

'क्या कहा ? अहा ! सेनापति तात्या टोपे ! जिसका नाम हमें बचपन

में ही एक पौराणिक वीर की तरह लगता था। उस सेनापति को प्रत्यक्ष देखनेवाला और उसकी सेना का एक सैनिक मेरे सामने खड़ा है, इस बात से ही मुझे रोमांच आ रहा है। यदि आपको कोई खतरा न हो तो मेरी यह उत्कट इच्छा है कि जो बातें प्रत्यक्ष देखी हैं वे मुझे भी सुना दें।···कोई खतरा समझते हैं क्या ?'

'खतरा ? बाप रे ! एक समय था जब यदि मैं यही कहता कि मैं तात्या टोपे को पहचानता हूँ तो मुझे पास के पहले ही पेड़ पर फाँसी लगा देते। मैं तात्या टोपे की सेना के सैनिक के रूप में लड़ा हूँ यह कहना तो दूर की बात थी। उस समय यह बात किसी को कहने में खतरा है यह समझकर हमने इसे अपने मन की अन्ध कोठरी में डाल दिया था। अब उसे कुरेदने की कोशिश भी करते हैं तो नहीं होता। वैसे अब समय बदल गया है। स्वतन्त्रता-युद्ध अब इतिहास बन गया है। वर्तमान परिस्थिति से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। केवल इतना ही सम्बन्ध है जो इतिहास में भूत का वर्तमान से होता है। स्वयं अंग्रेजों ने उस समय की बातों पर सैंकड़ों ग्रन्थ लिख डाले हैं। स्वयं एक-दो अंग्रेज लेखक मेरे यहाँ उस समय की घटनाओं की प्रत्यक्ष जानकारी लेने के लिए आये भी थे। परन्तु उस समय इन बातों को प्रकट करने में जो एक भय मन में बैठ गया था उसके कारण खुले रूप में कहने की बात मन में नहीं उठती थी। इसीलिए मैंने आज तक तुम्हें कोई बात नहीं बताई। अब इसमें छिपाने जैसी कोई बात है भी क्या ? इसके लिए मुझे जो कारावास दिया गया उसे भोगने के लिए ही हमें अन्दमान भेजा गया और हमारी वह कारावास की अवधि पूरी हो गई है।'

'अच्छा, तो क्या सत्तावन के संघर्ष में भाग लेने के कारण ही आपको आजन्म कारावास का दण्ड मिला ?'

'सन सत्तावन से भी चालीस-पचास वर्ष पूर्व अंग्रेजों ने यहाँ बस्ती बसाने का प्रयत्न किया था, पर उस समय जो कुछ भारतीय यहाँ भेजे वे इसके भयंकर जंगलों, दलदलों, रोग फैलाने वाले कृमि-कीटों और विशेष रूप से भयंकर सर्दी के शिकार हो गये और यह समझा गया कि य

द्वीप मनुष्यों के रहने के लिए उपयुक्त नहीं है। परन्तु सन सत्तावन के विद्रोह के बाद शायद इसके इन्हीं 'गुणों' के कारण विद्रोह में पकड़े गए हम सैकड़ों लोगों को अंग्रेजोंने आजन्म कारावास का दण्ड देकर यहाँ भेज दिया। पर यह आश्चर्य की बात है कि हम सब यहाँ आने पर भी मरे नहीं। यहाँ के घने जंगलों में, गंदे भयंकर दलदलों में, साँप, जोंकों, हिंस्र पशुओं और भयंकर सर्दी में भी हम जीवित रहे। इस प्रकार अन्दमान की इस बस्ती के हम आदि-संस्थापक पुरुष हैं, आद्य पूर्वज हैं, कुल-पुरुष हैं। यहाँ बस्ती बसाने के लिए जो विद्रोहियों का पहला दल भेजा गया था उसी दल का मैं एक सदस्य हूँ तथा जो चार- पाँच जीवित हैं उनमें सर्वाधिक आयु का हूँ। परन्तु इस दीर्घ जीवन की अपेक्षा मेरे सेनापति तात्या टोपे को जब फासी हुई तभी···'

'जब तात्या टोपे को फाँसी हुई तब क्या आप वहीं थे ?'

'नहीं, नहीं था। यही तो शल्य मेरे हृदय में अभी तक पीड़ा पहुँचाता है। काले पानी भेजने की अपेक्षा यदि मुझे मेरे सेनापति के साथ ही फाँसी हो जाती तो मुझे अधिक आनंद होता। यही बात मैं कहने लगा था। उस समय अंग्रेज हमारे शत्रु थे। फिर भी वे वीर हैं और वीरता का आदर करते हैं। देखो न, तात्या टोपे की शूरवीरता को देखकर अंग्रेज उसकी प्रशंसा के उद्‌गार निकालते थे। मृत्यु-दण्ड के समय फाँसी पर चढ़ते हुए तात्या टोपे ने कहा था, 'मैं महाराष्ट्र के राजा श्रीमन्त नाना साहेब पेशवा का सेनापति हूँ। मैं अंग्रेजों की प्रजा नहीं हूँ। मैं अपने राजा की आज्ञा से अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए लड़ा हूँ, इसलिए मैं विद्रोही होने का अपराधी हो ही नहीं सकता।' तात्या टोपे के इस वीरोचित कथन का अंग्रेजों के मन पर इतना आतंक बैठ गया, उनके मन में इतना आदर-भाव उमड़ा कि तात्या टोपे को फाँसी पर चढ़ते देखने के लिए सैंकड़ों अंग्रेज स्त्री-पुरुष इकट्ठे हो गये और उसके मरने पर उसके शव को घेरकर खड़े हो गये। उस वीर पुरुष की स्मृतिचिह्न के रूप में अनेक अंग्रेज और फ्रेंच स्त्री-पुरुष, उसके बालों की लटें काटकर ले गये। फ्रांस के पत्रों में उनकी मृत्यु पर दुःखपूर्ण लेख प्रकाशित हुए। पर उसके हम

सैनिकों को स्वतंत्रता-युद्ध में मरने का सौभाग्य भी प्राप्त नहीं हुआ उनका अंतिम दर्शन भी नहीं हुआ', यह कहकर इस वृद्ध वीर ने एक गहरा साँस लिया।

'आप क्या शुरू से ही तात्या टोपे की सेना में थे? उनकी मृत्यु से कितने दिन पहले आप घायल हो गये थे? अंग्रेजों ने आपको कैसे गिरफ्तार किया?'

'यह एक लम्बी कथा है। संक्षेप में ही कहता हूँ। मेरी पेशवा की किसी भी मण्डली से पूर्व का कोई परिचय नहीं था। मैं हूँ महाराष्ट्रीय ब्राह्मण। बुन्देलों की सेवा में उत्तर हिन्दुस्तान में गया। बाद में मैं अपने पिता के साथ आरा नगर में स्थायी रूप से बस गया। सत्तावन के विद्रोह से एक-दो वर्ष पूर्व श्रीमन्त नाना साहेब के दूतों ने हमारे गाँव में आकर बताया कि शीघ्र ही एक भारी विद्रोह होने वाला है और महाराष्ट्र के तरुणों में पुनः हिन्दू-पदपादशाही की स्थापना के लिए जागृति पैदा हो गई है। मराठों का राजा स्वराज्य के लिए पुनः शस्त्रास्त्र उठाने वाला है। इस कल्पना से ही मेरा तरुण रक्त खौलने लगा। कुछ दिनों बाद समाचार मिला कि कानपुर में विद्रोह हो गया है और श्रीमन्त नाना साहेब पेशवा ने कानपुर पर अधिकार कर लिया है और खुले युद्ध का आह्वान किया है। इसके बाद और भी समाचार मिलते रहे। दिल्ली, लखनऊ, जगदीशपुर आदि अनेक स्थानों पर राष्ट्रीय युद्ध की अग्नि भड़क चुकी थी और राजा-महाराजा, सरदार, जमींदार, सैनिक, नागरिक, सारे हिन्दुस्तान में विद्रोह की ज्वाला धधक उठी। मेरे नगर में भी एक विद्रोही सेना का गठन हो गया और मैं भी इस तरुण सैनिक-मण्डली में शामिल हो गया।'

'वहाँ स्थित अंग्रेजी सेना ने आपको तत्काल गिरफ्तार नहीं किया?'

'अंग्रेजी सेना तालुकों में थी ही कहाँ? भारतीय सैनिक ही थे, और उन्होंने ही विद्रोह कर दिया था। वहाँ पर एक ही अंग्रेज था जो कलक्टर था। यही सर्वेसर्वा और कर्ताधर्ता था। इसका नाम ए० ओ० ह्यूम था। जब सारा आरा नगर ही एकदम विद्रोह कर उठा तब ह्यूम साहब ने अपने प्राण बचाने के लिए भागने का निश्चय किया। पर भागा कैसे

जाय ? इससे पूर्व कि उसके ठिकाने पर हमला होता उसे एक युक्ति सूझी। उसने अपने हाथ-पैर-मुख पर काला रंग पोत लिया। एक हिन्दू स्त्री जैसे कपड़े पहन लम्बा घूँघट मारकर रातोंरात आरा से भाग निकला। उस समय जहाँ भी अंग्रेज दीखता था उसे विद्रोही तथा विद्रोहियों को अंग्रेज देखते ही मार डालते थे। इस भयंकर स्थिति में भी दो-तीन विश्वासी भारतीय सैनिकों की सहायता से वह अनेक बार मार दिये जाने से बच गया और अन्त में सकुशल अंग्रेजों की एक छावनी में पहुँच गया।

'ए० ओ० ह्यूम साहेब ? क्या यह वही ह्यूम साहेब थे जिन्होंने राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की थी ?'

'हाँ, यही थे जिन्होंने बाद में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की। इतना ही नहीं, इस विद्रोह की अवधि में उसके जीवन में घटित इस भयंकर प्रसंग के कारण ही उसकी यह निश्चित धारणा बन गई थी कि भारतीय जनता में पुनः इस प्रकार का असंतोष न फैले तभी अंग्रेजी राज्य दृढ़ रह सकता है। बाद में भी अन्दमान में मुझे उसके कुछ भाषण पढ़ने को मिले। इनमें भी उसने इसी प्रकार की बात कही थी। उसका मत था 'सन सत्तावन के विद्रोह में अंग्रेजी राज्य पर आये भयंकर संकट का जिन अंग्रेजी अधिकारियों ने सामना किया है, वे यह स्वीकार करेंगे कि भारत में उठे किसी भी असन्तोष को तत्काल ही समाप्त कर उसे बढ़ने नहीं देना चाहिये। जिन कारणों से इस असन्तोष का ज्वालामुखी धधकता है उसकी ऊष्मा पर नियन्त्रण करने का उपाय पहले ही कर लिया जाना चाहिए। भाप को बिना किसी खतरे के निकल जाने के लिए यदि कोई निरापद छिद्र—सेफ्टी वाल्व—की व्यवस्था नहीं करेंगे, तो यह इंजन को फोड़कर बाहर निकलेगी। इस निरापद छिद्र के लिए ही मैं राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना कर रहा हूँ।' ह्यूम साहब ने जिस बुद्धिमत्ता की बातें अपने भाषण में कही हैं उन्हें यह बुद्धिमत्ता आरा के इस विद्रोह की अवधि में ही मिली।'

'आप फिर आरा से कहाँ गये ?'

'ये सब बातें छोड़ो। जो हो गया सो हो गया। अब तो नई व्यवस्था

है, नया राज्य है। अब इसी को निभाकर चलना है।'

'वह तो ठीक है, पर अगली बातें बतायें। आज आप पकड़ में आ गये हैं!'

'आरा से हम सीधा कानपुर गये और तात्या टोपे की सेना में शामिल हो गये। कानपुर में बीस हजार अंग्रेज सैनिक लेकर जनरल विंद्याम आया। भयंकर युद्ध हुआ और तात्या टोपे ने अपनी रणदक्षता से जनरल विंद्याम को परास्त कर दिया। इस युद्ध में मैं भी लड़ा था और तभी घुटने में गोली लगने से मैं घायल होकर गिर पड़ा। अंग्रेजों ने मुझे पकड़ लिया। पर मुझे उस समय एक युक्ति सूझ गई और मैंने कहा कि मैं तो अंग्रेजी सेना का हिन्दुस्तानी सिपाही हूं और इस सिलसिले में अनेक उल्टी-सीधी बातें भी कहीं। मुझे इसमें सफलता मिली। जनरल विंद्याम तात्या टोपे से पराजित होने के बाद जब अव्यवस्थित रूप से पीछे हट रहा था तब उसने अपने सैकड़ों घायल सिपाहियों को जल्दी-जल्दी में सुरक्षित अंग्रेजी छावनी की ओर भेज दिया। इनमें मैं भी था। वहाँ अच्छा होने के बाद मैं भागने की योजना बना रहा था कि एक सिपाही ने मेरी चुगली कर दी कि मैं विद्रोही सेना का सिपाही हूँ। कई सैनिकों ने इस चुगलखोर सिपाही को भी विद्रोही सैनिक कहकर चुगली की।...

'उस समय ऐसी उल्टी-सुल्टी चुगलियाँ होती ही रहती थीं। उस समय जैसी गड़बड़ थी और अंग्रेजों के जीवन जिस प्रकार संकट में थे उसमें पूरी जाँच-पड़ताल करने जैसी कोई बात भी नहीं थी। सामूहिक दण्ड, फाँसी, आजन्म काला पानी की सजाओं पर सजायें दी जा रही थीं। विद्रोह शीघ्र समाप्त हो इसके लिए सामूहिक क्षमादान लाटरी डालकर हो रहा था। इस गड़बड़ में मैं जिस बंदी सैनिक टुकड़ी में था उस सारी टुकड़ी को काले पानी की सजा होने की लाटरी निकली! और, हिन्दुस्तान में विद्रोहियों की वंश-वृद्धि न हो इस उद्देश्य से सैकड़ों विद्रोहियों की बंदी की गई टोलियाँ जहाजों में भरकर, स्वयं अंग्रेजों द्वारा मानव के रहने के लिए अयोग्य घोषित इस द्वीप में लाकर छोड़ दी गईं। इनमें एक टोली में मैं भी था। तब मेरी आयु पच्चीस वर्ष से भी कम थी। सन सत्तावन के हम

सैकड़ों विद्रोही बंदियों ने ही अपने असह्य कष्टों का, घोर यातनाओं का, अपने रक्त का, नष्ट आशाओं का, जर्जरित अस्थिमांस का और अपने मृत दग्ध शरीर की राख का उर्वरक देकर देकर इस द्वीप को आज मनुष्यों के रहने योग्य बनाया है। यही एक अंदमान द्वीप है जो हम हिन्दुओं की विकसित नई बस्ती बन गई है। हमारे जन्म की और हमें हुई आजन्म कारावास की यही सार्थकता है।'

'अब आप एक बार भारत जाने की अनुमति क्यों नहीं लेते ? आप अब स्वतंत्र वर्ग का 'दाखला' (प्रमाण-पत्र) रखते हैं। ऐसे 'फ्री पास' वालों को स्वदेश जाने की अनुमति दे देते हैं न ! अनेक बातों में अब भारत में पर्याप्त सुधार हो गया है। आप भी वहाँ जाकर देखिये न !'

'अब वहाँ देखने को क्या है ? जैसे मैं यह कह रहा हूँ कि काले पानी की बस्ती बढ़ती जा रही है, ऐसे ही तुम कह रहे हो कि भारत में सुधार होता जा रहा है। एक तो हम सन सत्तावन के विद्रोही-रूप में 'दाखले वाले' लोगों को कोई भारत भेजता भी नहीं है। फिर भी यह नियम मुझ पर लागू नही होता है। यदि मैं भारत गया भी तो जो भारत मैं देखना चाहता हूँ वह भारत अब है कहाँ ? अब तो जैसा आजन्म कारावास का यह अन्दमान है उसी प्रकार का वह भारत है।' यह कहते हुए हृदय में चुभा हुआ शल्य मानो और अन्दर धंस गया हो इस प्रकार उस वृद्ध वीर ने एक बार पुनः दीर्घ निःश्वास छोड़ा।

मैंने इनके हृदय को व्यर्थ में ही पीड़ा पहुँचाई है इसलिए कुछ समाधान कारी बात कहनी चाहिये इस उद्देश्य से कण्टक बोला :

'चाहे कुछ भी हो, भगवान न्याय कारी है। अन्त में विजय न्याय की ही होगी ···।'

'छी-छी ! न्याय-अन्याय का जय-पराजय से कोई सम्बन्ध नहीं है, इस बात को हम जितना शीघ्र सीख लें उतना ही अच्छा हो। न्याय-अन्याय का प्रकरण ही अलग है और जय-पराजय की बात बिल्कुल भिन्न है। जय-पराजय का सम्बन्ध यदि किसी बात से है तो वह पराक्रम से है, न्याय से नहीं। इस बात को ध्यान में रखो, यदि कोई शब्द स्मरण रखना है तो वह

है 'पराक्रम'। जय-प्राप्ति का यही मंत्र है। इसे ही सीखो। 'याद करो।'

'अप्पा, अप्पा, अप्पाजी !' अप्पाजी का हृदय यह बात कहते हुए जिस उच्च धरातल व वातावरण में पहुँच गया था उससे उन्हें एकदम नीचे गिराते हुए उनकी छोटी-सी उषा हँसते हुए बोली, 'अच्छा, यह देखो, तुम भी कण्टक बाबू को नये शब्द सिखा रहे हो। मैंने कहा था न कि इनको कुछ नहीं आता यह बात ठीक है, एकदम ठीक।' इस लड़की को इस सारी बातचीत में केवल यही बात समझ में आई।

अप्पा भी हँसे—'दुष्ट लड़की !' यह कहकर अप्पा ने प्यार से उसका गाल थपक दिया।

'आ गई ! माँ आ गई ! माँ आ गई!' उषा ने आगे बढ़कर फिर दुबारा यही कहा, और कौन पहले जाकर माँ को चिपटता है इस दौड़ में दोनों उधर दौड़े। माँ के दरवाजे पर आते ही मोहन माँ से लिपट गया, पीछे से उषा ने भी उसके पैर पकड़ लिये। माँ उन दोनों का बार-बार चुम्बन लेते हुए, उनके सिर पर हाथ फेरते हुए खाट के पास आ गई। तभी उसे वहाँ बैठा हुआ कण्टक दीखा।

'अम्मारी ! तुम तो यहाँ मेरा रास्ता देखते हुए बैठे हो। तुम्हारी कभी की मित्र लड़की मुझे मिली थी। मैंने उसके साथ खूब बातें की।' यह बात कण्टक से कहने के बाद वह बड़ी आत्मीयता से अपने ससुर को सम्बोधित करते हुए बोली :

'अप्पा जी ! वास्तव में लड़की लाखों में एक है। वह कितनी उन्मुक्त पर कितनी विनयशील ! बड़ी तेज, पर बड़ी प्रेमिल है। वह कितनी सुन्दर है यह कहते नहीं बनता। उसमें यदि कोई त्रुटि-पूर्ण बात है तो वह उसका नाम है। पता नहीं किस भारतीय ने उसका नाम कण्टकी रख दिया है। ऐसी फूल जैसी कोमल लड़की का नाम गुलाब या मालती आदि होना चाहिये था। कंटक बाबू उसके लिए इतने छटपटा रहे हैं यह व्यर्थ में ही नहीं है। कण्टक बाबू, तुम्हारी मित्र लड़की है भी ऐसी कि तुमको नचा रही है...' उसने अपनी आँखें मटकाकर द्वयर्थक बात कही।

पाँच वर्ष बाद, अनजाने में ही सही इस महिला द्वारा लिया गया

'मालती' नाम उसके कानों में पड़ा। काले पानी के गत पाँच वर्ष के जीवन में यह नाम निरंतर उसके हृदय-पटल पर अंकित था। केवल नाम ही नहीं, आज वह व्यक्ति, उसकी यह प्रिय मूर्ति एकदम सामने इतनी दूर ही खड़ी है कि उसे आवाज़ देकर भी बुलाया जा सकता है, उस बात से वह नाम भी प्राणवान हो उठा। कण्टक उसकी कल्पना से ही इतना भावविभोर हो गया कि उसके विषय में कुछ और पूछने के लिए उसको शब्द ही नहीं मिले। उसके स्वयं काला पानी आने पर और मालती को दण्ड मिलने के बाद उसे कहाँ भेजा गया इस बारे में उसे कुछ भी मालूम नहीं हो सका था। आज वही मालती पुनः उसको प्राप्त हो गई है उसे ऐसा लगा। उसने उस महिला से उसकी खोज करने के लिए कई बार कहा था। वह काले-पानी भेजी गई अपराधी स्त्रियों के जेल में एक स्त्री-जमादार के रूप में काम करती थी। आज उसकी स्त्रियों के कारागार में कण्टक द्वारा बताई गई कण्टकी नाम की युवती से भेंट हो गई और तभी आकर उसने कण्टक को इस बात की सूचना इस प्रकार दी—'तेरी मित्र लड़की कितनी सुन्दर है! तेरे तन-बदन में आग लगाने वाली है तेरी वह मित्र!' अपनी आँखों को मटकाकर बोलते हुए उसने वह कण्टक की प्रियतमा है इस प्रकार का भाव व्यक्त किया। इससे कण्टक गर्व से फूल गया और उसका मन यह कहने के लिए आतुर हो उठा कि वह वस्तुतः मेरी सखी है, और उसपर आसकत मैं उसका प्रियतम हूँ! पर···'

इस सर्वांग सुन्दरी लड़की में यदि कोई दोष है तो वह उसका असंगत नाम कण्टकी ही है—इस महिला द्वारा कही गई इस बात का प्रति-वाद करके उसकी यह कहने की भी इच्छा हुई कि 'नहीं इसका यह नाम असंगत नहीं है। उसका वास्तविक नाम कण्टकी न होकर मालती है।'

उसके मन में उठने वाली इन भावनाओं को लिखने में कुछ अधिक समय लगा है पर यह सब दस-पाँच क्षणों में ही हो गया। इसी बीच उसके मन में यह विवेक-भाव भी जगा कि अभी इस सबको कहना ठीक नहीं। वह मेरी बहिन तथा उसका नाम कण्टकी ही है। उसे दिये दण्ड के सरकारी कागज़-पत्रों में यही लिखा गया है कि उसने अपनी बहिन को भगाकर ले

जाने वाले एक दुष्ट का वध किया। यही मेरा अपराध है। इस कारण ही हम दोनों को आजन्म कारावास का दण्ड काला पानी मिला। मैं अब तक यही कहता आया हूँ, आगे भी यही कहना चाहिये। इसकी माँ के साथ-साथ मेरी जान-पहिचान मथुरा में हुई थी, मुकदमे के बारे में या रफीउद्दीन के बारे में कोई भी परस्पर सम्बन्ध है यह बताना अभी ठीक नहीं।

विचारधारा के प्रवाह में वह बिना कुछ बोले केवल मेरी ओर देख रहा है और किंकर्तव्य-विमूढ़-सा है यह समझकर वह महिला पुनः हँसते हुए बोली :

'बड़ी लज्जा आ रही है? क्या अप्पाजी के सामने इस बारे में बात करते हुए संकोच होता है?'

'हाँ, ऐसा ही लगता है,' अप्पा जी ने भी आनंद लिया। अच्छा है तुम अन्दर जाओ, और खुले रूप में जो भी जानकारी चाहिये तथा अपनी मित्र को क्या सन्देश देना है, यह सब अनुसूया से कह दो। तुम्हारी प्रेम-भावना की बात हमारे जैसे रूखे, नीरस वृद्धों की अपेक्षा हमारी इस अनुसूया के समान मृदु, प्रेमिल, भावुक स्त्री-हृदय ही अधिक समझ सकता है। अच्छा अनुसूया पहले चाय बन रही हो न?'

इस सहानुभूतिशील वृद्ध ने अपनी पुत्र-वधू को अन्दर जाने के लिए चाय बनाने का हेतु भी सुझा दिया। अनुसूया ने भी इस बात को ताड़ लिया और बोली, 'आइये न कण्टक बाबू, अन्दर आइये, चाय बनाते हुए ही हम बात करते हैं। देखो, मैं तुम्हारी इस अपहृत सखी के बारे में कितनी मीठी-मीठी बातें बताती हूँ, आइये।'

यह बात कहते-कहते उसने छोटी उषा की माथे की कुंकुम को अधिक गोल किया, मोहन के कमीज़ का कालर सीधा किया और दोनों बच्चों के हाथ अपने दोनों हाथों में पकड़कर अन्दर चली। उसने घर के अन्दर के दरवाज़े में घुसते हुए 'आइये न! अन्दर आइये' पुनः कहा। इस निमंत्रण के साथ ही पीछे चलने वाले मोहन ने अपने छोटे हाथों में कण्टक बाबू की अँगुली पकड़कर जब जोर से खींचना शुरू किया तब कण्टक उठा और

मोहन के खींचने से ही वह आगे बढ रहा है यह बताने तथा अन्दर जाने के लिए कुछ कारण है बताने के लिए बोला, 'अरे बेटे, मैं आ रहा हूँ, आ रहा हूँ, तूने तो मेरी अँगुली ही तोड़ दी।' और हँसते हुए मोहन के साथ अन्दर गया। अप्पा जी भी यह देखकर मुस्करा उठे और पास पड़े 'साप्ताहिक टाइम्स' पत्र को लेकर पुनः उसे पढ़ने में मग्न हो गये।

कण्टक के अन्दर जाने पर अनुसूयाबाई ने उसे जो-जो भी जानकारी चाहिए थी वह बड़े रसभरे शब्दों में दी। अदृश्य ही नहीं अपितु एक प्रकार से पूर्णतः विनष्ट प्रियजन का इस प्रकार से पता लगने पर प्रेमी हृदय के लिए क्या पूछा जाय क्या न पूछा जाय यह बड़ा कठिन हो जाता है। ऐसे समय में बीच-बीच में उकताने वाली जिज्ञासा को भी उपेक्षित न करते हुए समाधानपूर्वक 'प्रेमी के लिए उसका क्या कर्तव्य है इसे जानने की भरपूर सहृदयता अनुसूया में थी। सर्वप्रथम कण्टक ने एक महीना पहले कहा था, 'आप जिस स्त्री-कारागार में जमादार हैं, उसमें उसकी एक बहिन भी आई होगी। उसे भी मेरे साथ आजन्म कारावास का दण्ड मिला था। पर उसे भारत के ही अनेक कारागारों में स्थानान्तरित करने के कारण वह कहाँ है इसकी मुझे कोई जानकारी नहीं है। वह अब भी भारत के ही जेलों में है या काला पानी भेज दी गई है इस बारे में भी कोई खोज-खबर नहीं मिली। इसलिए आप इसको मालूम करने का यत्न करें।' कण्टक द्वारा निवेदन करने पर अनुसूया इस बात की खोज में थी। उस समय कण्टक द्वारा बताई गई कण्टकी नाम की कोई भी लड़की कारागार में नहीं थी। पहले आई थी इस बारे में भी कुछ जानकारी नहीं मिली। पर इस महीने जो 'चलान' आया उसमें कण्टकी नाम की एक तरुणी कण्टक द्वारा बताई गई आयु, रूप के समान मिलती-जुलती एक लड़की दस-बारह दिन पूर्व ही अन्दमान आई है, उसकी सूचना अनुसूयाबाई को मिली थी। उसने छह-सात दिन पहले कण्टक को यह बात बता भी दी थी और कहा था कि उससे प्रत्यक्ष मिलकर उसके बारे में जितनी भी जानकारी संभव होगी प्राप्त कर उसे बतायेगी। और आज अवसर मिलने पर उसने 'कण्टकी' से कारागार में

मिलकर जल्दी-जल्दी में जितना संभव था सब जानकारी प्राप्त की थी। पूर्व-निश्चित कार्यक्रम के अनुसार उसी के लौटने की कंटक बड़ी व्याकुलता से प्रतीक्षा कर रहा था। उसेआशा थी कि आज कुछ निश्चित रूप से मालूम पड़ सकेगा। इसीलिए वह आज बड़े अधिकारियों से छिपकर और चौकीदार की मुट्ठी गरम कर यहाँ आया था।

कैदियों में बाबू होने के बावजूद कण्टक कैदी था। 'दाखलेवाले' स्वतंत्र गाँव में समय-असमय में आने-जाने की उसे अनुमति नहीं थी। इसीलिए सायंकाल प्रत्येक चौकी पर होने वाले नाकेबंदी से पूर्व ही वह यहाँ चुपचाप आया था और अब उसे वापिस जाने की जल्दी थी।

इस जल्दबाज़ी के कारण ही उसने घर में घुसते ही इस अवधि का पूरा लाभ उठाने के लिए अनुसूया से ढेर-सारे प्रश्न पूछ लिये। इनमें कोई क्रम नहीं था। कई प्रश्न बार-बार किये गये। कुछ अस्पष्ट आधे-अधूरे थे कि उनका सुसंगत अर्थ क्या है, इसको भी सोचने का तथा उसका क्या संदेश है इसकी रूपरेखा निश्चित करने का अवसर भी नहीं मिला। जैसे गाय-बैल चोरी से किसी खेत में घुसकर अन्धाधुंध जो कुछ भी मिलता है खाना शुरू कर देते हैं उसी प्रकार इस थोड़ी-सी अवधि में ही क्या सुनूँ और क्या पूछूँ यह गड़बड़ चलती रही और अन्त में साढ़े पाँच की घण्टी बज उठी। लौटने की विलम्ब से यह अंतिम सूचना थी, इसलिए चलते-चलते उसने अनुसूया को यह संदेश दिया :

'मेरी बहिन को कहना, घबराये नहीं, मैं एक सप्ताह में ही अगला कार्यक्रम क्या है इसकी सूचना दूंगा, तब तक धैर्य रखे और इस खूनी कारागार की यातनाओं के बावजूद अपने स्वास्थ्य को ठीक रखे।'

कण्टकी के लिए उक्त संदेश अनुसूया को देकर अप्पा जी को जल्दी में नमस्कार कर कण्टक बड़ी तेज़ी से घर के बाहर निकला और वृक्षों के झुरमुट में होता हुआ उस टेकड़ी के घुमावदार मार्ग पर चल पड़ा।

१४. मालती : अन्दमान की जेल में

अप्पा जी को नमस्कार कर कण्टक उस टेकड़ी के वृक्षों और झाड़ियों में लुकता-छिपता 'दाखलेवाली' बस्ती की जो चौकी थी वहाँ तक सुरक्षित पहुँच गया। चौकीवाला उसके अधीन था इसलिए उसने कुछ पूछताछ किये बिना ही कण्टक को आगे बढ़ जाने का संकेत दिया। इस चौकी को सायंकाल बंद होने से पूर्व ही पार कर कण्टक आगे बढ़ा और कैदियों के लिए निर्धारित मार्ग पर पहुँच गया।

काले पानी के कैदियों को अन्दमान लाने के बाद उन्हें सर्वप्रथम कक्ष-कारागृह में बंद किया जाता है। इसके बाद उनका वर्गीकरण कर प्रथम बार ही दण्ड प्राप्त और कम गंभीर अपराध करने वालों को, यदि उनका व्यवहार ठीक रहता है तो प्रायः छः महीनों की अवधि में ही इन बंद कमरों से बाहर निकलने दिया जाता है। परन्तु जो खुर्राट, अनेक बार अपराध करने वाले कई बार दण्ड-प्राप्त कैदी होते हैं उन्हें उनके व्यवहार के अनुसार एक से पाँच वर्ष बाद कारागार के बाहर भेजा जाता है। कण्टक जब काला पानी आया, तब कारागार के बाहर छोड़े गये कैदियों के रहने के लिए सरकारी चाल में ही उसे रखा गया था। बढ़ईगिरी, जंगल काटने, मकान बनाने, चाय व रबड़ बागान, ईंटें बनाने आदि के कारखाने अन्दमान के अलग-अलग द्वीपों में लगाये गये थे। इन कारखानों में काम के लिए जिन कैदियों को भेजा जाता था, उन्हें इन्ह चालों में रखा जाता था। इनसे काफी कठोर काम लिया जाता था, परन्तु, इच्छापूर्व क खाने-पीने की, विशेष मित्रों से मिलने की, अनुमति लेकर अन्य टापुओं में जाने-आने की, बातचीत करने की, पूरी स्वतंत्रता थी। इनमें भी विशेष कैदियों को बंदी जमादार आदि बनाकर उन्हें प्रतिमास जेब-खर्च के रूप में कुछ रुपये भी दिये जाते थे। इस प्रकार यदि कुल मिलाकर दस-एक वर्ष तक व्यवहार ठीक रहा तो उनमें भी जो अच्छे समझे जाते हैं उन्हें दाखला (प्रमाण-पत्र) देकर स्वतंत्र रूप से घरबार बनाने, खेती-बाड़ी आदि करने

की छूट मिल जाती है। ऐसे ही बंदियों को 'दाखले वाले' स्वतंत्र कहा है। इन दाखले वालों के छोटे-छोटे गाँव, कैदियों के टापुओं के निकट ही निर्धारित बस्तियों में बसाये गये थे। इन 'दाखले वाले' स्वतंत्र गाँवों में बिना दाखले वाले बंदियों को विशेष अनुमति लिये बिना जाने नहीं दिया जाता था। इन दाखले वालों में दाखले वाली स्त्री-कैदियों से विवाहकरने के बाद जिनके सन्तानें होती थीं वे सन्तानें जन्म से ही स्वतंत्र नागरिक समझी जाती थीं। ये परिवार अपनी खेती, पशु-पालन या कोई धन्धा कर अपनी जीविका चलाते थे। इनमें अनेक अपने कर्तृत्व व प्रयास से पर्याप्त सम्पन्न बन गये थे।

काला पानी गई हुई कैदी स्त्रियों के लिए भी यही व्यवस्था थी। अन्तर इतना ही था कि उनकी उन्नति शीघ्र होती थी। इनको काम भी पुरुषों की तरह कठोर नहीं दिया जाता था। इनको भी प्रारंभ में पाँच वर्ष तक स्त्रियों के कक्ष-कारागार में रखा जाता था। इसके बाद एक 'विहार स्थल' पर उन्हें छुट्टी के समय घूमने-फिरने की खुली छूट थी। इस 'विहार-स्थल' पर जिन बंदी कैदियों को विवाह करने की अनुमति दे दी गई थी उन्हें भी आने दिया जाता था। सख्त पहरे में ये स्त्री-पुरुष इस छुट्टी की अवधि में एक-दूसरे से जान-पहिचान व प्रेम-परिचय बढ़ाते थे। यह 'विहार स्थल' एक प्रकार से लन्दन का 'हाइड पार्क' या पुणे का वंड गार्डन जैसा था—काले पानी पर पापियों का प्रेमोद्यान!' यहाँ होने वाले प्रत्यक्ष परिचय के बाद यदि स्त्री-पुरुष दोनों ने ही परस्पर विवाह करने का निश्चय कर लिया है तो वह उचित है या अनुचित इसकी जाँच कर सरकार जिन्हें अनुमति दे देती है उनका पंजीकरण-पद्धति से विवाह कर दिया जाता था और 'दाखला' मिलने पर इन दाखले वाली दम्पती को स्वतंत्र गाँवों में बसने के लिए भेज दिया जाता था। विवाह के लिए जाति-पाँति का कोई बंधन नहीं होता था। कुछ विशेष कारणों पर तलाक को भी अनुमति थी।

यदि कोई पुनः अपराध करता था तो उसका दाखला रद्द कर उस व्यक्ति को पुनः जेल में डाल दिया जाता था। यदि अपराध गंभीर होता तो पूरी

जाँच-पड़ताल कर फाँसी की सजा भी दी जा सकती थी। अन्दमान के क़ैदियों के बारे में हत्या का प्रयत्न भी फाँसी देने योग्य समझा जाता था। उद्दण्ड, अघोरी, पशु-प्रवृद्धि के सैकड़ों आजन्म कारावास के बंदियों को कड़े नियंत्रण में रखे बिना इस द्वीप पर जीवन की सुरक्षा, शांति और सुव्यवस्था रखना पूर्णतः असंभव था।

अपराधःविज्ञान के तीन उद्देश्य बताये गये हैं—प्रतिशोध, प्रायश्चित और प्रगति। अपराधी से बदला लेना यह मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। दाँत के बदले दाँत और आँख के बदले आँख यह यहूदियों का धर्म-दण्ड था। जिस अंग से अपराध किया गया है उस अंग का उच्छेद यह बात कुछ मामलों में न केवल मनुस्मृति में अपितु ग्रीस आदि विश्व के अन्य प्राचीन देशों में भी पठानों की तरह एकदम गँवार जातियों के कानून थे कि जिसने हत्या की है यदि वह न पकड़ा जा सके तो उसके वंश के किसी व्यक्ति को मार दिये जाने की परम्परारूप प्रतिशोध के उग्र और सौम्य प्रकार थे। इसके बाद विवेक-बुद्धि से यह निर्णय किया गया कि प्रशासन को भी अपराधियों के प्रति प्रतिशोध या बदला लेने का उद्देश्य सामने न रखते हुए जिस प्रकार अपराध के बदले दिये गये दण्ड से उसके हृदय पर आतंक होता है उतना ही दण्ड या प्रतिबंधक प्रायश्चित्त लागू किया जाय। चोरों के हाथ को काट डालने के बदले उस हाथ को अन्य अच्छे कामों के लिए उपयोगी रखते हुए, चोरी करने के बारे में उसमें भय की भावना निर्मित हो। दण्ड के भय से ही नहीं उस चोरी के उदाहरण को देखकर औरों को भी भय हो इतना ही दण्ड देना पर्याप्त है। यह दूसरा चरण है। प्रतिशोध उद्देश्य न होकर प्रायश्चित्त की यह दूसरी व्यवस्था अधिक उचित प्रतीत होती है। यदि इससे भी अधिक और आगे विचार किया जाय तो अपराधी का मन केवल दण्ड-भय से ही नहीं, अपितु मूलरूप से स्वेच्छा से ही वह अपराध-कर्म से ही परावृत्त हो, जिस परिस्थिति से सुशील और अच्छे हृदय वालों के लिये भी अपराध करना एक विवशता हो जाती है उस परिस्थिति को बदला जाय, शिक्षा, सत्संग, मनोविकास आदि पर अधिक बल देकर उनके मनों को ही समाजशील

और सुसंस्कृत बनाया जाय, उनमें जो मानुषी भाव है उसे बढ़ाकर उनके स्वभाव को ही सुधारा जाय। उनका मनुष्यत्व ही विकसित हो, इसप्रकार अपराधियों के प्रति व्यवहार का तीसरा लक्ष्य होना चाहिए।

कुल मिलाकर देखा जाय तो अन्दमान के अपराधियों से व्यवहार के बारे में जो नियम-विधान गत तीस-चालीस वर्ष पूर्व निश्चिय किये गये थे उनमें पूर्णता न होने पर भी, इन तीनों शास्त्रीय दृष्टिकोणों की कसौटी पर अशास्त्रीय होने पर भी उनमें पर्याप्त रूप से इन तीनों का सकारण सम्मिश्रण अवश्य था। यह बात काले पानी के कैदियों का वर्गीकरण किये जाने, उन्नति-क्रम, सुधारणीय-असुधारणीय इस कसौटी पर प्रत्येक की पात्रता या अपात्रता के अनुसार कठोर-नरम व्यवहारादि से स्पष्ट हो जाती है।

जिन कैदियों को दस-बारह वर्ष तक कड़े अनुसासन में रहने, कठोर कामों और किये गये अपराध का प्रायश्चित्त के रूप में दण्ड भोगने के बाद शील स्वभाव सुधर गया मालूम होता था उनको 'दाखला' देकर अन्दमान-द्वीपों में ही स्वतंत्र रूप से रहने की अनुमति दी जाती थी और उनकी अलग बस्तियाँ बसाई जाती थीं। इन सुधरे लोगों के गावों में उन कैदियों को जिन्होंने दस-बारह वर्ष तक अच्छे व्यवहार की शर्त को पूरा नहीं किया है खुले रूप में जाने-आने की अनुमति नहीं थी। इसका उद्देश्य यही था कि इस प्रकार के पृथक्करण से सुधरे हुए इन लोगों को पूर्णतः न सुधरे कैदियों की चण्ड, उद्धत प्रकृति से, उनके उपद्रवों से सुरक्षित रखा जाय और इनकी कुसंगति से इन दाखले वालों का या उनकी वहीं उत्पन्न स्वतंत्र पीढ़ी पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

कण्टक को अभी काला पानी आये पाँच वर्ष ही हुए थे, इसलिए उसकी गणना, कैदी-वर्ग में ही होती थी। उससे कक्ष-कारागार में कुछ दिनों तक कठोर श्रम का कार्य कराया गया था और उसके बाद उसे लिखने का काम दिया गया। वहाँ पर कारागार का अच्छा व्यवहार करने के कारण उसे छह महीने के बाद कारागार के बाहर लेखक के कार्य के लिए भेजा जाने लगा। उसने अंग्रेजी लिखने-पढ़ने का काम काफी बढ़ा दिया। उसका काम भी अच्छा था। इसलिए अधिकारी-वर्ग भी उसका आदर करने लगे थे।

अन्दमान में अत्यधिक कठिन और कष्टप्रद समझे जाने वाले जंगल काटने के काम की गिनती और निगरानी रखने के लिये उसे 'कैदी बाबू' के रूप में नियुक्त किया गया। उसके अधीन सौ बंदियों की टुकड़ी घने जंगलों को काटने के लिए भेजी जाती थी। इतना होने पर भी वह पाँच वर्ष की काले पानी की अवधि के कारण कैदी-वर्ग का ही समझा जाता था और इसी-लिए उसे 'दाखले वाले' की बस्ती में स्वच्छन्द रूप से आने-जाने की अनुमति नहीं थी। जंगल को काटने जाते-आते हुए संयोग से ही अप्पा जी के परिवार से उसका परिचय हो गया था और इस परिचय-सम्बन्ध में पर्याप्त पारिवारिक घनिष्ठता आ गई थी। इसीलिए वह आज उस बस्ती के चौकीदार को पटाकर, नित्य की तरह चोरी से मिलने आया था और मिलने के बाद सन्ध्याकाल में चौकी के बंद होने के समय से पूर्व ही अप्पा जी से विदा होकर टेकड़ी पर लुकते-छिपते कैदियों के लिए निर्धारित और जंगल तोड़ने के लिए जाने-आने के मार्ग पर आजाने पर उसके मन में एक निश्चितता आ गई थी।

निरापद मार्ग पर आ जाने के बाद उसके मन में अनुसूया ने मालती के बारे में जो जानकारी दी थी उसको लेकर विचार-चक्र चलने लगा। गत पाँच वर्षों का सारा इतिहास उसकी आँखों के सामने घूम गया। इनके साथ ही उस दिन अप्पा जी ने उसे सन सत्तावन के स्वतन्त्रता-युद्ध में अपने भाग लेने की जो बात बताई थी और इस जानकारी से इस कुटुम्ब के प्रति उसके मन में बो एक राष्ट्रीय आदर-भाव उत्पन्न हो गया था, यह बात भी उसके मन में रह-रहकर उठती थी। इस परिवार के साथ कण्टक का परि-चय कैसे हुआ, और वह कैसे बढ़ता चला गया, ये सब बातें भी उसके विचार-चक्र में गुम्फित होती जा रही थीं। इन सबसे भी महत्त्वपूर्ण बात जो उसके मन में उठी वह थी : 'आगे क्या किया जाय ?' भविष्य में होने वाले परिवर्तन की बात भूत में हुई घटनाओं की स्मृति को पीछे धकेल रही थी और पहले मेरा, मेरा समाधान करो इस प्रबलता से उसके मन को झकझोर रही थी।

यह विचार-चक्र उसके मन में किसी क्रम से नहीं घूम रहा था। बीच-

बीच में, कभी आगे, कभी पीछे, कभी इस विषय पर तो कभी उस पर, परस्पर गुँथे हुए-से विचार उठ रहे थे। दो-तीन मील लम्बे इस मार्ग पर जल्दी-जल्दी चलते हुए कण्टक इन विचारों की उलझन में एकदम उलझ गया था। यदि विचारों की इस उलझन से निकलकर विषय-क्रम से विचार किया जाय तो मालती के बारे में स्थिति को इस रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है—

कई महीने पूर्व अप्पा जी के परिवार से परिचय होने के बाद कण्टक को यह पता चला कि उनकी पुत्रवधू अनुसूयाबाई स्त्रियों के कारागार की एक 'दाखलेवाली' जमादार है। काला पानी आने के बाद वह इस बात की खोज-खबर में लगा हुआ था कि मालती अन्दमान की जेल में लाई गई है या नहीं, या आजन्म कारावास होने पर उसे भारत की किस जेल में रखा गया है। परन्तु स्त्री-कारागार पर सख्त पहरे के कारण तथा वहाँ कैदी पुरुषों के प्रवेश पर कठोर नियन्त्रण व किसी प्रकार का सम्बन्ध न हो इस बारे में कड़ी निगरानी के कारण भी कण्टक को कुछ मालूम नहीं पड़ा। अब तक उसे जो जानकारी मिली वह यही थी कि कण्टकी नाम की कोई स्त्री-कैदी इस जेल में भारत से नहीं आई है। पाँच-सात महीने पूर्व जब कण्टक ने अनुसूयाबाई से कण्टकी के बारे में जानकारी प्राप्त करने को कहा था तब तक उस स्त्री-कारागार में कण्टकी नाम की कोई महिला नहीं आई थी यह निश्चित रूप से मालूम पड़ गया था। इसलिये मालती को आजन्म कारावास का दण्ड मिलने के बाद उसका क्या हुआ यह चिन्ता ही कण्टक को निरन्तर सता रही थी। उसकी याद आते ही उसे खाना-पीना अच्छा नहीं लगता था। वह पहले उससे प्रत्यक्ष मिलती थी, उस समय उसके स्पर्श से वह जितना रोमांचित होता था उससे भी अधिक रोमांचित अब वह उसकी स्मृति-मात्र से ही होने लगता है। अन्न मिलने पर अच्छा लगता है, पर जब वह नहीं मिलता तब उसकी स्मृति ही से उसका स्वाद शतगुना बढ़ जाता है। अब उसके मन में मालती के स्पर्श की जब स्मृति आती है तब वह पूर्व की तरह केवल स्नेह-भाव से अनुप्राणित न होकर उपभोग की भावना उद्दीप्त हो जाती है। 'वह जब प्रत्यक्ष मेरे पास थी तब मेरे मन

में उसका आलिंगन करने की बात क्यों नहीं उठी ? यही बात उसे रह-रह-कर बुरी लग रही थी। अन्तिम रात को उसका अपहरण करने वाले मुस्लिम गुण्डे को मार देने के बाद इस भयंकर हत्या के परिणाम से बचने के लिये जब किशन मालती के साथ घने अन्धकार में, मंदिर में छिप गया था, तब उस रात नींद में ही भय से थर-थर काँपते हुए जब मालती एक-दम उठकर बैठ गई थी और उसके गले से लिपट गई और यह कहकर कि तुम मुझे अपनी भुजाओं में लेकर मेरे साथ सोओ, स्वयं उसके साथ चिपट-कर सो गई थी। उस समय की उसकी प्रत्येक हलचल की, एक-एक स्मृति बार-बार आ रही थी। मालती के बालों की लटें, उसकी छाती से अलग होकर जैसे उस रात उसके गालों को स्पर्श कर रही थीं उसे लगा कि अब भी उसकी लटें उसके मुख पर छा रही हैं। उसका सारा शरीर काम-कंपित थरथराने लगा। उसको यह पश्चात्ताप होने लगा कि 'उस रात को उसने संयम और संकोच को व्यर्थ में ही क्यों अपनाया ? अमृत का प्याला उसके होंठों से लगा दिया गया था, पर मैं पीना भूल गया ! मैंने उसके संग-सुख का जीवन में प्राप्त अवसर गँवा दिया है !'

प्रियजन के सशरीर समक्ष होने पर उसका आलिंगन लेने के लिए भी उस पर अनुरक्त व्यक्ति की मनसोक्त इच्छा प्रिय की इच्छा-अनिच्छा से प्रभावित होती है। परन्तु जहाँ तक प्रेमी व्यक्ति की स्मृति का ही सम्बन्ध है वहाँ उस पर अनुरक्त व्यक्ति अपने कल्पना-मन्दिर में स्वच्छन्द रूप से विहार करता है। तब उसके मन की आकांक्षा अनिवार्यरूप से प्रकट होती है, और सब-कुछ उसकी इच्छा के अनुरूप घटित होता जाता है और मन का समाधान प्राप्त करने के लिये कोई विघ्न-बाधा सामने नहीं आती। उसकी अतृप्त और अव्यक्त वासना सारा संकोच छोड़कर पूरी हो सकती है। प्रिय व्यक्ति के समक्ष होने पर उसे जिस बात को कहते हुए लज्जा-संकोच होता है उसे उसकी स्मृतिमूर्ति को स्वच्छन्दरूप से कहा जा सकता है। अपनी भावना के अनुसार उसकी भावना का ताल-लय भी एकस्वर किया जा सकता है।

एकान्त में कण्टक के हृदय में भी यही व्याकुलता उठती थी। जब

मालती उसके सामने थी, तब उसके उपचेतन मन में उसके प्रति जो कामुक भावना उठती थी वह मांत्र उठती ही थी। परन्तु जहाँ तक उसके चेतन मन का प्रश्न था उस भावना को प्रकट करने में लज्जा आती थी। और अब विरह के इस अश्रुजल से सिंचित, वह भावना अंकुरित और पल्लवित हो गई थी और चेतन मन की भूमिका में भी वह अभिभूत था! सर्व-प्रथम उसने उसके कल्याण के लिये अपने कर्तव्य के रूप में उसे संकट से मुक्त करने में ही सुख समझते हुए अपने जीवन को भी संकट में डाल दिया था। पर अब उसके कल्याण और अपने कर्तव्य के लिये नहीं अपितु उसको प्राप्त करने के लिये, उसके साहचर्य के स्वर्गिक आनन्द के लिए वह छटपटा रहा था। उसे संकट से मुक्त करने के लिए अपने प्राणों को एक बार पुनः संकट में डालने की बात उसे पट नहीं रही थी।

अनुसूया द्वारा बताई गई स्थिति के अनुसार स्त्री-कारागार में भी मालती संकट में ही थी। कण्टक को भी लग रहा था कि उसको मुक्त कराना है तो अपने प्राणों को पहले की तरह भयंकर संकट में डालना होगा। इस बार उस पर आया संकट किसी और के द्वारा आया है यह कहने की अपेक्षा उसने अनुसूया द्वारा भेजे गये अपने संदेश में यही कहा था कि यह संकट उसने अपने ऊपर स्वयं लिया है।

उसने अनुसूया को पाँच-सात महीने पूर्व कण्टक की खोज-खबर लेने का काम सौंपा था। पर उसने उस समय यही बताया कि आजन्म कारावास का दण्ड प्राप्त कण्टकी नाम की कोई स्त्री अब तक काला पानी नहीं आई है। इस सूचना के बाद भी कण्टक उसके बच्चों—मोहन व उषा, को पढ़ाने के लिए प्रायः आता-जाता था। अनुसूया को बहिन मानकर उसे भैय्या-दूज या अन्य त्यौहारों पर कुछ-न-कुछ भेंट देता रहता था। उसके इस सुशील, निष्कपट स्वभाव से, उसके विद्याज्ञान के कारण, विभिन्न विषयों पर सार्वजनिक हित-अहित की विवेचना के कारण, प्रौढ़ प्रज्ञ अप्पाजी भी उसे बहुत चाहने लगे थे। उसका इस घर से सम्बन्ध बढ़ता गया और अनुसूया ने भी पूरी लगन से कण्टकी का पता लगाने का निश्चय किया। उक्तवर्णित जिस दिन कण्टक इस परिवार से मिलने के लिए आया था उससे दस-एक

दिन पूर्व ही अनुसूया को यह पता चला था कि कण्टकी नाम की एक स्त्री-कैदी जिसे आजन्म कारावास का दण्ड मिला है, हिन्दुस्तान से अन्दमान की जेल में लाई गई है। इस बात की सूचना उसने कण्टक को दे दी थी। उस दिन अनुसूया ने कण्टकी से मिलने का अवसर निकालकर चोरी से जल्दी-जल्दी में जो कुछ जानकारी प्राप्त की जा सकती थी उसे मालूम कर लिया था। इस वार्ता में कण्टकी ने गिरफ्तारी से पूर्व कण्टक से जो निश्चय किया था, तदनुसार अपना मालती के नाते कोई परिचय नहीं दिया और यही बताया कि वह कण्टक की बहिन है तथा उसका अपहरण करने वालों को मार डालने के कारण ही कण्टक और उसे आजन्म कारावास का दण्ड मिला है। उसने यह भी बताया कि दण्ड मिलने के बाद उसे भारत की एक जेल में बंद रखा गया और पिछले पाँच वर्षों तक वह उसी जेल में सड़ती, कुढ़ती और रोती पड़ी रही। कण्टक का क्या हुआ, यह उसे काफी समय तक कुछ पता नहीं चला, परन्तु कुछ कैदियों ने ही उसे बताया कि कण्टक को काला पानी भेज दिया गया है। इस सूचना के बाद भारत की जेल में ही कष्ट-यातना का जीवन बिताने के बदले मैंने सरकार से बार-बार प्रार्थना की कि मुझे काला पानी भेजा जाय। अन्त में इसे स्वीकार कर मुझे भी एक 'चलान' में अन्दमान भेज दिया गया। इस प्रकार मालती ने अपने गत पाँच वर्ष के कारावास की सूचना भी अनुसूया को दे दी।

इस भेंट में कण्टकी ने अनुसूया को कहा :

'जमादारिनबाई, मैं अभी बीस वर्ष की भी नहीं हुई हूँ। पर इस जगत में जो कष्ट और यातनायें सौ वर्ष तक जीवित रहने वाले के भी सामने नहीं आतीं वे सब मेरे इस स्वल्प-सी जीवन की अवधि में मुझे भोगनी पड़ी हैं। मैंने आज तक असीम छल, विडम्बना, कष्ट, दुःख और वेदना सही है। बाई ! मैं भगवान की सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि मेरा एक ही अपराध है और इसके सिवाय मेरा और कोई अपराध नहीं है जिसके कारण मुझे इतना कष्ट मिला। मेरा जो एक ही अपराध है वह है मेरा रूप ! मैं जहाँ भी जाती हूँ यही मेरी बाधा बनता है। इस रूप के कारण ही मैं मातृ-गृह से बंदीगृह में आ गई। इस रूप के कारण बंदीगृह में भी मैं जिसके हाथ में

पड़ गई उसने मेरे साथ खिलवाड़ ही किया। जिनके हाथ में नहीं पड़ी उन्होंने भी जान-बूझकर मेरे साथ छल-कपट किया, मुझे यंत्रणा दी। बाई, अब मेरी जीने की कोई कामना नहीं है। भारत की जेल में मैंने आत्महत्या करने की कोशिश की थी, पर वह विफल हो गयी और मुझे उल्टे उस अपराध में हथकड़ियाँ डालकर छह महीने बन्द कोठरी में डाल दिया गया। कष्ट से मुक्ति पाने के प्रयत्न में अधिक कष्ट दिया जाने लगा। अन्त में एक ही आशा की किरण थी सौर इसी के सहारे मेरा जीवन मृत्यु-मुख में जाने से जैसे-तैसे बचा हुआ है। यह आशा की किरण मुझे दण्ड देते समय न्यायाधीश द्वारा दिया गया आश्वासन है। न्यायाधीश ने कहा था, 'काला पानी में तुम्हें कुछ वर्षों बाद खुला छोड़ दिया जायगा और टापू पर ही सही, तुम अपनी पसन्द के सहचर के साथ प्रेम व वत्सलता का कौटुम्बिक जीवन का उपभोग कर सकोगी!' न्यायाधीश के ये शब्द अमृत के तुषार के समान मेरे मन में बार-बार अंकुरित होते हैं।...

'जैसे ही मुझे मालूम पड़ा कि कण्टक अन्दमान में ही है, मैंने मरने से पूर्व एक बार उससे भेंट करने के लिए बड़ी आतुरता से काला पानी भेजे जाने के लिये प्रयत्न किया और यहाँ आ गई। पर यहाँ आने पर मैं देखती हूँ कि इस घिनौनी जिन्दगी में मुझे अनेक वर्षों तक पड़ा रहना पड़ेगा। छी-छी! बाई, मैं अब एक दिन भी यहाँ की इस सड़ी ज़िन्दगी में रहना नहीं चाहती। इस शरीर के प्रति मुझे घृणा हो गई है। आप कण्टक का पत्र लाई हैं इससे आप पर विश्वास होता है। सैकड़ों अपने-दिखाऊ लोगों ने मेरे साथ विश्वासघात कर मुझे इतनी बार धोखा दिया है कि आप भी मुझे धोखा नहीं देंगी नहीं कह सकती। आप क्रोध न करें! मैं आपको बुरा नहीं कह रही। मैं तो अपने भाग्य को कोसती हूँ। मैं अपना सिर आपके सामने झुकाती हूँ। इसे काटेंगी? काटिये! मैं तुम्हें अपनी माँ मानती हूँ, तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, आप मेरे से धोखा न कीजिये! मैं कण्टक बाबू के बारे में जो कुछ कहूँ यदि आप उसे सरकारी अधिकारियों को बता देंगी तो मेरे पर नया संकट आ जायगा। मैं आपसे नहीं डरूँ न?...

'ठीक है, तो कण्टक बाबू से कहिये कि यदि वह तीन-चार महीने में

मेरी यहाँ से मुक्ति करा सकते हैं तो मैं जीवित रहूँगी। मैं अब इतनी कठोर, ढीठ और दुर्गा बन गई हूँ, दुष्टों की संगति की मदिरा पी-पीकर इतनी दुष्ट बन गई हूँ कि मैं अपनी मुक्ति के लिये मुझे जो भी साहस, छल, कपट, क्रूरता करनी पड़ेगी मैं उससे भी पीछे नहीं हटूँगी। यदि इन चार-छह महीनों में इस बंदीगृह से न सही, इस घृणित दुर्दशा से मेरी मुक्ति नहीं होगी तो मैं आत्महत्या कर मुक्ति का प्रयत्न जारी रखूँगी। दस-पाँच वर्ष और इस जेल के नियमों में रहते हुए मैं जीवित रहना नहीं चाहती यह बात निश्चित है। बाई, मेरा यह निश्चय कण्टक को बताने का तथा किसी अन्य को न बताने का—यह दो उपकार मेरे पर करेंगी न? मेरे पर यह दया करेंगी न? हाँ, एक और भी महत्त्व की बात है! कण्टक बाबू से मेरी प्रार्थना है कि यदि वे इस समय सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं तो मेरे इस संदेश के कारण वे कोई ऐसा कार्य न करें जिससे उनका जीवन पुनः कष्ट में पड़ जाये। मेरी यह दूसरी प्रार्थना, मुक्ति की पहली प्रार्थना से एकदम असंगत है। नहीं-नहीं, मेरे से भूल हो गई! मेरी पहली प्रार्थना उनसे बिलकुल नहीं कहना। मैं यहाँ ठीक से हूँ तथा आप भी ठीक से हैं यह जानकर मुझे बड़ा समाधान मिला है इतना ही कहना। मेरी शपथ है तुम्हें। मैंने जो भी कुछ कहा है उसे यही समझना कि मैंने कुछ कहा ही नहीं है। नहीं तो मेरी मुक्ति के लिये कण्टक बाबू कोई भी खतरा उठाने का काम करेंगे और फिर एक बड़ी मुसीबत में फँस जायँगे। क्या? यह भेंट अब समाप्त होनी चाहिए? ठीक है, तो मैं जाती हूँ! मैं उस दरवाजे से चुपचाप निकल जाऊँगी। पर बाई, मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ कि समय-समय पर मेरे से ही ऐसे मिलती रहोगी न? कोई आ रहा है क्या? मैं जाती हूँ!'

अनुसूया ने कण्टकी से अपनी भेंट के बाद कण्टक को जो अनेक बातें कही थीं, उनको अपने मन में सुसंगत क्रम देकर कण्टक ने मालती के मनोगत उद्गारों को क्रमबद्ध कर आत्मसात कर लिया था। मालती ने अपनी बातें कहते हुए जिस प्रकार हाथ घुमाये होंगे इसकी कल्पना कर उसने स्वयं भी हाथ हिलाये और इसी विचार में तन्मय वह जल्दी-जल्दी अपना

रास्ता भी तय करता रहा।

उसे याद आया, मालती कारागार में किस काम पर है। मालती के स्वास्थ्य के बारे में पूछने पर अनुसूया ने उसकी दुर्दशा का ही वर्णन किया था। उसे जेल के रसोईघर में काम दिया गया था। उसने कल्पना से ही रसोई में भट्ठी के आगे काम करती रूक्ष केशों वाली, लोहे के बड़े-बड़े कड़ाहों और पतीलों के बीच में खड़ी, रोटी थापती, मालती का चित्र अपने मन में खींच लिया। उसने यह भी कल्पना की कि रसोई की स्त्री-वार्डर ने मालती से चोरी से चार-पाँच सेर आटा देने को कहा और मालती के न देने पर पहले उसे गालियाँ दीं और फिर काम में सुस्ती के आरोप में उसके गाल पर तमाचे भी जड़ दिये। कल्पना में ही रोती, क्रोध से काँपती, निरुपाय, निःसहाय मालती उसके सामने खड़ी हो गई और करुणा से उसकी आँखें डबडबा गईं। उसकी दृष्टि धूसर हो गई, फिर भी वह तेजी से आगे बढ़ता गया।

इस सब करुण-काल्पनिक दुःखद स्मृति से भारी मन में और वाष्प-पूरित उसकी दृष्टि के सामने आगे की किसी योजना का विचार आया ही नहीं। निश्चय ज़रूर कर लिया था कि चाहे जो भी कुछ हो, कारागार से मालती की मुक्ति करनी है। उसकी आत्म-हत्या को टालना ही होगा। आयुष्य के दो दिन ही क्यों न सही, इन दो दिनों में ही चाहे वे इस जीवन के अन्तिम दो दिन ही क्यों न हों, मालती के प्रगाढ़ आलिंगन में, प्रेम की गहन मूर्च्छा में स्वर्ग-सुख का उपभोग करना ही है। उसको सुखी करना है और स्वयं भी सुखी होना है।

इन सब असंयत विचार-कल्लोल में जैसे दिखने में एकदम क्षुद्र अड़-चन के अकस्मात् ध्यान में आने से बड़े-बड़े मनोरथों की गाड़ी रुक-सी जाती है, उसी प्रकार एक शंका ने कण्टक के उस स्वर्ग-सुख की लहर को रोक दिया। प्रगाढ़ आलिंगन में उसे सुखी करना है, दो दिन ही सही उसकी संगति का सुख भोगना है। इस रंग में उसका मन रंगता न रंगता इससे पूर्व ही जैसे किसी ने उसे झकझोर दिया हो—अरे वह कितनी सुन्दर है और तू कितना कुरूप! उसका संग तो तुझे स्वर्ग लगेगा ही, पर तेरा संग

उसे कैसा लगेगा ?

उसका सारा रंग भंग हो गया। एक क्षण के लिए वह स्तब्ध रह गया। अपने रूप को मालती अभिशाप समझती थी और किशन अपने कुरूप को। इस विचित्र विचार पर उसे स्वयं ही हँसी आ गई। उसका मन बुझ-सा गया। पर उसकी चाल में सुस्ती नहीं आई। स्वचालित यन्त्र की तरह उसके पैर स्वयं आगे बढ़ते चले जा रहे थे। सरकारी नियम के अनुसार उसे निर्धारित समय पर कैदियों की चाल तक पहुँचना चाहिए यह बात उस समय मन में न होने पर भी उसके पैरों के ज्ञानतन्तुओं की स्मृति अभी भूली नहीं थी।

उसका श्रान्त मन संकट में भी यथासंभव जो भी इष्ट-तात्पर्य निकाला जा सकता था उसे निकाल रहा था—'तो भी चिन्ता की क्या बात है ? यदि वह मुझ-जैसे कुरूप पर अनुरक्त न भी हो तब भीवह मेरे स्नेह से कोई पारखी नहीं हो जायगी। रूप की अपेक्षा शील का आकर्षण अधिक अच्छा है इतनी तो वह स्वतः ही सुशील, सुरुचिपूर्ण है। उसका संग-सुख चाहे न मिले उसके साथ उठने-बैठने का सुख प्राप्त होना कठिन नहीं है। निःसंशय रूप से इतना अभीष्ट तो होगा ही !'

इस विचारधारा में उसे किसी ने जैसे झकझोरकर जगा दिया हो। मन ने उसे सावधान होने को कहा, 'देख, सामने जेल दीखने लगी है। क्या करना है इसके निर्णय से पूर्व ही रास्ता पूरा हो गया है। कैदियों की चाल भी आ गई है। क्या करना है ? उसका उपाय क्या है ?'

'सारा जीवन इस काले पानी के कारावास की गन्दगी में नहीं बिताना है, अवसर मिलते ही बेड़ियाँ-हथकड़ियाँ तोड़कर यहाँ से भाग निकलना है, यह निश्चय किशन का आज का ही नहीं था। काला पानी आते हुए ही उसने यह निश्चय कर लिया था। रफीउद्दीन जैसे क्रूरकर्मी व्यक्ति को अपनी घोर शत्रुता को मालूम न कराते हुए इसी उद्देश्य से उसके साथ निकटता स्थापित की थी। पिछले पाँच वर्ष की अवधि में इसी लक्ष्य के लिए उसने गुप्त रूप से रफीउद्दीन से कई बार बातचीत भी की थी। इसी प्रयोजन से से उसने जंगल काटने के लिए बाहर जाने के काम पर अपनी नियुक्ति

कराई थी। इतना ही नहीं, उसके अधीन जो सौ-सवा सौ कैदी लकड़ी तोड़ने के लिए थे वह उसका मुख्य कैदी बाबू था, और उसने स्वयं औरों से कहलाकर इन कैदियों में रफीउद्दीन की भी भर्ती करा ली थी। उसे अभी मालती से बारे में कोई खोज-खबर नहीं लगी थी, इसलिये इस साहसिक कार्य को मुख्यता नहीं दी थी। आज उसने जो कुछ निश्चय किया वह केवल मालती का मुक्त करने का सन्देश प्राप्त कर उसकी दुर्दशा और उसके आत्महत्या करने के अत्यधिक चिन्ताजनक समाचार सुनने के कारण ही।

काला पानी में कैदियों की आजन्म कारागार की जंजीरें काटना मामूली साहस का काम नहीं था। यह बात कहने से नहीं' किन्तु अपना सिर हाथ में लेकर ही जो आगे बढ़ता है उसे वही कर सकता है, किशन यह जानता था। यह भय ही उसके मन को दबोच रहा था। इसीलिए वह आज तक निश्चय ही करके रह जाता था। इस दिशा में वह धीरे-धीरे बढ़ भी रहा था, पर जैसे पासा फेंकने से पहले जुआरी पासों को अपने हाथों में ही नचाता रहता है और फेंकते हुए संकोच करता है उसी प्रकार वह भी जेल-मर्यादा तोड़कर बाहर निकलने में संकोच कर रहा था। आज उसने इस मर्यादा को तोड़कर आगे कदम बढ़ाना है यह निश्चय कर लिया। यह कार्य चाहे कितना ही कठिन क्यों न हो इसको बिना टाले तुरन्त पूरा करने का प्रश्न बन गया था। इस बारे में जल्दबाजी को देखते हुए उसने इसकी चर्चा रफीउद्दीन से भी करने की ठान ली।

मालती के सम्बन्ध में मिली सूचना ? क्या यह बात इस दुर्जन को भी बतायी जाय या नहीं ? नहीं-नहीं ! किशन ने तुरन्त निश्चय कर लिया। इस बारे में फिलहाल रफीउद्दीन को एक अक्षर भी नहीं मालूम होना चाहिये। रफीउद्दीन को यह भी नहीं बताना कि वह अपनी मुक्ति के साथ मालती की भी मुक्ति चाहता है।

मन में ही मालती नाम बोलने से उसने स्वयं को धिक्कारा। अपने मन में मालती का स्मरण करते हुए वह उसका मालती नाम ही लेता था। कण्टकी नाम से उसके मन में वह प्रेमिल भाव उठते ही नहीं थे। किशन

समझता था कि मन में जो नाम है यदि होंठों पर आ गया तो उसका और मालती के अब तक के सारे अज्ञातवास का भण्डा-फोड़ हो आयगा, रफीउद्दीन की पुरानी शत्रुता भड़क उठेगी, उसकी माँ का, अपने पहले मुकद्दमे का सारा सम्बन्ध प्रकट हो जायगा। पता नहीं और कितनी कठिनाइयाँ उपस्थित हो जायँ। वह पुनः प्रकट में कुछ न बोल बैठे, बोलने लगा, 'मैं कण्टक हूँ कण्टक! और वह मालती नहीं, कण्टकी है कण्टकी! मेरी सगी बहिन कण्टकी!'

जैसे ही वह कैदियों की चाल के आँगन में घुसा वैसे ही कैदियों की चाल में लौट आने की रात की घण्टी टनटना उठी। 'भगवान, मैं ठीक समय पर पहुँच गया हूँ' ऐसा कहकर कण्टक ने एक लम्बा साँस लिया और दरवाज़े के पास ही पड़ी एक खटिया पर बैठ गया।

कुछ देर बाद कैदियों की जाँच-पड़ताल होने के बाद कण्टक चाल की एक एकांत खुली जगह पर टहलने लगा। रात को कैदियों की सोने की घण्टी बजने से पूर्व यह कैदियों के परस्पर मिलने तथा खुले रूप में बात करने का समय था। कण्टक इस चाल का मुख्य कैदी था। कुछ देर इधर-उधर टहलने के बाद उसे दूर तक के कैदी देख सकें ऐसी एक ऊँची जगह पर बैठ गया और आवाज़ लगाई:

'उद्दीन! रफीउद्दीन!!' उसके साथ ही···

'जी, जी! कण्टक बाबू, आता हूँ।' बड़ी आतुरता से उत्तर देते हुए वह तेज़ी से उठा। अब रफीउद्दीन कण्टक बाबू की किसी भी बात को पूरा करने के लिए बड़ी तत्परता से उद्यत रहता था।

इसका भी कारण था। जिस दिन रफीउद्दीन को कोड़ों की सजा मिली थी और उसे तीव्र ज्वर हो गया था, तब उस रात प्रशिक्षणार्थी कम्पाउण्डर के रूप में जेल के अस्पताल के डाक्टर के नीचे काम करने के लिए कण्टक को ही नियुक्त किया गया था। रफीउद्दीन को कई दिन तक अस्पताल में रहना पड़ा था। उस समय रफीउद्दीन की असहाय स्थिति में कण्टक ने काफी सहायता की थी। औषध-दवादारू के अलावा कैदियों को मिलने वाली अधिकतम सुविधा, चोरी से दूध देना, चीनी अधिक देना, तम्बाकू

भी चोरी-छिपे मुहैया करना, आदि सब उसने रफीउद्दीन के लिए किया था। डाक्टर से आग्रह कर उसे कोल्ह में भेजने में जितना विलम्ब हो सकता था उसने कराया था। कण्टक बाबू की जैसे-जैसे तरक्की होती गई रफीउद्दीन भी वैसे-वैसे उसका अधिक अनुचर होता गया। रफीउद्दीन से उसकी कोई साँठ-गाँठ नहीं है यह दिखाने के लिए अधिकारियों के सामने उसे डाँटता था। पर वह रफीउद्दीन की काफी सहायता करता था। उसी ने रफीउद्दीन को जेल की कोठरी से निकालकर बाहर काम पर भेजने की सिफारिश की थी। रफीउद्दीन को भी मालूम था कि कण्टक की सहायता के बिना उसकी स्थिति एक कुत्ते की हो जायगी। उसका गिन्नी का खजाना लुट गया था।

रफीउद्दीन मूलरूप से साहसी, हिम्मतवाला और भयंकर उपद्रवी था। यदि उसे अच्छे कामों में लगाया जाता, अच्छा उपयोग लिया जाता तो यही गुणधर्म, पराक्रम के रूप में बदल जाते। वह अब कण्टक बाबू का एक प्रकार से पालतू कुत्ता बन गया था और कण्टक बाबू के आवाज़ देते ही वह उसके सामने दुम हिलाता खड़ा हो गया।

कण्टक ने उसे बैठने को कहा और कोई आसपास नहीं है यह देखकर उससे धीरे-से बोला :

'उद्दीन ! काला पानी के लिए हम जिस दिन निकले थे, उसी दिन हमने काला पानी से भाग निकलने की शपथ ली थी न ? बस, अब इसे सच करके दिखा सकेगा ? बातचीत, विचार कुछ नहीं, आज से ही सिर हथेली पर रखकर इस काम को पूरा करना है। तू तैयार है ?'

'मैं एक पैर पर तैयार हूँ, प्राण दे दूंगा पर पीछे नहीं हटूंगा। पर इसके लिए पूरी योजना बनानी पड़ेगी। बड़ा कष्टसाध्य कार्य है यह ! यदि पकड़े गये···!'

'जब तक जीवित हैं, तब तक न फँसें ऐसी योजना बना। ऐसी योजना बना सका तो तभी तू असली रफीउद्दीन। काला पानी से भागा हुआ कुशल पापी।'

यह रफीउद्दीन की प्रशंसा थी ! गर्व से रफीउद्दीन बोला :

'कण्टक बाबू !' इस बारे में मैंने आपसे पर्याप्त चर्चा की है। मैंने भी अपना एक निश्चय किया है, वह बड़ा भयंकर···'

'पहले तू बता तो सही कि वह क्या है ? फिर देखेंगे कि वह कितना भयंकर है !'

रफीउद्दीन ने खखारा, कोई आस-पास है या नहीं यह देखकर उसने बोलने और सुनने में कँपकँपी पैदा करने वाले निश्चय को बताना शुरू किया।

१५. बस्ती का तत्त्वज्ञान

आठ-दस दिन हो गए, वृद्ध अप्पाजी अपने उस 'दाखलेवाले' गाँव की झोपड़ी में बिस्तर पर बीमार पड़े थे। सत्तावन के स्वातन्त्र्य-युद्ध में सेनापति तात्या टोपे की तरफ से लड़ते समय गोली लगने से ज़ख्मी हुए-हुए अप्पाजी के उस पैर में तीव्र वेदना हो रही थी। जन्म-भर काले पानी के बंदीवास में कठोर और कड़ी मशक्कत से जर्जरित उनकी देहयष्टि अब क्षीण होने और सत्तर से भी अधिक बरस की उम्र के कारण थक चुकी थी और अब उनके हृदय में भी असह्य पीड़ा उत्पन्न होती थी। इस बीमारी के कारण आँगन में खुली जगह हमेशा पड़ी रहनेवाली उनकी वह खाट पर की बैठक भी इस हफ्ते सूनी पड़ी थी, और उनका बिस्तरा अन्दर झोपड़ी ही में चला गया था। इस बीमारी में न जाने उनका अन्त भी कब बोलते-बोलते हो जाए, इसका उन्हें भरोसा नहीं था अतः एक दफा कंटक आकर उनसे मिल जाए; ऐसा उन्होंने कंटक के पास बहुत ज़रूरी संदेशा भेजा था। आज रविवार है; आज अप्पाजी उस अपनी झोंपड़ी में के बिस्तर पर कराहते हुए पड़े रहकर भी खिड़की में से बार-बार बाहर झाँकते थे और उस टेकड़ी पर से कंटक उतरता हुआ कब दीखता है, इधर उनकी आँख लगी हुई थी।

अप्पाजी के सारे आँगन में सुखाने के लिए डाली हुई उन कच्चे नारियलों की फाँकों पर भी बीच-बीच में बुलबुलों के झुण्ड चढ़ाई करते थे और उन पक्षियों को भगाकर उन खोपों पर पहरा करने का काम भी करते थे अप्पा के दो पालतू बुलबुल ही—उषा और मोहन !

कौवे, चिड़ियाँ, मैना प्रभृति इतर पक्षियों को भगाने में यद्यपि उषा और मोहन बिलकुल कमी नहीं करते थे तथापि बुलबुलों का झुण्ड आँगन में उतरा कि, उन्हें भगाने की अपेक्षा उनका तमाशा देखने की ओर ही उन उत्सुक बच्चों का आकर्षण अधिक दिखाई देता था।

अप्पा भी उन बुलबुलों का तमाशा देखते वक्त असावधान स्थिति में अपना दूसरा पैर फट् से सीधा कर बैठे और उसमें एकदम दर्द पैदा हो उठा, 'मैया री !' कहकर वे किंचित् चिल्लाए और कराहने लगे।

'उषे ! अरी, अप्पा कराहते हैं !' घबराए-घबराए मोहन और उषा आंगन में से दौड़ते हुए अप्पा के कमरे में गए।

'क्या हुआ अप्पाजी ?' मुँह फीका करके उषा ने हिन्दी भाषा में पूछा। क्योंकि वे बच्चे मराठी की ही भाँति किंवा मराठी की अपेक्षा हिन्दी ही में अधिक बातचीत किया करते थे। अण्डमान में निवास करनेवाले मराठी, बंगाली, मद्रासी, पंजाबी वगैरह सब माता-पिताओं के पेट से उत्पन्न हुए बच्चे हिन्दी ही में बोलने लगते हैं। वही वहाँ पैदा हुओं की असली मातृभाषा रहती है। अपनी-अपनी प्रांतीय भाषा जिन्हें उनके माता-पिता शौक के खातिर सिखा देते हैं, उतनों ही को वह आती है।

तीन मिनट, चार मिनट, पाँच मिनट ! उषा अपने कोमल और नन्हे हाथों से जितना लगाया जा सकता था उतना बल लगा-कर पैर दबा रही थी। पर अप्पा का ध्यान विचारों में लीन था। वे 'बस' कहना भूल गए ! उषा के हाथ दुखने को आ गए।

'मेरे हाथ टूट गए तो भी तुम बस कहके नहीं देते !'

उस चपत और रोने के साथ ही अप्पा भी होश में आए, हंसे और प्रशंसापूर्वक उषा के सिर पर हाथ फेरते हुए समझाने लगे :

"चुप-चुप ! अरी, तो तू दाबती ही काहे को रही भला, हाथ दुखने तक ? मुझे तेरा दबाना इतना अच्छा मालूम हो रहा था कि बस कहने की इच्छा ही नहीं हो रही थी। इन नन्हें हाथों में कोई जादू का गुण है हमारी उषा के ! वैद्यों की औषध से आज तक जो ठीक नहीं हुआ वह दर्द बिल्कुल नहीं-सा हो गया देख, तेरे दबाते ही !'

"वह देखिए, वह देखिए, अप्पा, कंटक बाबू टीले पर से आते हैं, देखिए !" मोहन बीच में ही कहकर उठ गया।

अप्पा संभलकर बैठ गए। वे दोनों लड़के दुड्दुड् दौड़ते गए, कंटक बाबू के सामने जाकर कौन उन्हें पहले छूता है, यही एक उनके वास्ते नया खेल हो गया था।

"कंटक बाबू, यह दर्द मेरे हृदय में बीच-बीच में जब से उठने लगा है तब से मैंने यह समझ लिया है कि, अब मेरा अन्त नज़दीक ही है !" एकान्त में ले जाकर अप्पाजी कंटक से कहने लगे, "पर इसमें दुःख की कोई बात नहीं। हम जैसों के मरने का अर्थ है—छुटकारा ! पर तुमसे एक मर्तबा मुलाकात करने की इच्छा होने लगी थी। तुम कितने ही महीनों से अपनी सुरक्षितता को खतरे में डालकर भी यहाँ आते हो, मेरे परिवार की स्वहस्तेन-परहस्तेन जितनी हो सके मदद करते हो, प्रेम करते हो अतः हमें भी तुम्हारे प्रति प्रेम मालूम पड़ता है। तुम्हारा आभार !"

"पर उसमें आप मेरा आभार मानें ऐसा मैंने कुछ भी नहीं किया। उलटे अप्पाजी, मैं ही आपके उपकारों का ऋण चुका नहीं सकूंगा। इस भयंकर बंदीवास में पड़ने के बाद से ममता के मनुष्य की मेरे हृदय को बिलकुल भूख ही लग गई थी। आपके परिवार में मुझे वह ममता उपलब्ध हुई। पितृतुल्य आप, स्वसृतुल्य अनुसूया भगिनी, औरस पुत्रों के तुल्य ये बच्चे—ये इन सबके प्रेमिल सहवास में मेरे जो कुछ क्षण गए हैं, वे ही मेरे लिए, जीवित रहना चाहिए ऐसी

प्रतीति करावें इतने विलोभनीय !'

'तो फिर कंटक बाबू, मेरी भी आपसे यही विनती है कि आप मेरे पीछे मेरे इन बच्चों को अपना समझें। आप इन्हें अपने हाथ में लें तो मैं सुख से मरूँगा !'

'अप्पाजी, आपके सम्बन्ध में किसी हुतात्मा के सम्बन्ध में प्रतीत होनेवाली उत्कट आदर-भावना उत्पन्न होती है मेरे मन में ! उसमें भी जो लोग सफल होते हैं, उन स्वातन्त्र्य वीरों की अपेक्षा आप जैसे, जिन स्वातन्त्र्य सैनिकों के माथे पर सफलता लिखी न होकर केवल जुल्म ही जुल्म और यातनाएँ हो यातनाएँ लिखी होती हैं, उनके प्रति ही मुझे अधिक गौरव अनुभूत होता है। आपकी मृत्यु को किंचिदपि सुखयुक्त बनाने वाले कृत्य यदि शक्य होता तो मैंने उसे अवश्य स्वीकार किया होता पर मैं तो स्वतः ही सती का बाना लेकर खड़ा हूँ ! इस काले पानी के भीषण कालपाश को तोड़कर निकल भागने का प्राणों पर बीतने वाला खेल मैं खेलने वाला हूँ। उसमें मैं मरूँगा या जीऊंगा किसे मालूम ?'

'मैं कहता हूँ कंटक, उस खेल में मरण ही निश्चित है। गत पचास बरसों में पचास आदमी भी काले पानी पर से भाग जाकर देश को पहुंचे हों और सुख से रहे हों, ऐसा मुझे तो याद नहीं आता !'

'पर तो भी उन पचासों में मैं इकावनवां बनूंगा। नहीं तो मौत की राह पकड़ूँगा। यहाँ व्यक्ति का विकास नहीं, भावनाओं की उड़ान नहीं, मनुष्यता का मान नहीं, किसी उच्च और भव्य ध्येय के लिए किंवा परोपकार के लिए शरीर सुखाने का भी पावन पुण्य भाग्य में बदा नहीं ! न स्वार्थ ! न परार्थ !'

'ठहरो, इस तुम्हारे अंतिम आक्षेप के विषय में ही क्यों न हो, तुम्हें एक नई दृष्टि देने की इच्छा है ! पतितों के उद्धार का, सुधार का काम सदैव राष्ट्रीय अथवा धार्मिक सेवा का एक महत्त्वपूर्ण उपांग बनकर रहेगा। और अण्डमान तो कह-सुनकर अपराधियों और

उद्दण्डों का, पापियों का और पतितों का उपनिवेश अर्थात् परोपकार का चुनींदा कार्य-क्षेत्र !"

'वह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। और यदि कभी मैं इस आजन्म कैद की लौह ग्रन्थि से छूटकर और काले पानी पर से निकलकर स्वदेश लौट सका और दूसरे ही नाम से स्वतन्त्रतया राष्ट्र-सेवा कर सका तो भारतीय कैदियों को इस काले पानी पर भेजने की यह क्रूर प्रथा बन्द करवाकर यह भयंकर उपनिवेश जड़-मूल से बन्द करने का आन्दोलन यथाशक्ति शीघ्रता से और बल से परिचालित किए बिना नहीं रहूँगा। हिन्दुस्तान में भी कुछ नेताओं का ध्यान इस प्रश्न की तरफ़ आकृष्ट हुआ है और कैदियों का उपनिवेश मूलतः बन्द करने के लिए और इस पापभूमि के इन सारे अमानुष अत्याचारों को जड़मूल से उखाड़ डालने के लिए कोशिश हो रही है।

'पर वे प्रयत्न उलटी दिशा में किए जा रहे हैं। यह देखो कंटक, किसी भी देश में अत्यन्त उद्दण्ड, और समाज के लिए सर्वथा उपद्रव-कारी, चोर-डाकू, हत्यारों का एक वर्ग तो रहेगा ही। ऐसा समाज-शत्रुभूत जो वर्ग हिन्दुस्तान में रहेगा उसके लिए नीति और कानून की मर्यादाओं का भंग करना असम्भव कर डालने के लिए शक्ति से और बल से निग्रह किया जाना ही चाहिग। फाँसी, आजन्म कैद और कोड़ों जैसी उग्र शारीरिक सज़ाओं के बगैर उन उद्दण्ड लोगों को किसी बात का दरारा (डर) नहीं प्रतीत होगा। उन्हें कठोर दण्ड और अनुसाशन के पेंच में पकड़ और जकड़कर रखने ही से कायदापसन्द और समाजशील न-गरिकों का उनके उपद्रवों से बचाव किया जा सकेगा, समाज में शान्ति और सुव्यवस्था बनी रह सकेगी। उस अवस्था में सहस्रावधि दण्डितों को ऐसे काले पानी सरीखे उपनिवेशों में बन्द करके रखना ही राष्ट्र के हित का रहता है। नहीं तो उन्हें रखा कहाँ जाएगा ?'

'देश के अन्दर जेलखाने नहीं हैं क्या ?'

'वही बतलाना है, कंटक बाबू ! यदि उन्हें इस काले पानी जैसे

किसी स्वतन्त्र उपनिवेश में उनकी उद्दण्ड प्रवृत्ति को पालतू बना सकने योग्य कठोर कायदे में यन्त्रित करके जितनी स्वतन्त्रता उन्हें दी जा सकती हो उतनी उन्हें दी जाय तो वे कौटुंबिक और वैयक्तिक सुख अधिक भोग सकेंगे और देश के सच्छील समाज को, उन दण्डितों को भोगने के लिए दी गई स्वतन्त्रता से लेशमात्र भी उपद्रव नहीं पहुँचता, इस काले पानी पर खुले तौरपर घूम-फिर सकते हैं, खा-पी सकते हैं, घरबार, खेतीबाड़ी कर सकते हैं। उनकी प्रेम-भरी वात्सल्य, कामुक भावनाओं को भी जन्म-भर पर्यवरोध नहीं होता और वे विवाह-सुख भी भोग सकते हैं।'

'हिन्दुस्तान ही में किसी कारागार की चारदीवारी में बन्द करके सजीव कब्र में गाड़ने के सदृश अवस्था में रखना दया है अथवा काले पानी सदृश उपनिवेश में उन्हें कठोर नियमों की कैंची ही में किन्तु पालतू बनाकर मनुष्यतापूर्वक जीवन का आनन्द कुछ-कुछ उपभोगने देना सच्ची दया है ?'

'यह सर्वथा सत्य है। आजन्म कारावास तथा दस-दस बरस की दीर्घ कैद की जिन्हें सजा हुई है ऐसों को भारतीय कारागृहों में बन्द करके रखने की अपेक्षा काले पानी सदृश उपनिवेशों में ही इस प्रकार धीरे-धीरे स्वतन्त्र रूप में बसने देना ही अधिक दयापूर्ण है।'

"पर उनमें भी अण्डमान के उपनिवेश की तो राष्ट्रीय हित की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व की एक और विशेषता है। उपनिवेशों को जीतने के लिए राष्ट्रों को युद्ध करना पड़ता है, पराक्रम करने पड़ते हैं। पर अपने राष्ट्र को यह एक नवीन उपनिवेश केवल अपने श्रम से संपादित करके इस पतित एवं परित्यक्त कैदियों के वर्ग ने प्राप्त कर दिया है। यदि ये सारे दण्डित हिन्दुस्तान के बन्दीगृहों में ही बन्द किये रखोगे तो उनके परिश्रम का, साहस का, बुद्धि का इतना उपयोग और इतना लाभ अपना राष्ट्र कभी नहीं उठा सकेगा ! इन दण्डित वर्गों में सैकड़ों लोग मूलतः अत्यन्त साहसी, दक्ष, कर्तृत्ववान् एवं कष्टसहिष्णु हुआ करते हैं !'

'इसमें क्या सन्देह ! ऐसे ही उद्दण्ड अपराधियों की सेना में भर्ती करके सैनिक अनुशासन में उनकी उस उद्दण्डता को उपयोग में लाकर कितने ही सेनापतियों ने बड़ी-बड़ी जीतें हासिल की हैं ; कितने ही राष्ट्रों ने अपने स्वातन्त्र्य संग्राम की लड़ाइयाँ लड़ी हैं !'

'ठीक है ! कंटक बाबू, तब राष्ट्र में रहते समय उपद्रवी सिद्ध हुए इन दण्डितों के उन सारे गुणों को और अवगुणों को भी कठोर निबंध के, सख्ती के, और भय के दबाव के नीचे उपयोग में लाने के लिए इस प्रकार से एकाध काले पानी को भेजना ही इष्ट है। उसमें सुधार जो संभव है वह करो; पर अदूरदर्शिता के वशीभूत हो अपात्र में दयाभाव प्रदर्शित करते हुए इस उपनिवेश को कभी बन्द नहीं करना चाहिए। पुनः यों देखिये कि इस जैसे काले पानी के उपनिवेश को न भेजते हुए उन हज़ारों दण्डितों को यदि हिन्दुस्तान के बन्दी-गृहों में ही, स्त्री को अलग और पुरुष को अलग कोठरियों के पिंजरों में ही जनमभर के लिए बन्द करके रखने लगेंगे तो तद्द्वारा उन हज़ारों स्त्री-पुरुषों की सन्तति से भी राष्ट्र बंचित रह जाएगा ! उसकी अपेक्षा काले पानी सदृश स्वतंत्र और नवीन उपनिवेश में उन दण्डित स्त्री-पुरुषों को विवाहित जीवन उपभोगने की सन्धि दी तो प्रेम की और वात्सल्य की कोमल भावनाओं के साथ-साथ उनकी खुद की मनुष्यता भी विकसेगी और उनकी सन्तति इस उपनिवेश की समृद्धि करके अपने राष्ट्र को एक नवीन प्रदेश जीतकर दे सकेगी ! आज ही देखिये न, एक नवीन प्रदेश ही नहीं, प्रत्युत इस अण्डमान में अपनी हिन्दू संस्कृति का एक नवीन जानपद भी समृद्धि प्रबल करता जा रहा है !'

'पर अप्पाजी, पापी, अपराधी और दुष्ट दण्डितों की सन्तति में भी वे अत्याचारी अथवा दुराचारी दुर्गुण पहुँच जाते हैं ऐसा अनु-वंश-विज्ञान का कथन बतलाया जाता है, उस बारे में आपका क्या कहना है ?'

"वह एक भ्रमभक्षित क्षुद्र तर्क है, और कुछ नहीं ! वैयक्तिक अथवा कौटुम्बिक दृष्टि से वह कितना सच्चा है या झूठ है यह मैं नहीं कहता; यह आस्ट्रेलिया देखिये, कनाडा देखिए, अफरीका के उपनिवेश देखिए, इंग्लैंड के अत्यन्त नृशंस और दुराचारी दण्डितों की तथा आजन्म कारावासियों की नावें भर-भरकर जिन दिनों वे देश निर्जन और सुनसान थे उन दिनों उन्हें वहाँ पहुँचाया जाता था। इंग्लैंड का वह एक काला पानी ही था। पर आज उन्हीं दण्डितों के वंशजों का एक-एक स्वतन्त्र राष्ट्र ही बन गया है। बड़े-बड़े वीर कार्यकर्ता, विधिमंडल के सभासद, निर्बंध पण्डित उन लोगों में निर्माण हुए। उनमें कितनों ही के परदादा चोर, डाकू, बलात्कारी, पापाचारी, दण्डित थे ! इस अण्डमान ही को देखिए। इस मेरे परिवार का उदाहरण लीजिए। मेरी पत्नी एक राजपूत स्त्री थी। हिन्दुस्तान में बचपन ही में उसकी शादी हुई। उसके पति की दो स्त्रियाँ थीं, उन सौतों-सौतों में भयंकर विद्वेष मच उठने पर पति इसी को मारापीटा करता था। इसके एक दुष्ट पड़ौसी ने इसे पाठ पढ़ाया कि, 'अपनी सौत को मैं जो मन्त्रित पुड़िया दे रहा हूँ वह अन्न में डालकर दे, इससे तू उसके कष्टों से मुक्ति पा जाएगी।' इसने उस पड़ौसी को अपने गले का सोने की मणियों वाला हार देकर वह मंत्रित पुड़िया ले ली और सौत के अन्न में डालकर वह उसे परोसा। वह पुड़िया ज़हर की थी। सौत तत्काल मर गई और इस अठारह-उन्नीस बरस की लड़की को उस भयंकर अपराध के कारण आजन्म कारावास की सज़ा सुना दी गई। पर उस सज़ा के आघात के साथ ही किसी भी तादृश दुष्कृत्य के विषय में उसके मन में ऐसा डर बैठ गया कि इसका स्वभाव अत्यन्त सरल एवं निर्बंधशील बन गया। मुझे जब शादी की अनुमति मिली तब मैंने उसी के साथ शादी की, दस-एक बरस उसने गृहिणी का कर्तव्य निरपवाद रूप से पालन किया। आगे चलकर वह मर गई। उसके पेट से मेरा जो इकलौता लड़का हुआ वह भी अच्छा ही निकला। ...

'उसकी पत्नी यह अनुसूया, मेरी स्नुषा। यह भी एक बंगाली कायस्थ की लड़की बाल विधवा हो गई। उसके देवर ने ही उसके साथ अनैतिक सम्बन्ध रखा और अन्त में उसके गर्भ रह गया। अत्यन्त उग्र औषध देकर उसके हाथों भ्रूणहत्या का भयंकर पाप करवाया! पर समाज-भय से उसने जो पाप किया वही एक दिन अनावृत हुआ। उसके देवर के लापता हो जाने के कारण उसी को आजन्म कारावास काले पानी की सज़ा हो गई। पर इतने पर से उसके स्वभाव पर ही किसी नित्यावस्थायी राक्षसीपने की छाप पड़ गई है क्या? उसने काले पानी की स्थिरीकृत सज़ा खत्म करके जब मेरे लड़के के साथ शादी की तब से इतनी प्रेमयुक्त सत्स्वभाव एवं कष्ट-सहिष्णु वृत्ति से वह हमारे घर में रहती आई है कि ऐसी स्नुषा देश में भी सौ में से कोई एकाध ही निकलेगी। दुर्दैव से दो-एक बरस पहले दुर्घटनावश वह मेरा लड़का समुद्र में डूब गया। पर उसके पीछे रहे हुए इन दोनों लड़कों का ही नहीं प्रत्युत मेरा ही संरक्षण वह किस प्रकार कर रही है, स्वयमेव रसोई-चौका, घर का काम चलाती हुई दारिद्र्य में भी कितने सन्तोष के साथ वह व्यवहार करती है यह आप ही देखिये! इन मेरे नातियों का, इन अपने दोनों बच्चों को यह मेरी स्नुषा अनुसूया जितना प्रेम से संरक्षण करती है, उसकी अपेक्षा कौन माँ अधिक वत्सल हो सकेगी?'...

'उसका कारण यही है कि, दुष्कृत्यों की चाट लगे हुऐ नराधम जिस प्रकार रहते हैं, तद्वद् दुष्कृत्यों से अत्यधिक घृणा प्रतीत होते हुए भी केवल असह्य अत्याचारों के भय से ही, इस क्षणिक बेसुधि की सनक ही में जिन लोगों के हाथों से दुष्कृत्य हो जाता है, ऐसे भी अपराधी मनुष्य रहते हैं। दण्डित वर्गों में से उन पहले राक्षसी प्रवृत्ति के अपराधियों को कठोर दण्ड के भय से सीधे रास्ते पर लाया जा सकता है। इन दूसरे पापभीरु प्रवृत्ति के अपराधियों को सहानुभूति के अभयदान से सुधारा जा सकता है; ऐतावता, दण्डित कहते ही वह मनुष्यों में से सदैव के लिए उठ गया, इतना ही नहीं उसकी

सन्तति भी वंशपरम्परया पाप-प्रवण ही रहेगी ऐसा समझना मूलतएव एक भ्रम-भक्षित क्षुद्र तर्क है ! और उस पर आधारित जो यह समझ कि दण्डितों के उपनिवेश की सन्तति भी जन्मतएव मनुष्यता से वंचित रहेगी ही, वह समझ तो जितनी भ्रम-भक्षित उतनी ही अत्याचारपूर्ण है ।'

'निःसंशय ! निःसंशय ! और अप्पाजी, उस क्षुद्र तर्क को जिस प्रकार अण्डमान की तरुण सन्तति ने असत्य सिद्ध किया है उसी प्रकार जाति-जातियों में भोजन-विवाह-व्यवहार प्रचलित किया तो संस्कृति निकृष्ट और प्रजा अधम हो जायेगी, ऐसी जो एक धार्मिक स्वरूप की भीति अपने देश में हिन्दू समाज का ग्रास बना रही है, वह कितनी भ्रान्त है, यह भी अण्डमान के इस नवोदित हिन्दू जानपद ने प्रत्यक्ष रूप से दिखला दिया है ! अण्डमान में गत पचास-साठ बरसों से सारी हिन्दू जाति और सारे प्रांतिक वर्ग सर्वमिश्र भाव से एकत्र बढ़ते चले आए हैं। पर्याप्त मात्रा में अस्पृश्यता की बेड़ी टूट चुकी है; भोजन-प्रतिबन्ध का कम-अज़-कम स्पृश्य वर्ग में तो स्मरण भी अवशिष्ट नहीं रह गया। बंगाली, पंजाबी, मद्रासी, मराठी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कौन-कौन हैं यह विचार तक नष्ट हो चुका है ! अपने परिवार ही को देखिए न ! आप महाराष्ट्रीय ब्राह्मण, पत्नी राजपूत क्षत्रिय, लड़के की शादी हुई बंगाली कायस्थ कन्या से ! अब आपके इन नातियों की जात हिन्दू-भर ही रह गई। अच्छा, इन संमिश्र रक्तबीजों के नाती भी कैसे हैं—तो ये मोहन और उषा ! कितने चतुर, दर्शनीय, सुशील ! पूना, बम्बई, कलकत्ते की किसी पाठशाला में ले जाकर छोड़ दें तो पहले पाँचों में ही चमकेंगे !'

'भाषा की दृष्टि से भी अण्डमान ने अन्य एक अभिनन्दनीय एवं सफल परीक्षण करके दिखाया है। यहाँ के सब हिन्दू जानपद की भाषा एक—हिन्दी !'

'पर अप्पा जी, सरकारी विचार-सरणी में एकमात्र बड़ी भारी

गलती हो रही है। वह यह कि हिन्दू लड़कों-लड़कियों को भी सारा शिक्षण उर्दू लिपि में ही ज़बर्दस्ती दिया जा रहा है। इस विषय में मात्र आन्दोलन करके नागरी को ही अण्डमान की कम-अज़-कम हिन्दू जानपद की तो एकमात्र लिपि बनाना चाहिए। अण्डमान में ऐसे अनेक सुधारों का करना और नवीन स्वतन्त्र पीढ़ी को अपने गुणों का विकास करने के लिए अनुकूल परिस्थिति प्राप्त करा देना—इन दो कार्यों को सिद्ध करने के लिए कुछ त्यागी पुरुषों का इसी उपनिवेश के उत्कर्ष के प्रश्न को अपने सिर पर ले लेना आवश्वक है।'

'हाँ कंटक बाबू, यदि तुम्हें यह स्वीकृत है कि इस अण्डमान के उपनिवेश में निर्माण हुआ जो यह एक नवीन जानपद है, वह अपने हिन्दुओं के सांस्कृतिक साम्राज्य में एक नवीन प्रान्त जीतकर जोड़ने योग्य महत्त्व का है, तो नवीन उपनिवेश का आर्थिक, सामाजिक, राजकीय और सांस्कृतिक उत्कर्ष करने का ही कार्य अपने जीवन का ध्येय मान लेना क्या यह राष्ट्रसेवा नहीं है? तब आप उसको अपने जीवन का इतिकर्तव्य क्यों नहीं समझते? कंटक बाबू, आप पाँच-छः बरस बाद 'दाखला' लेकर थोड़े-से स्वतन्त्र हो जाएँगे, यहीं विवाह करके बस जाएँगे। इस उपनिवेश में पाठशाला की, देवालय, संस्कार, संगठन आदि की जो कमी है, उसे पूरा कर डालिये। इस उपनिवेश को हिन्दुस्तान का, हिन्दू साम्राज्य का एक बलिष्ठ सामुद्रिक दुर्ग आजन्म कारावासी तुम सब लोग मिलकर बना डालो!'

'सचमुच अप्पाजी! सामुद्रिक दुर्ग के विषय में ही कहेंगे तो मैं जब पहले-पहल अण्डमान में उतरा था तभी इस टापू का सामुद्रिक महत्त्व मेरे ध्यान में आया था! शस्त्रास्त्र-संभार से सुसज्ज, फौलादी कवच के सदृश दुर्भेद्य—ऐसा यदि इस अण्डमान टापू का ही एक प्रचंड जल-दुर्ग बना डालें तो पूर्व-समुद्र में शत्रु के नाविक दल के मार्ग में वह एक प्राणग्राही सुरंग बन जाएगा।"

'और अब हम यूरोप की खबरें सुनते हैं, उन पर से, मनुष्य को विमानों की विद्या हस्तगत हो ही गई है, ऐसा दिखाई देता है। आज

भले ही लड़ाकू विमान अल्पमात्रा में हों तो भी पाँच-पचीस बरसों में बड़े-बड़े लड़ाकू विमान और सामान-ढोऊ विमानों के जत्थे आकाश में बिहरने लग जाएंगे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। एतावता आगे चलकर यह अण्डमान हिन्दुस्तान के पूर्व-समुद्र पर पहरा करने वाला एक लड़ाकू वैमानिक बेड़े का स्थान बने बगैर नहीं रहेगा! तब सांस्कृतिक, सामुद्रिक एवं वैमानिक दृष्टि से एतादृश अनेकविध महत्त्वों का यह उपनिवेश निर्माण करने, बनाए रखने एवं बढ़ाने के कार्य में जिन सहस्रावधि दुर्दैवी भारतीय बन्दियों की यातनाएँ, कष्ट, रक्त एवं जीवन आज पचास बरसों से यहाँ व्यग्रीभूत हुआ, वह राष्ट्र के ही उपयोग में आया, पापियों का रक्त भी पुण्यकार्यों के लिए बहा, ऐसा ही कहना चाहिए! इससे आगे भी जिनको यहीं जीना है, उन आजन्म कारावासियों को भी अपना जीवन इसी कार्य में लगाना चाहिए, यही उनका अपरिहार्य धर्म है!"

'इतना मुझे भी स्वीकार है। दूसरा मार्ग असम्भव हो तो अपने जीवन की सार्थकता इस उपनिवेश की जनसेवा ही में मानना चाहिए। पर मेरे लिए दूसरा मार्ग संभव है। मुझे तो ऐसा निश्चित रूप से प्रतीत होता है कि मुझे काले पानी पर से भाग जाने में सफलता प्राप्त होगी।'

'तुम्हें सफलता प्राप्त हो, ऐसी मैं प्रभु से प्रार्थना करूँगा। पर तुमने जो योजना बनाई वह अधूरी थी। निश्चित अवसर कब, किस प्रकार साधोगे यह सब ठीक कर लिया है?'

'नहीं, पर अनुसूयाबाई ने कंटकी को स्त्री-बन्दीगृह से बाहर विवाहेच्छु स्त्री-पुरुष बंदियों को पारस्परिक परिचय-प्राप्ति के लिए जो एक खुली जगह है, वहाँ झाड़ने-बुहारने के काम पर नियुक्त किया है। इसी कारण कंटकी निश्चित समय पर बंदीगृह से बाहर निकलकर उस स्थान पर आती-जाती रहती है। वहाँ मेरी और उसकी दूर से मुलाकात भी हुई है। बहुधा नजदीकी मुलाकात भी हो जायेगी। उसके पश्चात् जो कुछ स्थिर करना होगा सो करने का खयाल करता हूँ।

आज अनुसूया बाई पड़ौस के गाँव में गई है ऐसा पता चला है मोहन के कहने से, तब उनकी मुलाकात···'

'अब नहीं हो सकेगी यह सत्य है ! कल आएगी वह। तुम्हारे जाने का समय हो आया है न ?'

'हाँ अप्पा ! इस बीमारी के कारण आप और इस साहस के कारण मैं मृत्यु-दंष्ट्रा करालों में कब जा पड़ें इसका अब क्षण-भर का भी भरोसा नहीं, पर अप्पा, मैं जहाँ कहीं भी रहूँगा वहाँ से आपके इन नातियों की चिंता अपने औरस पुत्रों की भाँति ही करूंगा। अनुसूया बहन मेरे बंदीवास-काल की मेरी बहन है। मेरे दुर्दैव, संकट एवं दारिद्र्यपूर्ण स्थिति की भ्रातृद्वितीया के समय जिसने मेरी आरती उतारी उसे मेरे भाग्य में यदि कभी सगी बहन से भी अधिक सुदैव की भ्रातृद्वितिया आई तो अपने प्रेम और सहायता का अधिक उपहार दिये बिना नहीं रहूँगा। जाता हूँ अब, जाना ही चाहिए मुझे !"

रोगशय्या पर जर्जर होकर पड़े हुए उस वृद्ध वीर को उस प्रकार से बिठाकर कंटक ने उनके पैर अपने हाथों से ही ओढ़नी के बाहर निकालकर व्यवस्थित रूप में रखे और उनपर अपना माथा टेककर उनके समक्ष साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया।

'अप्पाजी, इस अण्डमान का उपनिवेश हिन्दू राष्ट्र के लिए कितना महत्त्व का है यह आप थोड़ी देर पहले बता रहे थे न ? इस टापू का सामुद्रिक और वैमानिक बेड़े के स्थान की दृष्टि से बहुत अधिक महत्त्व है, यहाँ एक नवीन हिन्दू जानपद का निर्माण हो रहा है, बड़े-बड़े नारियल के बगीचे, चाय बागान, रबड़ की पौध, प्रचंड वृक्षों के विस्तीर्ण अरण्यों में की नाना प्रकार की इमारती लकड़ी की अगणित पैदावार—यह सारी राष्ट्रीय सम्पदा महत्त्व की है। तथापि इस प्रकार की संपदा इतर उपनिवेशों में भी अपने हिन्दू राष्ट्र को लब्ध हो सकेगी। पर जो सम्पदा अन्य किसी भी उपनिवेश में नहीं मिल सकेगी ऐसी जो एक सम्पदा इस अण्डमान ही में संगृहीत है और इस भूमि ही में रखी गई है, जिस अमूल्य निधि के कारण अन्य किसी भी उप-

निवेश की अपेक्षा यह अण्डमान की भूमि अपने हिन्दूराष्ट्र के लिए अधिक अभिलाषणीय प्रतीत होगा, एक क्षेत्र भासित होगी, वह इस भूमि की हमारी राष्ट्रीय सम्पदा, इस भूमि की वह हमारी अनर्घ्य निधि है भवादृश सन् सत्तावन के सहस्रावधि राष्ट्रवीरों की इस भूमि में बिखरी हुई राख ! हिन्दुस्तान का अण्डमान का नाम लेते ही प्रथम उसी का स्मरण हो आएगा।"

'पर···पर इस तरह कहने वाला तू ही पहला हिन्दू मुझे गत पचास बरसों में दिखाई दिया है।" उदास निःश्वास छोड़ते हुए अप्पा जी बोले, "कैसा स्मरण लिए बैठा है। अरे, हिन्दूपद-पादशाही के सन्ताजी, धनाजी, बाजी, चिमाजी, भाऊ, विश्वास, मल्हार, महादजी प्रभृति शतावधि विजयी सेनापतियों का भाग्य यदि न भी हो, तो भी निराशा में और अपजय ही में सच्ची कसौटी पर चढ़ने वाला जो रण-चापल्य, निष्ठा, शौर्य, धैर्य, तितिक्षा, कार्यकृति एवं राष्ट्रभक्ति आदि गुणों से अंग्रेजों को नाकों चने चबवाने वाला उस अपनी हिन्दूपद-पादशाही का सर्वांतिम रण-धुरंधर सेनापति जो तात्या टोपे थे वे जिस स्थान पर स्वराज्य के लिए और स्वधर्म के लिए फाँसी पर चढ़े उस स्थान पर उनकी यादगार तक की एक शिला भी जिस इस कृतघ्न पीढ़ी ने आजतक खड़ी नहीं की, उसे अण्डमान में धिक्कृत होकर राख बने हुए हम सैनिकों का कैसा स्मरण होगा !"

"नहीं अप्पा, नहीं ! आज हिन्दू जाति अचेतन पड़ी है, मानता हूँ; पर वह मूर्च्छा है—मृत्यु नहीं ! इतिहास तो शपथपूर्वक कहता है कि ऐसी कितनी ही मूर्च्छाओं में से पुनः जाग खड़ी हो ऐसी उज्जीवक शक्ति इसी हिन्दू जाति में निवास करती है, यह निश्चित है ! दशमुखी रावण गए, शतमुखी गए !! अप्पा, ये भी दिन चले जाएँगे। नये-नये विक्रमादित्य अवतरेंगे—किंबहुना यह आपकी राख ही उनके उद्भव की खाद है—ऊरीकारोक्ति है !!"

"तथास्तु !! जब और यदि वैसा भाग्य का दिवस कभी सचमुच ही प्रकट हुआ, तो इस अण्डमान में बिखरी हुई यह हमारी राख···"

"संकलित की जाएगी और उस पर यह कृतज्ञ हिन्दू राष्ट्र एक उत्तुंग स्मृतिस्तूप खड़ा करेगा ! और इस पूर्व समुद्र में से होकर जाने-आनेवाली हिन्दुओं की प्रत्येक रणनौका उस स्मृतिस्तूप को तोपों की रणवन्दना दिए बगैर यहां से आगे एक कदम नहीं रखेगी !! "

कंटक के इस वचन के सुनते ही उस वृद्ध वीर का शरीर रोमांचित हो गया, उसकी जर्जर देहयष्टि में तरावट आ गई, उसके नेत्रों के सामने कोई उत्तुंग स्मृतिस्तूप दीख ही रहा हो ऐसा उसकी अनिमेष दृष्टि पर से भासित हुआ। दो-एक क्षण पश्चात् उस अनिमेष दृष्टि को आकाश पर से हटाकर कंटक की तरफ फेरते हुए वृद्ध वीर सकंप स्वर से बोला :

'कंटक, सत्तावन के क्रांति-युद्ध के अनंतर, सहानुभूति की और मेरे राष्ट्र के पुनरुत्थान की सुभव्य आशा की याद दिलाने वाले ये ऐसे शब्द चालीस वर्ष के पश्चात् मैंने आज ही फिर सुने हैं। देख, मेरे हृदय के भीतर अत्यंत गहराई पर दबाकर रखी हुई मेरी पूर्व-कालीन आकांक्षाओं की ऊर्मियाँ एक-आध तूफान की मानिन्द मेरे रक्त में से उत्स्फूर्त हुई आ रही हैं ! मुझे कंटक, सहन होता नहीं इन अनुकूल भावनाओं का कल्लोल कंप, यह हृदय की तीव्र गति।'

उतने में ही चौकी बन्द होने की घण्टी दूर पर से बजती हुई सुनाई दी ! 'घंटी !' वृद्ध वीर चौंक उठा, 'जा, कंटक जा, अन्यथा पकड़ा जाएगा !" जल्दबाजी से कंटक उठा और लुढ़कते-छिपते उस टीले पर वेग से चढ़ता चला गया।

और दो-तीन दिन के भीतर ही सन् सत्तावन के क्रांति-युद्ध के कारण काले पानी पर गए हुए उन सहस्रावधि हिन्दू सैनिकों में से उस कारण काले पानी पर गए हुए उन सहस्रावधि हिन्दू सैनिकों में से उस आखिर के वीर वृद्ध का भी अन्त हो गया !

उस दिन उसकी उस सूनी झोपड़ी में उसकी याद दिलाने वाले दो फूल ही पीछे बच गए थे—मोहन और उषा।

१६. अन्दमान के सघन वनों में

अन्दमान के जंगलों में घर बाँधने के काम में उपयोगी लड़की इतनी अच्छी, मजबूत और सुन्दर मिलती है कि यूरोप के बाजारों में भी उसके लिए भरपूर मांग बनी रहती है।

आज कंटक जंगल-तुड़ाई के जिस विभाग में काम किया करता था, उस टुकड़ी के लिए अरण्याधिकारियों की विशेष आज्ञा हुई थी कि, लकड़ियों की यूरोप से आई हुई नई मांग को पुराने के लिए आज अरण्य के नये भाग में प्रविष्ट होकर तुड़ाई का काम चालू करना है। चाहे नये घने जंगल में प्रथमतः प्रवेश करते समय मूल निवासी जावरा लोग सदैव प्रतिरोध करने के लिए नहीं आया करते थे पर कब आ जाएँ इसकी निश्चिति भी कुछ नहीं थी। इसलिए कंटक ने भी अपनी टोली में हमेशा के आलतू-फालतू कैदियों को न लेते हुए निर्भीक, कष्टसहिष्णु और जंगल-तुड़ाई के काम में अभ्यस्त कैदियों को चुना। उनमें रफीउद्दीन तो था ही। वह यदि करने बैठा तो ऐसे श्रमसाध्य काम किया करता था और जंगल तुड़ाई के काम में तो वह पहले जब काले पानी पर था तभी से इतना प्रवीण हो गया था कि, उसके भागा हुआ कैदी होने पर भी जंगल की लकड़ी तोड़ने की आमदनी बढ़ाने के काम के लिए, उसके बंदोबस्त की उत्तरदायिता अपने ऊपर लेकर उस टोली के मुख्य जमादार ने उसे बुद्धिपूर्वक मांग लिया था।

गत दो-तीन दिन कंटक के साथ रफीउद्दीन के भाग जाने की गूढ अभिसंधि के विषय में खूब चर्चा हुई थी। पर स्थिरस्वरूप का कोई भी निश्चय जमा नहीं पाता था। इतने में यह जरूरत वाला सरकारी काम आ पड़ा। अंत का अवसर हाथ में आने तक और उसके पाने की इच्छा ही से कंटक और रफीउद्दीन दोनों सरकारी कामों में खूब श्रम करके अधिकारियों का विश्वास एवं वाह-वाह प्राप्त करने में रत्ती-भर भी कसर नहीं रखते थे। इसी नीति के कारण उस

घने भयंकर अरण्य के अप्रविष्ट पूर्व भाग में घुसने और जावराओं के यदा-कदाचित् होने वाले प्राणग्राही छापे का भी मुकाबिला करने के साहसकार्य में सबसे अगली टोली में वे दोनों आज प्रविष्ट हुए थे। उनका सारा ध्यान आज उस काम ही में केन्द्रित हुआ था।

मुर्गे के बाँग देने से पूर्व ही बैरक की घंटी हुई। आधे घंटे के भीतर सौ-दो-सौ कैदी मैदान में क्रम से खड़े हो गए। प्रत्येक के एक-एक पैर में शृंखला कमर से लेकर टखने तक जकड़ी हुई थी और एक पैर खुला था। "एक, दो, तीन"—इस प्रकार गिनती हुई और दो सौ की टोली को एक ओर निकाल लिया गया।

जंगल आते ही उस टोली की स्थिरीकृत टुकड़ियाँ बनाई गईं और तुड़ाई-फुड़ाई तथा तराशने का काम शुरू हुआ। आध मील लम्बाई के जंगल के टापू में जिधर-तिधर चिल्लाहट तथा काम धूम-धड़ाके से शुरू हो गया।

दोपहर के बारह बजे तक उन कैदियों की हड्डियाँ आरे और कुल्हाड़ी चलाते-चलाते पूरी तरह खीलों की तरह खिल गईं! बारह बज गए हैं यह तब मालूम पड़ा जब घण्टी बजी। कारण, सवेरे की तरह मध्याह्न में भी इस जंगल की घनी झाड़ी में और सदा अभ्राच्छादित एवं टपकने वाले वातावरण में स्वच्छ प्रकाश तो कभी पड़ता ही नहीं था। घण्टी बजते ही सारी टुकड़ियाँ दौड़ते-धूपते टाल के सामने आईं। फिर 'एक-दो-तीन—दो सौ' कैदियों की गिनती कर ली गई। उनकी संख्या उतनी ही थी जितनी सवेरे थी।—परिस्थिति में कितना अन्तर आ गया था! कोई पैरों में जहरीले काँटे गहरे गड़कर टूट जाने के कारण लंगड़ा रहा था, कोई लकड़ियों के नीचे आ जाने के कारण अथवा वॉर्डर जमादार द्वारा पिटाई के कारण खून से तर होने तक घायल हो गए थे, बहुत-सों ने दलदल में का कीचड़ अपने सारे शरीर पर थोप रखा था—वह बारिश की वजह से धुल गया कि फिर शरीर पर कीचड़ मल लिया—कारण, जंगल में संचित हुए पत्रों-पर्णों के रेंदे में जो जोंकें भरी रहती थीं वे नीचे से शरीर के

ऊपर चढ़ती थीं और ऊपर से लाखों मच्छर-ततइयाँ-प्रभृति ज़हरीले प्राणी शरीर पर केवल आग लगा देते थे।

बारह की घण्टी होते ही भोजन आया। भूख से अकुलाए हुए वे सारे दण्डित झाड़ों-झुरमुटों की आड़ में, उस स्थिति में जैसे भी बैठना सम्भव हो सका वैसे बैठ गए। मोटी-झोटी रोटियों की राशि आते ही वह मैं अकेला ही खा डालूँ ऐसी इच्छा हर-एक के मन में उत्पन्न हुई। दो-दो चपातियाँ और सब्जी-तरक़ारी का एक-एक लगदा उनके हाथों पर डाला गया। जंगल-तुड़ाई की टोलियों को ऐसी घाँघली के दिन थाली तक लेने की सुविधा नहीं रहती। एक हाथ की थाली बनाकर उसके ऊपर चपाती और भाजी का लगदा लें, दूसरे हाथ से खाएँ। ऊपर से बारिश ! खाते-खाते चपातियों का नरम आटा बन जाता था और भाजी वह निकलती थी !

जमादार, सैनिक और कंटक बाबू इतनों ने वहाँ बाँधे गए तात्कालिक झोपड़े में भोजन किया। उनकी जी-हुजूरी करनेवाले कैदियों में से कुछ वसीले के टट्टू भी झोपड़े में लार टपकाते हुए घुस सकते थे, एकाध अधिक चपाती भी उनके सामने फेंकी जाती थी। रफीउद्दीन भी इन्हीं वसीले के टट्टुओं में रहा करता था, यह कहने की आवश्यकता ही नहीं। कारण जमादार, हवलदार, सैनिक तक टोली के ऊपर जो मुख्य 'बाबू' रहता है उससे जरा सम्भलकर रहते हैं। कंटक तो केवल बाबू ही नहीं था, प्रत्युत अपने उत्कृष्ट काम से तथा निःस्पृह बृत्ति से वह अंग्रेज़ अधिकारियों के भी पसन्द का हो गया था। उसके सामने वे लोग विशेष ही दबकर रहते थे। इनकी अनेक गलतियों पर तथा ऊटपटाँग कामों पर यदि कोई पर्दा डालेगा तो वही डालेगा, और उस कंटक बाबू के पीछे लांगूल-चालन करने में रफीउद्दीन प्रवीण साहसी और कठिन श्रमों के कामों के कारण जमादार को भी अभीष्ट-सा हुआ था।

भोजन की छुट्टी समाप्त होने पर अब पूर्व-निर्धारित विचार के अनुसार कंटक का काम उस दिन-भर के लिए इतना ही बाकी रह

गया था कि रास्ता बनाए गए आधे मील के उस टापू में रास्ते के आसपास जो भी उपयोगी वृक्ष हाथ लगे उस पर यथासाध्य तार-कोल से क्रमांक डालना और साँझ को पाँच बजने से पहले-पहले लौट आना। उसके लिए रफीउद्दीन के साथ चार-पाँच कैदी संग में लेकर कंटक बाबू फिर उस जंगल में उस नवनिर्मित रास्ते से होकर घुसा। उसके आगे-पीछे पहरा देने के लिए और रक्षण के लिए वह बन्दूक वाला सशस्त्र सैनिक भी गया। बाकी के सौ-डेढ़ सौ कैदी लकड़ियों के तोड़ने-फोड़ने का काम सवेरे वाली जगह पर ही करने लग गए। बचे हुए बन्दूक वाले सैनिक उन्हीं में विभक्त कर दिए गए थे।

बारिश बराबर पड़ रही थी। उसमें भी कंटक वाली टोली जिस निविड़ अरण्य में गई हुई थी, वैसे अरण्य में तो ऊपर के आसमान की बारिश घण्टे-भर के लिए रुक भी जाए तो भी जंगल के भीतर की बारिश नहीं रुकती।

ऐसा अंधेरा और पानी देखकर पाँच बजे तक न ठहरकर चार बजे ही लौट चलें, ऐसा कंटक ने पहरे वाले सैनिक से कहा। वह तो पूरी तरह तैयार था ही। लगातार कन्धे पर बन्दूक रक्खे-रक्खे वह इतना परेशान हो गया था कि उतने परेशान जंगल-तुड़ाई के कष्ट से वे कैदी भी न हुए होंगे। इस समय साथ के दो-तीन कैदियों को निशानी लगाए हुए वृक्षों पर क्रमांक डालने का काम सौंपकर कंटक और सैनिक उस नये रास्ते के परली ओर के सिरे तक जंगल में घुस गए थे। रफीउद्दीन उनसे भी आगे कुछ फासले पर विद्यमान खाड़ी की एक शाखा के समीप पहुँचा हुआ था। समुद्र काफी दूर था। उसकी खाड़ी भी उन वृक्षों की आड़ में छिपी हुई थी। परन्तु उसकी एक सँकरी किन्तु गहरी शाखा दूर तक जंगल में घुसकर उस जगह खत्म हो गई थी। उस शाखा के कारण वहाँ थोड़ी-सी खुली जगह मिल गई थी। कंटक उस सैनिक के साथ वापस चलने का विचार कर ही रहा था कि उस शाखा तक आगे पहुँचे हुए रफीउद्दीन ने दबी जबान में कंटक को पास बुलाया। कंटक झपटकर आगे आने लगा, त्यों ही

उसका हाथ पकड़कर उसके साथ एक दीवार जैसे वृक्ष के बुन्धे की आड़ में खड़ा होकर रफीउद्दीन संशयी स्वर में बोला :

"बाबूजी, वो देखो ! ···वे गीध, चील और वे कौए इस खाड़ी की शाखा के किनारे मरे पड़े हैं ! यह चिह्न कुछ ठीक नहीं हैं !"

"क्यों रे बाबा, इससे पहले सजीव एवं अजस्र अजगरों को देखकर डरा नहीं और इन मरे हुए पखेरुओं को देखकर फक्क पड़ा जा रहा है !" वहाँ इतने में वह बन्दूक वाला सैनिक भी आ गया था, उसकी ओर देखकर कंटक हँसा।

"देखो, मरी चिड़ियों को देख रफीउद्दीन डरते हैं ! भूत-प्रेत जीव-पक्षियों का रूप धारण करके भटकते हैं ऐसा जंगली लोग समझते हैं, वे ही ये पक्षी हैं ऐसा कदाचित् इसे प्रतीत हो रहा है !"

"नहीं बाबूजी, नहीं ! यह चेष्टा (मज़ाक) की बात नहीं ? देखो, इन जंगली लोगों में मैं पहले जब भाग गया था उसी समय खूब रहा हूँ। इन्हें यदि किसी पर गुप्त छापा मारकर उनकी हत्या करनी हो तो ये लोग आसपास के चीलों, गीधों और कौओं को मार डालते हैं। कारण उनकी ऐसी धारणा रहती है कि ये पक्षी उनकी गतिविधियों का समाचार उड़ते हुए जाकर शत्रुओं को बता देते हैं ! चूंकि ये अखिल भूत पक्षी यहाँ आज ही मारे गए पड़े दीखते हैं अतः···"

"धाँय, धाँय, धाँय" करके बन्दूक की आवाज़ उसी क्षण कैदियों की मुख्य टोली जहाँ काम करती थी उस ओर से सुनाई पड़ी ! उसके बाद ही हो-हल्ला और शोर-शराबा सुनाई दिया ! त्योंही ऊँचाई पर उस झोंपड़े के नज़दीक विद्यमान घण्टी की 'घनघनाहट' शुरू हो गई !

"जावरे आ पहुँचे ! हमारी टोली पर ज़रूर वे टूट पड़े होंगे और सैनिकों ने उन पर बन्दूकें चलाई होंगी !" रफीउद्दीन ने भर्राई हुई आवाज़ में पर निर्भयतापूर्वक अनुमान लगाया।

उस पर सबमें अधिक यदि कोई घबराया होगा तो वह था उनकी रक्षा के लिए आया हुआ पहरेदार, वह बन्दूक वाला सैनिक !

"अरे बाप रे ! तब अब हम क्या करें ? बता बाबा एक बार !

बोल बन्दूक चलाऊँ क्या मैं भी ?"

"नहीं-नहीं !" कंटक ने उसे रोक दिया, "केवल पेड़-पत्तों पर बन्दूक छोड़ने से क्या बनेगा ? उलटे हम इस जगह हैं यह उन जावरों को मालूम नहीं तो भी मालूम पड़ जाएगा और वे इस झाड़ी में घुसकर हमें भी घेर लेंगे ! मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि हम अब अपना धीरज न खोते हुए इसी प्रकार इस रास्ते से वापिस जाकर मुख्य टोली से जा मिलें।"

सैनिक को तो वही अभीष्ट था। उसने अपने मन में कहा :

'अगर कोई जावरा हम पर चढ़ आएगा तो वह दलदल की ओर से ही आएगा। लौटते समय हमारी पीठ इसी ओर को रहेगी, ऐसी अवस्था में इन कैदियों के आगे-आगे मैं चलूँ तो उसमें अपनी जान को खतरा कम रहेगा। जावरों के दलदल की ओर से आने वाले बाण प्रथमतः इन्हीं में से किसी की पीठ में घुस जाएँगे। मैं आगे का आगे निकलकर भाग खड़ा होऊँगा !' मन में तो इस किस्म का डर पर ऊपरी तौर पर उलटे धैर्य का अभिनय करता हुआ वह सैनिक बोला :

"हाँ चलो सारे ! अरे डरते क्या हो इस तरह ! यह देखो तुम्हारे आगे-आगे चलता हूँ चार कदम ! जावरे हैं क्या ? उन्होंने इन पक्षियों को जिस तरह मार गिराया है, उसी तरह मेरी यह बन्दूक उन्हें पटापट मारकर नीचे गिरा देगी। चलाव !"

"सैनिक आगे-आगे रास्ते पर चलने भी लग गया। कंटक और रफीउद्दीन उसके पीछे-पीछे हो लिए। पर सैनिक की उस पुरोगामिता की कमजोरी रफीउद्दीन और कंटक के ध्यान में आ चुकी थी, अतः कंटक ने उस सैनिक की उस दिखावटी बहादुरी को देखकर सिर्फ अपनी आँख मटकाकर ही अपनी अद्भुतानुभूति को रफीउद्दीन पर व्यक्त किया। पर रफीउद्दीन से उस खतरे और घाँधली के समय भी मजाक किये बगैर नहीं रहा गया। वह उस ऊबड़-खाबड़ और कँटीले रास्ते को झपट्टे के साथ तय करते हुए ही कुचेष्टापूर्वक बोला :

'हवलदार जी ! देखो ये जावरा लोग रहते हैं तो बड़े ही शूर !

उनकी रीति ऐसी है कि जिन पर छापा मारना होता है उनपर वे पीठ पीछे से कभी बाण नहीं छोड़ेंगे ! रास्ते में जो उनके मुंह के सामने रहेगा उसी के सामने आकर रास्ता रोक करके खड़े हो जाएँगे और सामना देकर बाण मारेंगे।"

रफीउद्दीन की यह गप्प सुनते ही सैनिक का मुंह एकदम काला पड़ गया ! मैंने आगे होकर ही अपनी जान खतरे में डाल ली, ऐसा मन में आते ही वह इतना घबराया कि जावरों का बाण सामने से सांय-सांय करते हुए आ ही रहा हो ऐसी उसकी अवस्था हो गई। अब अपने डर को छिपाकर सहज ही पीछे रहने के लिए कौन-सा बहाना ढूँढ़ा जाए ? खाँसते-खाँसते उसे एक बहाना भी आखिर मिल ही गया। बहाना भी एक नम्बर का था !

एकाएक रुककर बन्दूक को ज़मीन पर टेककर हवलदार जी ने कारतूसों की पेटी निकाली। उसके रुकते ही रफीउद्दीन और कंटक भी थोड़े-से रुक गए। उन्हें डाँट बताकर हवलदार जी ने आज्ञा दी :

'क्या गंवार हो ! चलने लगो न झपझप। बन्दूक में कारतूस भरकर तथा पट्टा बाँधकर आता ही हूँ मैं ! डरते हो क्या अकेले चलने के लिए इस तरह ?'

वह समय सचमुच एक पल-भर भी ठहरने का नहीं था, यह कंटक जानता था। मज़ाक जान पर आ सकती है अतः केवल उपहंसने से जितना मनोविनोद किया जा सकता है उतना ही करके कंटक आगे चल पड़ा। उसीके साथ रफीउद्दीन। थोड़े-से फासले पर उन्हें आगे बढ़ा हुआ देखकर कारतूसों से भरी हुई अपनी बन्दूक फिर कन्धे पर डालकर हवलदार जी भी अब उनके पीछे-पीछे चलने लगे। जावरे रास्ते में आए भी तो सामने से आएँगे, उनके तीरों के सामने इन कैदियों की छाती की ढाल रहेगी और उसके पीछे हम रहेंगे। उस परिस्थिति में जितना सम्भव था उतना आत्मरक्षा का उपाय हुआ देखकर हवलदार को भी पर्याप्त मात्रा में संतोष प्रतीत हुआ।

दो-अढ़ाई सौ गज उस दुर्गम पादमार्ग से उस निविड़ अन्धकार-

पूर्ण एवं पानी बरसाने वाले अरण्य में से होकर वे तीनों उस मुख्य टोली की तरफ जाने के लिए वापिस हुए ही थे कि त्योंही :

दलदल के किनारे की निविड़ झाड़ी में स्थित एक ऊँचे वृक्ष पर से उस सारी हलचल पर काफी देर से निगाह रखने वाले दो मैले-कुचैले जावरे नीचे उतरे, झाड़ी में से सर्प की भांति सरसराकर बाहर निकले और उनकी पीठ के पीछे तक चले आए। तीर अचूक मारने योग्य विश्रांति और सुविधा के मिलते ही उन्होंने अपने-अपने धनुष तानकर दस-पाँच बाण, उस पीछे रहे हुए बन्दूक वाले हवलदार की पीठ पर ही झनझनाते हुए छोड़ दिए !

"बाप रे ! मरा ! जावरे ! मरा !" इस तरह अकस्मात् चिंघाड़-कर वह सैनिक बन्दूक के सहित मुँह के बल गिर पड़ा ! पीछे की ओर मुड़कर देखने तक का उसे अवसर नहीं मिला। अचानक उसकी पीठ में दो जहरीले बाण जो घुसे वे रीढ़ की ओर से सीधे पेट में जाकर धँस गए। उसकी पीठ पर धँसकर रहे हुए उन बाणों के सिरे पर के पर उड़ते हुए पक्षी के सदृश थरथरा रहे थे, इतना आवेग और त्वेष उनमें भरा हुआ था !

उस चिंघाड़ के सुनते ही कंटक खट् से पीछे मुड़ा और सैनिक की तरफ को दौड़ा। पर रफीउद्दीन ने उसका हाथ तत्काल पकड़ लिया और उसे झाड़ी के भीतर खींच लिया ! ...

"बाबूजी, छुप जाव छुप जाव, पहिले !"

कंटक और रफीउद्दीन, जान पर आ पड़ते ही मनुष्य तत्काल केवल शारीरिक प्रतिक्रिया के कारण ऐसा कुछ कर जाता है, वैसे उस झाड़ी में जा छिपे। न काँटे, न जोंक, न साँप, न पत्तों-पत्तियों का गीला-गीला कीचड़ ! उनके ध्यान में भी ये न्यूनतर उपद्रव नहीं आए। खड़े-खड़े अन्दर घुसना सर्वथा असम्भव ! वे सर्प की भाँति उस गीले कीचड़ में से सरसराते हुए जहां तक जाना सम्भव हुआ वहाँ तक झाड़ी के भीतर घुसते चले गए। अपने हाथ में की कुल्हाड़ी मात्र उन्होंने छोड़ी नहीं। पाँच-छः मिनट तक उनके मन में और

हृदय में चिन्ता तथा धुड़धुड़ी के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु की अनुभूति नहीं थी। उसके बाद कंटक के एकदम खयाल में आया कि सैनिक जो गिर पड़ा है, उसके हाथ में भरी बन्दूक और कमर में कारतूसें उसी तरह हैं ! यदि जावरों के हाथ में वह पड़ गई तो बड़ा भारी अनर्थ टूट पड़ेगा !

"जावरों को बन्दूक की उतनी हविस नहीं रहती—रफीउद्दीन बोला, "और अब झाड़ी से बाहर निकलने पर जान का खतरा है !"

"पर बन्दूक को उसी तरह छोड़ देने में तो वह खतरा और भी भयानक स्वरूप का हो जाएगा ! किसे मालूम, वे उसे लेकर चल ही दें ! पुनश्च इस परिस्थिति में बन्दूक के अपने हाथ में रहने ही में अधिक मजबूती और सुरक्षितता है !" इस प्रकार के आग्रह के साथ कंटक छिपते-छिपते फिर झाड़ी के मुखाग्र पर आया। चारों तरफ सन्नाटा देखकर झटपट आगे की ओर बढ़ा। बन्दूक, कारतूसें, शिकारी चाकू और खंजर निकाल लिए। सैनिक के मुँह में से खून की उलटियाँ चालू थीं। उस खून में उसका शव बुरी तरह सन गया था।

"मर गया बेचारा !" इस प्रकार निःश्वास छोड़कर कंटक उन हथियारों सहित फिर झाड़ी में घुस गया।

रफीउद्दीन बोला :

"एक-दो हवा में बन्दूक की आवाजें कीजिए। जावरे बन्दूक की आवाज़ों से बहुत बिदकते हैं। आसपास कहीं होंगे तो आगे घुसेंगे नहीं। नहीं तो उस सैनिक की पीठ में घुसे हुए अपने बाण निकाल लेने के लिए वे कदाचित् चले आएँ। उनके समीप बाण इने-गिने ही रहते हैं। शिकार करते समय छोड़े गए बाण ही वे फिर यथासम्भव ढूँढकर निकाल ले जाते हैं। उन्हीं को ठीक करके फिर काम में ले आते हैं।'

उसके अनुसार कंटक रास्ते के किनारे तक आया और एक-दो बन्दूक की आवाजें कीं। और फिर उसी झाड़ी में वे दुबके पड़े रहे।

टोली के सैनिक और जमादार कुछ लोगों को साथ लेकर उन्हें छुड़ाने के लिए किंवा खोजने के लिए हर हालत में उस रास्ते से हो-

कर आएंगे ही ऐसा उन्हें एक मर्तबा प्रतीत होता था। पर संकट-घंटा (Alarm Bell) जो बज रहा था और जो सुदूर टीले पर से हो-हल्ला बीच-बीच में से पहले सुनाई देता रहा था वह अब बिल्कुल बन्द पड़ गया था। उस पर से उन्हें कभी-कभी लगता था कि जावरों के प्रहार से डरकर उन सारे कैदियों को लेकर जमादार सरकारी बैरकों की ओर वापिस भी चला गया होगा।

कंटक ने पूछा :

"जावरों के कितने लोग छापा मारने के लिए आए होंगे ?"

रफीउद्दीन ने उत्तर दिया :

"कितने सौ पूछते हो ! सैकड़ों में तो वे लोग कभी आते ही नहीं ! हैं ही सिर्फ मुट्ठी-भर बेचारे ! वे लोग जब आते हैं तब वे सिर्फ पाँच-पचास धनुर्धर ही रहते हैं। झाड़ियों में दुबककर पाँच-पचास ज़हरीले बाण अकस्मात् मारकर, दस-बीस मुर्दे गिराकर भाग जाना, यह उनकी लड़ाई है ! घनी झाड़ी, अँधेरी, और मार्ग शून्य ! बन्दूक वालों की सेना भी निकम्मी साबित होती है उनका पीछा करने के लिए। उस सुविधा के कारण ही वे अभी तक इस जंगल के राजा हैं। हाँ, अब ये जो विमान तैयार हो रहे हैं ऐसा कहते हैं न, उस प्रकार का कोई साधन निर्माण हुआ तो उस समय आकाश में से दृष्टि डालकर जावरों के निवास-स्थानों को अचूक रूप से पता चलाने में और सौ-सवा सौ भयंकर स्फोटक गोलक ऊपर से फेंककर जावरों का सत्यानाश करने में अंग्रेज को एक सप्ताह भी नहीं लगेगा ! पर वह आगे की बात है।"

वे दोनों हथियारबन्द होकर धीरे-से झाड़ी से बाहर निकले। देखते-देखते वे लोग रास्ते के प्रारम्भिक भाग तक आए। देखते हैं तो क्या चारों तरफ सुनसान—सन्नाटा !

कारण, चार-पाँच बजने के बीच में जब उस टोली के कैदियों पर घनी झाड़ी में से होकर दस-पन्द्रह जावरों ने भिन्न-भिन्न स्थानों से ज़हरीले बाणों की अकस्मात् वृष्टि की, तब उन कैदियों में से दस-बारह कैदी घायल हो गए। यह देखते ही उस टोली में भगदड़ मच

गई थी। बन्दूक वाले जो दो आदमी थे उन्होंने बन्दूकें चलाईं, पर वे गोलियां और छर्रे उस घनी झाड़ी के पत्तों-पत्तियों में न जाने कहाँ बिला गए! बस संकट-घंटा बजाया, जितने कैदी इकट्ठा हुए उन्हें लिया, घायलों को इसके-उसके कन्धों पर चढ़ाया और बैरकों की तरफ वापिस हो लिए। जावरों ने उनकी फेरी हुई पीठों पर भी ज्यों ही और चार-पाँच बाण ताने त्यों ही वह सारी की सारी टोली सिर पर पैर रखकर जो भागी सो भाग ही खड़ी हुई। उसने इधर-उधर का और कुछ नहीं देखा।

बैरकों की तरफ आते ही अरण्य विभाग के अंग्रेज अधिकारी को सैनिकों ने और जमादार ने सारी बातें सुई का सुआ करके सुनाईं···

"जावरों की एक सेना की सेना उस जंगल में युद्ध के लिए आई हुई है साब!"

"कितने होंगे वे जावरे साधारणतः?" साहब ने पूछा।

"हजार-एक तो होना ही चाहिए!"

उस टोली के लोगों की इस तरह दुर्गति कर चुकने के बाद वे बीस-पच्चीस जावरे भी उस जंगल में से भागकर अपने सुदुर्गम एवं सुदूरवर्ती ग्रामस्थान की ओर चले गये थे।

इस रीति से कैदियों की टोली में किंवा जावरों में से कोई भी उस रास्ते के अगले तथा पिछले अरण्य में बाकी नहीं रह गया था, एतस्मात् कंटक और रफीउद्दीन दोनों जब वहाँ पहुँचे तो उन्हें सर्वत्र निःशब्दता तथा स्तब्धावस्था दिखाई दी।

तादृश स्तब्धावस्था में, उस प्रकार के प्राणों पर आ पड़े हुए संकट-प्रसंग में अथवा उस घोर अरण्य के काले-काले होते जाने वाले जबड़ों में अपने को पड़ा हुआ देख एक विशेष दिङ् मोहक भीति के कारण उन दोनों के हृदय हिल उठे! और दोनों ही के मन की प्रवृत्ति नव-नवीन भीषण संकटों का ग्रास बनने के बजाय सरल मार्ग से सरकारी बैरकों की तरफ जाकर अपने बन्दी बन्धुओं से और अधिकारियों से मिलने की ओर होने लगी।

पर दोनों ही के मन में भाग खड़ा होने की सनक, पेट में उठने वाली मरोड़ की तरह, निरन्तर सवार होती जा रही थी। उन्हें चैन नहीं लेने देती थी।

रफीउद्दीन ने इसके पहले कंटक को जब स्पष्ट रूप से सूचित किया कि 'काले पानी के कैदखाने को तोड़कर भागना हो तो उसके लिए यही सबसे बढ़िया मौका हैं!' तब उससे भी पहले कंटक के मन में वही साहसपूर्ण कल्पना आई थी! पर उस कल्पना के साथ ही उसे याद आया कि,

'अरे, भागना तो अवश्य है; पर मुझे अकेले ही को नहीं भागना है; अपने साथ मालती का भी छुटकारा कराकर उसके सहित निकल भागना है। यदि अब इस प्रकार अकेला ही मैं अरण्य में घुस गया, तो पुनः मालती को कैदियों के उपनिवेश से छुड़ाकर लाने का पीछे की तरफ का पुल ही उड़ा दिया-जैसा हो जाएगा! एक दफा अरण्य में घुसा कि फिर उपनिवेश की ओर आना ही असम्भव हो जाएगा। इस प्रकार अतर्कित रूप से आज ही मौका आ जाएगा, इसका सपना तक नहीं आया था। अन्यथा उसे कोशिश से छुड़ा लाने की कोई न कोई योजना पहले ही से तैयार करके तब आज का मौका साधा होता।'

इस एक अड़चन के कारण कंटक तत्काल भाग जाने के रफीउद्दीन के आग्रह पर ठीक से 'हाँ' भी नहीं कह पाता था और 'ना' भी नहीं कह पाता था। रफीउद्दीन को कंटक की इस असली कठिनाई की जानकारी ही नहीं थी। इस कारण उस मौके के अन्य लाभों को कंटक के हृदय पर बिंबितकरने का पुनः-पुनः प्रयत्न करके वह अन्त में बोला :

"बाबूजी, सबसे बढ़कर बात यह है कि आज सरकार आपका पीछा भी नहीं करेगी! और चार-पाँच दिनों तक तो सरकार को ऐसा ही प्रतीत होता रहेगा कि, हम भागे नहीं हैं प्रत्युत जावरों ने ही हमें उस सैनिक की भाँति इस जंगल में कहीं घेरकर मार डाला होगा! सरकारी लोग हमारी खोज में यहाँ आएंगे, पर 'भगोड़े' समझकर

नहीं प्रत्युत 'मारे गए' समझकर ! और इसी जंगल में खोजेंगे पहले-पहल। इससे बढ़कर सहूलियत और कौन-सी मिलेगी अपने को !"

"दो-चार दिन पहले यदि यह मौका आता तो मैं ही इस भाग खड़े होने के काम में तुझसे भी चार कदम आगे ही रहता; पर तुझे मालूम नहीं। इन तीन-चार दिनों के इस नये अत्यावश्यक सरकारी काम की झंझट में मैं तुझसे कह नहीं पाया जहाँ आजन्म कारावास की सजा हुई-हुई बहन भी यहाँ की स्त्रियों की जेल में गत सप्ताह ही आई है ! यदि मैं भागूंगा तो उसे लेकर ही भागूंगा।"

"ठहरिये ! यही है न अड़चन ? तो मैं आपसे प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि आपकी बहन को कैदखाने से मुक्त कराना, जिस समय हम स्वयं बन्धन में थे, भागे नहीं थे, उस समय की अपेक्षा अब हमारे भाग जाने पर, स्वतन्त्र हो जाने पर ही अधिक सुसाध्य होगा। आज हम जंगल में भागकर जा पहुँचे हैं। इसका मतलब यह नहीं कि हम फिर इस कैदियों के उपनिवेश में पैर रख ही नहीं सकते ! यह डर गलत है ! मैं पिछली दफा जब भागा था न तब तीन-चार महीने रात के वक्त खुले तौर पर रहता था इन जावरों में और दिन-भर गुप्त रूप से घुमा-फिरा करता था इस उपनिवेश में ! कंटक बाबू, यह काम मेरा रहा। मैं आपकी बहन को कैदखाने से निरापद रूप में उठाकर जंगल में जिस जगह आप रहेंगे उस जगह लाकर आपके सामने खड़ा किए देता हूँ !

१७. जावरों की राजधानी की ओर

"कंटक बाबू···" उस घने, जनशून्य और अन्धकारपूर्ण अरण्य में आध-एक घण्टा चर्चा हो चुकने पर रफीउद्दीन कहने लगा, "मेरे पेट में भूख की एकमात्र ज्वाला भड़क रही है, पर अब सवेरे तक तो उसके बुझाने का कोई उपाय बच नहीं रहा है, ! हाँ, एक उपाय-मात्र बाकी है पेट

की आग को बुझाने का !" रफीउद्दीन अन्धेरे ही में हास्ययुक्त चेहरा करके बोला, "वह देखो, नारियल का बगीचा।"

वे दोनों उठे। आगे-पीछे सन्नावा है यह देखकर सरकारी सड़क पर जा लगे। थोड़ी देर बाद बाग की तरफ को मुड़े। नारियलों की घनी पौध के आते ही छुरियाँ कमर में बाँधकर दोनों दो ऊँचे नारियलों पर चढ़े। सिरों से चिपककर उन्होंने नारियल तोड़े। वे नारियल धपा-धप नीचे गिर पड़े त्योंही, वह आवाज सुनते ही, बाग की परली ओर के बाजू पर बनी हुई रखवालदार की झोंपड़ी की तरफ से सू-सननन करते हुए गोफन के पत्थरों की वृष्टि होने लगी।

दोनों के पेट में धस्स हो गया। वे जहाँ थे वहीं चुपचाप चिपके बैठे रहे। पर भूख उन्हें चुप भी बैठने न दे। भीति की अपेक्षा भूख से वे अधिक संत्रस्त हो रहे थे। अन्ततोगत्वा पेड़ से चिपके-चिपके ही उन्होंने कवले-कवले नारियल काटे, गोफन के पत्थर सनसनाते हुए बीच-बीच में उनके आजू-बाजू से होकर जाते थे और तो भी वे एक-एक कच्चा नारियल तोड़कर छीलकर उसका मधुर पानी पीते ही जाते थे, मलाई खाते ही जाते थे।

उन्हें अब अच्छी तरावट महसूस हुई। पत्थर भी आने बन्द-से पड़ चुके थे। नीचे उतरने के इरादे से रफीउद्दीन थोड़ा-सा नीचे सरक-कर आता भी; पर त्योंही उस परली ओर के झोंपड़े में किसी ने लालटैन जलाई हो ऐसा प्रकाश दिखाई दिया। दचककर रफीउद्दीन आधे वृक्ष पर से उतरते-उतरते फिर सर्प की भाँति सरसराता हुआ चोटी तक जा पहुँचा। बन्दूक भरे हुए सिपाही, जो उस रात जावरों से हुई साँझ की मुठभेड़ के कारण उस बाग में विशेष देख-रेख रखने के लिए तैनात किए गये थे, वे आवाज़ किधर से आई यह देखने के लिए इधर-उधर देखते जा रहे हैं। बीच ही में गोफन के पत्थर उनके साथ आए हुए एक-दो कैदी फेंकते हैं ! बिलकुल किसी बाज की ओर, अन्त में इधर ही आ रहे हैं वे !

कंटक और रफीउद्दीन पास-पास के जिन दो ऊँचे नारियल के पेड़ों

पर चढ़कर बैठे हुए थे, उनकी बिलकुल जड़ के नज़दीक वे पुलिसवाले चले आए ! कंटक और उद्दीन की छाती में एक ही घबराहट समा गई ।

जैसे-जैसे उन पुलिस वालों की लालटैनों की किरणें ऊपर-ऊपर उनके नज़दीक-नज़दीक आने लगीं वैसे-वैसे कंटक और रफीउद्दीन के प्राण उन्हें छोड़कर दूर-दूर जाने लगे !

त्योंही पड़ौस के दस-पाँच नारियल के शिखर-भागों में फड़फड़ाहट हुई। पुलिसवाले चौंककर उस ओर को दौड़े और एक ने झट से बन्दूक चलाई। बन्दूक छूटते ही घू-घू-घू करते हुए कुछ घूबड़ (उलूक पक्षी) ऊपर उड़ गए और एक बेचारा टप् से नीचे को टपक गया। पुलिसवाले खिलखिलाकर हँस पड़े ।

एक ने वह उलूक पक्षी उठाकर दूसरे को दिखाया।

"यह देखा तुम्हारा चोर ! घूबड़ पर फड़फड़ा रहे थे। तुमने हठ पकड़ा कि चोर नारियल तोड़ रहे हैं ! लौटो अब, चलो !"

वह मजमा जैसे-जैसे आगे जाता गया, वैसे-वैसे कंटक और उद्दीन की जान में जान आती गई। उद्दीन मन ही मन हँसा, 'आई थी बीतने जान पर सो उल्लू पर ही चली गई।'

पर फिर से प्राणों पर संकट को न बुलाना हो तो जब तक वे पुलिस वाले लालटैनें बुझाकर अपनी-अपनी झोंपड़ी में नहीं चले जाते तब तक उन वृक्षों के शिखर पर ही लटकते हुए बैठे रहना आवश्यक था। उस तरह वे दोनों भी बैठे। झोंपड़ी की ओर देखा तो लालटैन बुझ चुकी थी। चारों ओर निःशब्दता छाई हुई थी। थोड़ा ठहरकर उद्दीन ने कंटक जिस पेड़ परथा उसे हाथ से धीरे-से थपथपाया। कंटक को ऊंघ में भी जागृति का स्मरण था, वह समझ गया। उसने भी हल्की-सी एक ताली उत्तर में बजाई। "तू उतर गया ? ठीक। मैं भी धीरे से उतर आता हूँ, ठहर !' इतना सारा अर्थ उस ताली में गर्भित था।

कंटक के नीचे आते ही दोनों थोड़ी देर तक दुबककर चुप बैठे

रहे। उत्तर रात्रि हो चुकी होगी ऐसा तर्क करके उसके पश्चात् उन्होंने वह बन्दूक, कुल्हाड़ी आदि वस्तुएँ जहाँ छिपाई थीं वहाँ से निकाल लीं। सवेरा होने से पहले लौटकर किसी एक घोरतर कांतार में उन्हें विलुप्त हो ही जाना चाहिए था, जिसके अर्थ वे वहाँ से निकलकर सड़क की तरफ आए। निकलते समय रफीउद्दीन पत्तों के ढेर में से कुछ उठा रहा है, यह देख कंटक ने धीरे से कहा :

"किस बात की खटपट कर रहा है रे निष्कारण ?"

"निष्कारण ? उस वक्त तोड़कर गिराए हुए दो-तीन नारियल क्या यहीं फेंककर चले जाएँ ?"

"कितना भुक्खड़ है तू ! कहाँ डेढ़ दमड़ी के नारियल हैं वे ! छोड़ !"

"डेढ़ दमड़ी के ? इन्हीं डेढ़ दमड़ी के नारियलों के कारण दो पूरे-पूरे सिर छँटे जाते थे हमारे !"

रफीउद्दीन ने एक-दो नारियल काँख में दबा लिए। उस सड़क से जिस तरह आए थे उसी तरह वापिस वे अरण्य-मार्ग के समीप चले आए। पौ फटने के मौके पर वे उसी रास्ते से अरण्य के बीच घुस गए। रास्ते में वह पुलिस-जमादार जहाँ मरा पड़ा था, उस जगह जाकर उसकी पुलिस की वर्दी, दियासलाई और बीड़ियों सहित सारी वस्तुएँ उन्होंने निकाल लीं। जाबरों का वह बाण उसी तरह धँसा रहने दिया। उसके पश्चात् उन्होंने उस मार्ग को वहीं पर नमस्कार किया।

उसके बाद उस अरण्य के उस पार्श्व से दूर एक सघन भाग में घुसने का उन्होंने जितना उनसे बन पड़ा उतना प्रयत्न किया। रास्ते में एक चौड़ी और गहरी खाड़ी मिली। उसका रेतीला किनारा इस समय उन्मुक्त, सूखा हुआ श्वेत-शुभ्र हुआ हुआ था। अण्डमान के सिन्धु-तट पर कभी-कभी पड़ने वाली कड़ी धूप इस समय पड़ रही थी और उस कारण वह रेतीला किनारा उस जगह पड़ी हुई रंग-बिरंगी सीपियों एवं शुभ्र-श्वेत स्वच्छ रेता के कारण चमचमा रहा था। उन दोनों ने उस खाड़ी पर अपने संग लाए हुए सारे कपड़े खूब मल-मलकर धोए

और उस कड़ी धूप में सुखा डाले। उनके शरीर को गत अहोरात्र में जोंकों, मच्छरों, काटों ने पूरी तरह छलनी ही बना डाला था। उस पर उस अरण्य की औषध जो कीचड़ एवं मिट्टी का लेप थी, सो उन दोनों ने सर्वांग में लगा लिया, धूप में सुखाया, और तत्पश्चात् डाबो पत्थर तथा मिट्टी के साबुन से शरीर के अवयवों को रगड़-रगड़कर उस खाड़ी में उन्होंने यथेच्छ गोते लगाए।

झाड़ी को पार करके वे टीले पर चढ़े। वहाँ से समुद्र दूर पर दिखाई देता था। उस टीले की उपत्यका में गुफाएँ ही गुफाएँ थीं और वहाँ से आगे रेतीले भाग तक प्रचण्डाकृति अलग-अलग शिलाओं का एक संघ का संघ फैला हुआ था, मानो हाथियों के झुण्ड के झुण्ड ही सिन्धु-पुलिन पर अवतीर्ण हुए हों !

उन गुफाओं को दिखाकर रफीउद्दीन बोला :

"देखिए बाबूजी, बंगले में दूसरा बंगला किस तरह लगा हुआ है! जैसी कि बम्बई की मालाबार हिल ! देखिएगा अब किराया-विराया किस बंगले का सस्ता पड़ता है !"

उन्होंने गुफाओं का निरीक्षण करना शुरू किया। देखते-देखते दो विशालकाय शिलाएँ एक-दूसरे के सिरों पर टेका दिए हुए तम्बू की-सी आकृति में खड़ी हुई, दो मस्त हाथी एक-दूसरे से जूझने का खेल खेलते समय मदोन्मत्त मस्तक से मस्तक भिड़ाकर एक-दूसरे को पीछे धकेलने के पैंतरे में खड़े हों इस प्रकार सुहाती हुई उन्हें दिखाई दीं। उद्दीन तत्काल भीतर गया और मध्य भाग में जाकर आसन जमाकर बैठ गया। पर अभी बैठा ही था कि त्योंही एकदम "घात ! ···घात !" इस तरह भर्राई हुई आवाज़ में चिल्लाकर घबराया-घबराया-सा बाहर निकल आया।

"क्यों रे, क्या हुआ ?" बन्दूक सम्भालते हुए कंटक ने पूछा।

"मनुष्य कहिए, भूत कहिए, पर कंटक, एक अत्यन्त जुगुप्सिताकृति प्राणी उस ऊपर की कोनेवाली गुफा में दुबककर बैठा हुआ है ! उसकी आँखें उसके चेहरे की कालिमा में दीपवर्तिका की भाँति चमक

रही हैं !" उद्दीन ने भीति भी अपनी आदत के मुताबिक हँसकर व्यक्त की।

"तब ? आओ गोली चलाओ जल्दी से !" कंटक ने बन्दूक ऊपर उठाई।

"न, न ! जब तब बिलकुल जान पर ही नहीं आ पड़ती तब तक बन्दूक की आवाज़ ठीक नहीं ! निष्कारण उपद्रव मच उठेगा सारे जंगल में एकाध दफा ! प्रथम उसे लकड़ी से चुभोकर देखें तो सही, है कौन-सा प्राणी वह ?"

उद्दीन ने ऐसा कहते-कहते एक लम्बी सामने पड़ी हुई लकड़ी उठाई और थोड़ा-सा भीतर घुसकर उसने उस दरार में से उसे अन्दर घुसेड़ दिया। ऐसा करते ही एक दयनीय स्वर में चीत्कार-सा हुआ और किसी एक प्रकार के करुणा-भरे शब्द सुनाई दिये।

"अरे ! यह तो कोई जावरा है !" रफीउद्दीन को जावरों की जो थोड़ी टूटी-फूटी भाषा आती थी उसके आधार पर उसने पहचान लिया "मारिए मत मुझे इस तरह यह अपने ही से दीनवाणी में विनती कर रहा है बहुधा।"

"तब उसे किसी तरह बाहर आने के लिए कह और यह भी कह दे कि, हम जावरों के मित्र हैं शत्रु नहीं।"

रफीउद्दीन ने जावरों की बोली में जैसे-तैसे करके वह बात कह दी और पूरी तरह समझाने के ही खयाल से उसने उस लकड़ी को बिल में डालकर फिर से एक बार खड़खड़ाया।

"आया-आया···" इस प्रकार का आर्त्तवाणी का उत्तर उसे बिल में से आया। शनैः-शनैः प्रथमतः सिर बाहर निकालकर उसके पश्चात् कटि-निम्नभाग से घिसटता-घिसटता एक दुःखी-कष्टी जावरा उस बिल से बाहर निकला। बाहर आते ही उसने एक पैर फैलाकर उसकी पिंडली की ओर उँगली का इशारा किया और आँखों में पानी भरकर कराहने लगा।

कंटक और रफीउद्दीन ने जब पिंडली की ओर देखा तो उन्हें

मालूम पड़ा कि वहाँ खून बहने वाली किसी प्रकार की एक चोट आ गई है। कुछ-कुछ इशारों से और कुछ शब्दों से उद्दीन को यह पक्के तौर पर मालूम पड़ा कि, कल जावरों ने अंग्रेजों की टुकड़ी पर जो छापा मारा था, उस समय उत्तर में अंग्रेजी पुलिस द्वारा की गई गोलीबारी में एक गोली जावरे के पैर में आकर लगी। उसके साथ वाले लोग अपनी जान लेकर भागे जा रहे थे उस समय इसके लिए भागना कठिन हो गया, एतावता उसे वहीं छोड़ दिया गया।

रफीउद्दीन के ध्यान में जब वह वस्तुस्थिति आई तब इस तरह आनन्दित हुआ मानो उसके हाथ में कोई बड़ी भारी अमूल्य निधि ही आ गई हो! कंटक को एक ओर को ले जाकर वह बोला :

'ताली लीजिए बाबूजी पहले! जावरों की बस्ती में अपने को आश्रय प्राप्त करना था। पर इस समय वे अंग्रेज़ों पर बुरी तरह नाराज़ हैं! हम ठहरे अंग्रेज़ी कैदियों में से अन्यतम लोग! शरण के लिए भी हम गए तो भी दूर से देखते ही संशयग्रस्त होकर जावरे हम-पर तीर चला बैठेंगे, यह जो बड़ी भारी मुसीबत थी हमारी राह में वह इस जावरे की दोस्ती से टल जाएगी, ऐसा प्रतीत होता है। जावरों के राज्यों में जाने के लिए यह जावरा एक चलता-फिरता प्रवेश-पत्र ही बनकर मिल गया है, ऐसा समझना चाहिए! तब आइए इसकी सुश्रूषा हम अच्छी तरह करें!'

कंटक को भी यह निश्चय पसन्द आया। उस जावरे को उन्होंने ढाढ़स दिया। उसकी पिंडली की छुरी द्वारा जिस प्रकार हो सकी उस प्रकार से चीर-फाड़ करके वह गोली बाहर निकाली। चोट की जगह को धोकर-पोंछकर, कुछएक वनस्पति लाकर-लगाकर पट्टी बाँध दी। गोली के निकलते ही असह्य वेदना कम होकर उस जावरे को थोड़ा-सा भला मालूम पड़ने लगा। इस उपकार की कृतज्ञता वह नाना प्रकार के शब्दों और संकेतों से व्यक्त करने लगा।

उसी स्थान पर वे तीनों भी दो-तीन दिन उसी प्रकार छिपे रहे। उस जावरे से पूछकर उसकी बस्ती की जानकारी भी उन्होंने हासिल

की। वे लोग काले पानी से किस तरह भाग आए, अंग्रेज़ों के अब वे किस तरह दुश्मन बन गए हैं और जावरों की बस्ती में किस प्रकार शरण पाने की सोच रहे हैं इत्यादि बातें भी उसे बतला दीं। उस जावरे ने भी अन्तःकरण से उन्हें आश्वासन दिया कि उसे उन्होंने जो प्राणदान दिया है इस उपकार का बदला देने के लिए जावरे भी उनकी भरसक सहायता किए बगैर नहीं रहेंगे।

उस जावरे के ठीक होने तक वहीं चोरी से छिपे रहने में उनके जो तीन-चार दिन व्यतीत हुए उस काल में रफीउद्दीन सर्वथा निश्चिंत एवं आनन्द में था। पर कंटक मन ही मन अत्यन्त चिन्ताक्रांत अवस्था में था। उसके सामने अपनी ही मुक्तता का सवाल नहीं था, अपितु मालती की भी मुक्तता उसे अभी करनी थी।

ऐसी मनःस्थिति में उस जावरे के स्वस्थ होने की राह देखते हुए वे जो उस जगह छिपकर रह रहे थे उस कालावधि में उधर उनके पीछे सरकारी अधिकारियों की चाल-ढाल भी उनके लिए अनूकूल ही थी। उस साँझ को जावरों का धावा बोलते ही जंगल छोड़कर और जान लेकर सरकारी कैदियों की टोली बैरक में जब वापिस चली गई उसके अगले दिन एक सशस्त्र सैनिकों की टुकड़ी उस जंगल में भेजी गई। उन्हें उस रास्ते पर जावरों के तीरों से मरे पड़े उस जमादार का शव दिखाई दिया। तीर भी उसी तरह गढ़ा हुआ था, अतः उसे जावरों ने ही मार डाला है, यह स्पष्ट ही था। उस पर से सरकारी अधिकारियों ने यह अनुमान लगाया कि उसके साथ जो कंटक और रफीउद्दीन थे उन्हें भी जंगल में कहीं एकान्त में घेरकर जावरों ने खत्म कर दिया होगा। अतः इस दृष्टि से उनका पीछा या खोज सरकार की तरफ से हुई ही नहीं। यह कंटक और रफीउद्दीन के फायदे की ही बात रही।

चार-पाँच दिन के पश्चात् उस जावरे का पैर थोड़ा-सा अच्छा हो गया है, यह देख उसे आगे करके उसके वसीले से उसके सजातीय जावरों के समीप आसरा लेने के लिए कंटक और उद्दीन उस घोर

अरण्य में उस जावरे के पूर्ण परिचय के चोर रास्तों से जावरों की उस आरण्यक 'राजधानी' की दिशा में वे चल पड़े।

प्रत्येक कदम के साथ, जावरों की वह आरण्यक राजधानी जैसे-जैसे समीप आती जा रही थी वैसे-वैसे कंटक और रफीउद्दीन की घबराहट भी बढ़ती जा रही थी। वे लोग सोचते थे, हम इस जावरे के साथ जा तो रहे हैं, पर जावरे हमें इसके साथ आता देख आसरा दे ही देंगे या इसको भी अंग्रेजों के आदमियों के साथ आता देख जाति-द्रोही मानकर हम सभी को विषभक्षित बाणों का एक साथ भक्ष्य बना डालेंगे! प्रत्येक कदम पर झाड़ी में कहीं भी थोड़ी-सी खुड़क हुई कि इनको लगता कि निगरानी के लिए तैनात किये हुए किसी जावरे का बाण तो नहीं छूट रहा सनसनाता हुआ इधर से;—या इधर से!—या इधर से! जब राजधानी दो-तीन मील दूर रह गई, तब तीनों रात का-सा समय आया जान वहाँ ठिठक गए। वह रात उन्होंने उस झाड़ी में ही व्यतीत की।

१८. जावरों का जीवन

यह देखिए जावरों की एक अनादि राजधानी!

घने वृक्षों-झुरमुटों से ढके हुए इस टीले के मध्य भाग पर पठार के सदृश एक उन्मुक्त स्थल था, उसके पार्श्व में उस टीले पर की पथरीली ज़मीन, चित्र-गुफाओं में जैसी होती है, वैसी बड़ी-बड़ी चार पाँच फुट ऊँचाई की अन्दर दूर तक पहुँची हुई और संलग्नावस्था में लम्बी चली गई पाँच-छः दरारें थीं। यही उस राजधानी का प्राकार-बद्ध, पाषाण-निर्मित सुदृढ़ ग्राम-स्थान था। उन दरारों में वे सारे नागरिक धर्मशाला के संलग्न सहन में जिस तरह यात्री लोग खाते, सोते, बैठते, उठते हैं उसी प्रकार संयुक्त परिवार की भाँति अनेक पीढ़ियों से रहते चले आए हैं। इस विस्तीर्ण राजधानी के प्रजाजनों

की जनसंख्या यदि औरतों, बच्चों और पुरुषों को मिलाकर डेढ़ सौ से अधिक न भी हो तो भी कम तो थी ही नहीं !

वहाँ दीवारें नहीं थीं, टट्टियाँ नहीं थीं, उपविभाग नहीं थे। सारी राजधानी मिलाकर वह एक ही था, और भी ऐसा कि जिसमें कमरा, ऊपर की मंजिल, मध्यवर्ती घर, रसोईघर प्रभृति एक भी विभाग नहीं था। बस था तो केवल एक दूर तक गया हुआ बरामदा !

उस टोली के राजा नानकोबी ने भी अपनी रानी के लिए इस प्रकार का विलास-मन्दिर उस राजधानी के समक्षवर्ती उपनगर में बाँध रखा था। वहाँ के पथरीले भूभाग के लम्बे और संलग्न पलंग पर अपनी रानी और बच्चों के साथ बैठकर, उस बाँस की टट्टी का टेका लेते हुए और नीचे की ओर पैर लटकाए हुए राजा नानकोबी जिस दिन आसमान साफ रहता उस दिन धूप खाता हुआ अथवा रात को चाँदनी में उसी मंच पर, सुखशय्या के विलासों का उपभोग करता हुआ दिखाई देता। पर बारिश तो सदैव की वस्तु थी, अतः उसका अधिकांश काल उस मुख्य राजधानी ही में अन्य प्रजाजनों के साथ हिलमिलकर खाने-बैठने-उठने-सोने आदि में व्यतीत होता था।

उस राजधानी के सारे के सारे नागरिक अपने सदा के समुद्र-नृत्य के लिए आज फिर जाने वाले थे। 'फिर' कहने का कारण यह कि बीच में अंग्रेजों के साथ जो युद्ध 'ठन' गया था उसके कारण उनके दस-पन्द्रह दिन उसी गड़बड़ी में चले गए थे और सर्वदा का नाच-वाच कुछ भी नहीं हो पाया था। तिसपर भी आज का नाच उनके राष्ट्रीय विजय का था। उनकी अपनी सम्मति में अंग्रेजों के साथ हुए युद्ध में जीत उन्हीं की हुई थी। उस दिन के छापे में अपने मुट्ठी-भर आदमियों के सामने अंग्रेजों की वह छः सौ-सात सौ की सेना भी उखड़ गई थी और जान लेकर भाग गई थी। इतना ही नहीं, अंग्रेज सेना का एक बड़ा अधिकारी (अर्थात् वह सशस्त्र पुलिस) जावरों के एक वीर ने ताककर बाण मारकर ठण्डा कर दिया था ! वह वन का भाग भले ही अंग्रेजों ने हस्तगत कर लिया हो पर शुभ्र एवं विस्तीर्ण रेतीले

तट पर धूप की ऊष्मा में उनका वन-भोजन प्रारम्भ हुआ।

नानकोबी ने हाथ से इशारे करते हुए पूछा :

'दोलकाष्ठ ?—विलायती पानी ?'

जावरों की भाषा में शब्द इने-गिने ही रहते हैं। उनपर भी उन्हें यथाशक्ति हाथ के इशारों से ही बातचीत करना अधिक पसंद है। वे सारे शब्द तथा हाव-भाव एकत्र करके हिन्दी में उस वाक्य को लिखें तो उस एक शब्द का सारा अर्थ यों होगा—

'क्यों भाई क्या बात है ? अपना यह दोलकाष्ठ किधर चला गया है ? बहुत दिनों से इधर आता ही नहीं, क्या बात हो गई ? वह आज अगर रहता तो वह विलायती पानी—वह शराब पेट भरकर पिलाता, अब कमी है तो बस उसी की है।'

यह सुनकर एक जावरे ने दो शब्द और दस इशारे तथा दृष्टि-विभ्रम करके जो उत्तर दिया उसका भावार्थ इतना था—'वह 'दोल-काष्ठ' अरण्य के दूसरे भाग में रहने वाली, 'टटोबी' नाम की जावरों की एक दूसरी जाति के लोगों से परिचय के कारण चला गया है, और थोड़े ही दिनों में वापिस आनेवाला है।'

पर उसके लिए आज का विजय-नृत्य रुक थोड़ा ही सकता था ? मृगया और नाच ही तो इन जावरों का श्वासोच्छ्वास। उसमें भी इतने दिनों से उन अंग्रेजों के साथ की लड़ाई की गड़बड़ी में नाच हुआ भी नहीं था। उस इच्छा की पूर्ति के अभावरूप उपोषण की आज पारणा ही थी। प्रायः सारे स्त्री-पुरुष एकदम नंगे। कुछ शृंगारप्रिय लोगों ने आभूषण के तौर पर कटि के पुरोभाग के नीचे पत्ते लटका रखे थे। उस एक स्वर, अधूरे और त्रुटित ताल के गाने को उसी प्रकार गाते हुए घूमते-घामते उस नृत्य का वेग बढ़ता चला गया। एक थका कि उस वृत्ताकृति हस्तशृंखला में दूसरा घुस आता। थकना यह व्यक्तिगत दोष था तो शृंखला को टूटने देना तथा नृत्य के वेग को शिथिल बनाना जातीय दोष सिद्ध होनेवाला था, अपने राष्ट्रीय देव भगवान पुलगा के उपहास का पात्र बनना था। अन्त में जब नाच की

समाप्ति का समय आया, तब तो उस वृत्त के नृत्योन्माद की सीमा ही नहीं रह गई। भर्राटे तथा घर्राटे से फिरने वाले उस नृत्यमय वृत्त पर आँख का ठहरना कठिन-सा हो गया !

वह नाच अभी खत्म होने भी नहीं पाया था कि उतने ही में एक जावरे ने ज़ोर से ताली बजायी तथा ऊँचे स्वर में चिल्लाया—'दोलकाष्ठ ! दोलकाष्ठ !" देखते हैं तो सचमुच ही 'दोलकाष्ठ' आ रहा है और उसकी काँख में तथा हाथों में भी 'बिलायती पानी' की बोतलें हैं ! जावरों के आनन्द का ठिकाना न रहा !

जिस मनुष्य का नाम जावरों ने 'दोलकाष्ठ' इस अर्थवाले जावरी कब्द में रखा था, वह मूलतः एक भगोड़ा ही था। अंग्रेजों की काला पानी की जेल ही में आजन्म कारावास की सज़ा पाकर आया हुआ था और अनेक बरसों पहले वह जेल से भाग गया था। पर भारतवर्ष वापिस जाने का उसका एक बार प्रयत्न निष्फल हो गया था। और उस साहस-कृत्य में कुछ जावरों से उस जंगल में उसमें इस विलायती पानी के कारण ही घनिष्ठ परिचय हो गया था; अतः इन जावरों की टोली में उसे गत तीन-चार बरसों से आश्रय मिला हुआ था। वह चोरी-छिपे अण्डमान के आंग्ल उपनिवेश में जाता, जावरों द्वारा प्रदत्त अनेक सुन्दर और बड़े-बड़े शंख, दो-दो फुट की तश्तरियों और थालियों सदृश चौड़ी और गुलाबी रंग की सीपियाँ उस कैदी उपनिवेश के व्यापारियों को चोरी-छिपे बेचता, बहुत-कुछ पैसे गाँठ में बाँधता और बाकी पैसों से थोड़ा-सा विलायती मद्य और बहुत-सी तमाखू गुप्त रूप में जावरों को लाकर दिया करता था। वह उनकी बोली बोलता, खाना खाता, नंगा रहता, रंगीन मिट्टी के पट्टे शरीर पर मलता, उनके सुख-दुःख में संवेदना दिखाता, उनके स्त्री-पुरुषों में हिल-मिलकर वह उसी प्रकार नाचता और सोता जिस तरह वे लोग नाचते और सोते थे।

वे जावरे उसे स्नेहवश 'दोलकाष्ठ' इस अर्थ के जिस नाम से संबोधन किया करते थे, वह भी उसे पूरी तरह फबता था। कारण उसकी

कमर तक आनेवाले ठिगने तथा बूट पालिश की भाँति काले-कलूटे जावरों में वह अधगोरा और छः-एक फुट ऊँचाई का भारतीय भगोड़ा जब खड़ा होता था तब ऐसा ही दिखाई देता था कि तारकोल से पुती नौकाओं के ठीक मध्य में खड़ा किया हुआ कोई 'दोलकाष्ठ' ही हो ! इस साम्य के कारण ही जावरे विनोद में उसे इस नाम से सम्बोधन करने लगे थे।

इधर विजय-नृत्य का वह उत्सव सिन्धु-तट पर 'विलायती पानी' के प्राशन द्वारा सम्पन्न हो रहा था और उधर गत प्रकरण में बताए अनुसार वह घायल जावरा कंटक और रफीउद्दीन को साथ ले उस राजधानी के समीप दो-तीन मील पर आकर ठहरा हुआ था। इस घायल जावरे ने उन्हें 'दोलकाष्ठ' नामक भगोड़े की बात सुनाई। उसने कहा कि यदि वे भी उसी की भाँति तमाखू और शराब लाकर जावरों को पुराया करें तो उन्हें भी जावरे पूरी तरह मदद दिया करेंगे और उन्हें स्नेह और आदर की दृष्टि से देखा करेंगे। पर पहली कठिनाई यह थी कि वे भारतीय कैदी थे अंग्रेजों के लोग ! और जावरे थे उस समय अंग्रेजों से सख्त नाराज़ ! अतः यदि उन्होंने उस घायल जावरे को उन्हीं के साथ आते हुए देख लिया तो वे जावरे कदाचित् उस जावरे पर भी सन्देह कर बैठें ! क्रोध से जहरीले वाण बरसाना शुरू कर दें ! उस आपत्ति को टालने के लिए अन्त में यह निश्चय हुआ कि, कंटक और रफीउद्दीन दोनों उस रात को उसी अरण्य में रह जाएँ; वह घायल जावरा जाकर अपने टोली वालों से मिल जाए; ऐसा करने से निन्यानवे प्रतिशत उसका स्वागत निरापदरूप से होगा; उसके पश्चात् वह जावरा उन लोगों को बताए कि कंटक और रफी-उद्दीन ने किस भाँति उसकी जान बचाई, वे दोनों अंग्रेजों के आदमी नहीं हैं; बल्कि इस समय तो वे उनके कट्टर दुश्मन बने हुए हैं; 'भगोड़े' हैं, और जावरों को नाना प्रकार के मद्य, तमाखू, कांचमणी, रंगीन रेशमी वस्त्रों की पट्टियाँ इत्यादि वस्तुएँ सदैव पुराया करेंगे। ये सब बातें बड़ी युक्ति से वह कहे और उसके पश्चात् घायल जावरे की जान

बचाने के उपकार के बदले उन नये भगोड़ों को अपने यहाँ आश्रय देने के लिए टोली के राजा-रानी को राजी करे। इतना काम हो जाते ही वह जावरा फिर इस जंगल में आये और कंटक तथा रफीउद्दीन को अपने साथ ले जाए।

इस निश्चय से पर्याप्त अंश में निर्भय हुआ-हुआ वह जावरा शीघ्र ही राजधानी की ओर चल पड़ा। कंटक और रफीउद्दीन जंगल ही में ठहरे रहे। उनके दिल में घबराहट भर गई थी कि जाने आगे क्या हो और जावरे क्या करें!

१९. रफीउद्दीन से प्रतिशोध

'आ गया! आ गया! ऊ ऽ ऽ ऊ ऽ ऽ' इस तरह अकस्मात् चिल्लाकर नानकोबी की बहन नाचती हुई उठ खड़ी हुई! दूरस्थ झाड़ी की ओर संकेत करके उसने सबका ध्यान जिधर आकर्षित कर लिया था, उधर जब नानकोबी ने देखा तो उसे दिखाई दिया कि उस का गुम हुआ वह घायल जावरा, अपनी उस बहिन का पति, थोड़ा लंगड़ाते हुए किन्तु साकल्येन सर्वथा निर्भय, निश्चित वृत्ति से अपनी राजधानी की ओर चला आ रहा है।

उसके स्वागत वा शिष्टाचार के पूर्ण होते ही, उन्हीं विस्फारित नेत्रों से आनन्द का अश्रुजल वेग से बह निकला और अपने उस खोये हुए वीर बंधु के गले में अन्य बांधवों के तथा पति के गले में पत्नी के प्रेमपूर्ण आलिंगन की भुजाएँ जा पड़ीं।

अपने छुटकारे का अद्भुत वृत्तांत सुनाते समय उस पुनरागत जावरे ने कंटक के तथा रफीउद्दीन के अपने ऊपर हुए उपकारों का इतना अधिक उल्लेख किया कि, जब उसने अन्त में उन दोनों भगोड़ों को जावरों द्वारा आश्रय देने और उनके द्वारा उस दिये गए प्राणदान के ऋण से उऋण हों ऐसी साग्रह विनती उस समय तक वहाँ आए

हुए उस टोली के अनेक लोगों को संबोधित करते हुए की, और उन भगोड़ों की ओर से यथेच्छ तमाखू और शराब मिलने का आमिष (लालच) भी दिखाया तब उसपर जिसने स्वीकृतिसूचक सिर न हिलाया हो ऐसा एक भी जावरा नजर नहीं आया। तथापि किंचित् विचार करने वाली, नेता को सुहाने योग्य मुखमुद्रा करके नानकोबी थोड़ी देर चुप बैठा और तत्पश्चात् इशारों से वाक्य का अधिकांश व्यक्त करते हुए केवल इतना ही शब्द उसने उच्चारा :

"दोलकाष्ठ !"

उसमें इतना अर्थ भरा हुआ था कि ऐसे भगोड़ों की सच्ची परीक्षा दोलकाष्ठ ही को है ! उसी को हमारी ओर से उनके पास भेजो ! यदि कंटक और रफीउद्दीन को दोलकाष्ठ ने आश्रयार्ह समझा तो आश्रय अवश्य देंगे।

उधर संध्याकाल के समय उसकी मुलाकात हो रही थी, इधर कंटक और रफीउद्दीन ने सूर्यास्त से पूर्व ही किसी पशु का शिकार किया, उसका मांस अग्नि पर भूना और उससे पेट भर चुकने के पश्चात् वृक्षों को देखते-देखते वे ऐसे दो अलग-अलग वृक्षों पर चढ़े जिनकी चौड़ी-चौड़ी टहनियाँ ऊँचाई पर जाकर एक-दूसरे से चिपकी हुई दिखाई दीं। उन वृक्षों की टहनियों द्वारा तैयार किए गए तख्तों पर वे सो गए।

तड़के ही रफीउद्दीन उठा। थोड़ा विनोद करने की इच्छा हो आते ही रफीउद्दीन ने कंटक को पूरी तरह उठाने के लिए ऊँची और सुरीली आवाज में यह भूपाली छेड़ी—

घनःश्याम सुन्दरा, श्रीधरा अरुणोदय झाला।
उठो कंटक बाबूजी उदयाचलीं सूर्य आला ॥

कंटक को हँसी आई। वह भी उठकर के टहनी पर ही कुछ देर बैठा। बाघ की टोह में मचान बाँधकर मृगयु लोग जिस तरह बैठते हैं, उसी तरह कंटक को बैठा देख रफीउद्दीन ने मजाक किया :

'क्यों बाबू जी, कितने बाघ मारे ?'

कंटक ने उत्तर दिया :

"भय्या, जो सचमुच बाघ, वो तो अभी आने वाला है।"

कंटक अभी इतना बोल ही रहा था कि, त्योंही सामने की झाड़ी में हलचल होने लगी। केवल सौ कदमों की दूरी पर आते ही जावरे ने अपनी अरण्यक भाषा में ऊ ऽ ऽ ऊ ऽ ऽ' करके जोर से चिल्लाना शुरू किया। उस जावरे को पहचानते ही कंटक झटपट वृक्ष से नीचे उतरा। रफीउद्दीन अपने पेड़ पर उसी तरह बना रहा। उस जावरे के साथ वह अपरिचित 'दोलकाष्ठ' भी आया हुआ था।

कंटक को आगे आया देखते ही उस जावरे ने आनन्द का चीत्कार किया और उसे अपनी भुजाओं में लिपटा लिया। 'ये ही हैं कंटक बाबू।' ऐसा उसने उसका परिचय 'दोलकाष्ठ' को करवा दिया। तत्काल दोलकाष्ठ ने भी आगे बढ़कर कंटक से कहा :

"कंटक बाबू, मुझे लगा ही था कि आप होंगे! मैं यद्यपि गत दो-तीन बरसों से इन जावरों में इस प्रकार नंगा होकर एक जावरा ही बन गया हूँ, तथापि वेशांतर करके मैं काले पानी के उपनिवेश में निरंतर घूमता रहता हूँ। मैंने आपको अनेक बार देखा है। आपकी अधिकारियों में जो प्रतिष्ठा है और आपका भाग जाने का जो निश्चय है, वह भी मुझे मालूम है। सत्तावन के स्वातन्त्र्यवीर अप्पा का भी एक विश्वासपात्र मित्र था। आपको सहायता पहुँचाने के लिए मरते समय उन्होंने मुझसे कहा था : 'मुझे काले पानी पर से भाग जाने के लिए जैसा साथी चाहिए वैसे आप ही हैं! कंटक बाबू, आपकी बहन कंटकी को मैं आन की आन में छुड़ाकर ले आऊंगा!' आपके लिए मैंने जावरों की ओर से आश्रय दिलाया है। पर आपका जो दूसरा साथी जो भगोड़ा है, उसे देखे बगैर उसके विषय में मैं अभी कोई वचन नहीं देना चाहता।

जब तक इधर इनका यह बोलना-चालना हो रहा था तब तक रफीउद्दीन मुक्तमनस्क तथा हँसता हुआ आगे आया। दोलकाष्ठ उसकी ओर निहारकर देख रहा था। पर रफीउद्दीन जब नज़दीक आया तब उससे भी अधिक लम्बे विशाल देह एवं शक्तिशाली उस नग्न-

काय दोलकाष्ठ का संत्रस्त भाव से भ्रूकुंचन होने लगा। वह बार-बार मिटाने का प्रयत्न करता था किन्तु उसके माथे पर क्रोध की रेखाएं पुनः-पुनः प्रज्वलित हो उठती थीं। इतने में उसके मन में जिस एक शंका ने विक्षोभ-निर्माण किया था, उसकी आवश्यकता को पूर्ण करने वाली एक क्लुप्ति उसे सूझ गई। "आइए" दोलकाष्ठ के ऐसा स्वागतात्मक सम्बोधन करते ही रफीउद्दीन की कली खिल उठी। उसने अपने दोनों हाथ आगे बढ़ाकर दोलकाष्ठ का हाथ पकड़ा और सिर झुकाकर दोलकाष्ठ को प्रत्यभिवादन किया।

रफीउद्दीन के पंजे की ओर देखते ही दोलकाष्ठ को जिस निशानी की आवश्यकता थी वह मिल गई। रफीउद्दीन के दाहिने हाथ की कनिष्ठिका की एक पोर टूटी हुई थी। यह रफीउद्दीन तो वही रफी-उद्दीन है! और तत्क्षण दोलकाष्ठ ने दांत पीसकर गर्जना की :

'तू ही! तू ही वह रफीउद्दीन है! नीच···!!'

उस भयंकर औसान और आरोप का अर्थ कंटक को तो क्या अभी रफीउद्दीन को भी पूरी तरह मालूम पड़ने से पहले ही दोलकाष्ठ ने अपने हाथ में आया हुआ रफीउद्दीन का हाथ झटाक से एक झटका देकर खींचा, और एक कुश्ती का पेंच मारकर उसे पीठ की तरफ से अपने पेट में कर लिया, उसकी कमर में बायें हाथ की एक मज़बूत लपेट मारकर दाहिना हाथ उसकी दोनों टांगों के बीच धंसाकर उसे ऊपर उठाया और एक पछाड़ में ज़मीन पर दे पटका। तत्काल उसकी छाती पर सवार होकरअपने दोनों हाथों से दोलकाष्ठ ने रफीउद्दीन का गला कसकर दबाया।

'है! हैं! छोड़ो! छोड़ो!' कहता हुआ कंटक घबराया-सा ज्योंही बीच में आने लगा, त्योंही अत्यन्त दृढ़ और निष्ठुर स्वर में दोलकाष्ठ चिल्लाया :

'बाबूजी, आप थोड़ा चुप रहिए! यह मनुष्य नहीं है, शैतान है। आपके भले के लिए भी इसका कांटा निकाल फेंकना चाहिए। मेरा तो यह एकमात्र जानी दुश्मन है! वह सब पीछे बताऊँगा! बोल,

रफीउद्दीन, तूने तो अपनी ओर से मुझे जान से मार ही डाला था न ! यह मेरा पुनर्जन्म।···अब मैं अपनी ओर से, नीच कहीं के ! तेरा खात्मा किए डालता हूँ !'

दाँत-होंठ पीसते हुए विकराल क्रोध से दोलकाष्ठ अपनी वज्र मुष्टियों द्वारा, बकरे की तरह चिल्लाने वाले रफीउद्दीन की आँखों पर, नाक पर, छाती पर, प्रहार पर प्रहार करने लगा। रफीउद्दीन की आंखों से, नाक से और मुंह से खून की धारा चिर्र करके ऊपर निकलने लगी। वह लथड़-पथड़ होकर बेसुध गिर पड़ा।

जो अपने स्वामी का शत्रु वही अपना शत्रु ऐसा समझने के कारण उस जावरे की भी वैरज्वाला जागरित हो उठी और उसने अपना धनुष हाथ में लिया और रफीउद्दीन पर ताना तथा उसमें से सनसनाते हुए छूटा हुआ बाण रफीउद्दीन की छाती में इस तरह गाड़ दिया मानो कोई मेख ही गाड़ दी हो ! रफीउद्दीन जहाँ का तहाँ ठण्डा हो गया !

तत्क्षण दोलकाष्ठ उस अघोरी सन्तोष के आवेश में कंटक की ओर मुड़कर बोला :

'कंटक बाबू, सुनिए, मैंने इस रफीउद्दीन को यों बकरे की तरह मुक्कों से कुचलकर मारा ! क्योंकि इसने इसी तरह गला घोंटकर कितनों ही की जानें ली हैं। यह पहले एक बार काले पानी पर आजन्म कैदी था। उस समय मैं भी कैद में था। मुझे लकड़ियाँ भरकर भेजने-वाली नौका पर काम मिला था। यह मेरे हाथ के नीचे लकड़ी-जमादार था। आगे चलकर हमने भाग जाने की गुप्त अभिसन्धि की। उस साहस में इससे मुझे सहायता मिली। इसके पास नहीं थी दमड़ी, और मेरे पास थी हज़ार-दो-हज़ार की रोकड़। मैं जिस नाव पर काम करता था, वही नाव एक दिन मौका पाकर हमने हाथ में ली और रातों-रात समुद्र में छोड़ दी।···

"वायु अनुकूल था। हम भगोड़े समुद्र में अच्छे रास्ते पर आ लगे। ऐसे मौके पर इसने मेरे पास की सारी रकम हथियाने की दुष्ट भावना से, मेरा घात करने का निश्चय किया। मैं जब एक बार, एक

तख्ते पर नाव के किनारे पर इसकी तरफ पीठ किए खड़ा था तब इसने उस तख्ते को अकस्मात् उलटाकर उसके सहित मुझे भरे समुद्र में धकेल दिया। मैं ज्योंही उस नाव को फिर से पकड़ने के विचार से गया, त्योंही इसने चप्पू का डंडा उठकर मेरे सिर पर दे मारा। मैं चक्कर खाकर पानी में गोते खाने लगा, डूब गया।...

'पर अद्भुत योगायोग से मैं ज्योंही पानी के ऊपर आया त्योंही लकड़ी का तख्ता मेरे हाथ लगा। उसे पकड़कर मैं अपनी जान बचाने की भरसक चेष्टा करने लगा। उसी बीच जावरों की एक बड़ी 'डुंगी' आगे निकलकर मेरे समीप आई। उन जावरों ने अपनी नौका में मुझे डाल लिया और इस तरह मेरी जान बचा ली। पर इसके विचार से तो मैं मर ही गया था।—आगे इसका क्या हुआ वह मुझे इस क्षण तक मालूम नहीं था। इसे प्रत्यक्ष इस जगह देखते ही, यही वह नीच है, मैंने पहचान लिया। इसने मुझपर तथा अन्य लोगों पर जो अत्यन्त वीभत्स स्वरूप के अत्याचार किए हैं उनका मैंने आज इकट्ठा ही बदला चुका दिया है।'

'तुमने ठीक ही किया है। तुमने इस नीच को अब जिस तरह मारा है, इसी तरह और तीन बार मारा होता तब भी मैं यही कहता कि, आपने ठीक ही किया है। मैं उसे अच्छी तरह जानता हूँ। मेरे पैर में गड़ा हुआ काँटा, जिसे मैं नहीं निकाल सका उसे तुमने ही निकाल दिया है।'

ठीक! अब पहले आप जावरों की ओर चलिए। राजा नानकोबी मेरी आपके प्रति अनुकूल सम्मति होने के कारण स्वयं आपकी मुलाकात के लिए उत्सुक है। हाँ, पर आपके पास एक बन्दूक, कुछ गोला-बारूद और पुलिस के कपड़े भी थे न? यह जावरा कहता था।'

'हैं न, पर मैं एक वजह से उन्हें छिपाता रहा हूँ।'

'जाइए, पहले वे वस्तुएँ लाइए इधर!'

पत्तों के ढेर में छिपाई हुई उन सब वस्तुओं के कंटक द्वारा वहाँ लाए जाते ही दोलकाष्ठ पहले-पहल उस बन्दूक पर टूटा और बड़ी

शान से वह बन्दूक उस नग्नकाय वीर ने अपने कन्धे पर रखी, आगे हुआ और बिलकुल सैनिक की अदा से कंटक को हुक्म दिया :

"चलो, आओ मेरे पीछे-पीछे !"

"वाह," कंटक हँसा, "बन्दूक से स्पर्श-समकाल ही आपके पैर भी किसी सैनिक की भाँति टपटप करते हुए पड़ने लगे हैं। आपके शरीर में किसी सैनिक का संचार हो गया हो ऐसा प्रतीत होता है।"

"किसी सैनिक का काहे को ? मैं स्वयं एक सैनिक ही तो था पहले ! मैंने लड़ाई देख रखी है। बाबूजी, प्रत्यक्ष रणांगण में लड़ा हूँ मैं···!"

पर मुह से अकस्मात् निकली हुई अपने पूर्व-वृत्तांत की इतनी जानकारी भी अधिक हो गयी, इस भावना से ही कदाचित् दोलकाष्ठ एकाएक चुप हो गया और कंटक तथा जावरे के इस छोटे-से सैन्य का अग्रणीत्व स्वीकार करके किसी सेनानी की भाँति वह नानकोवी की उस अरण्यक राजधानी पर अभियान करने के लिए चलने लग गया !

२०. मालती का जेल से पलायन

स्त्रियों के जेलखाने की रसोई वाली छपरी में एक बड़ी भारी साग-भाजी पकाने की 'डेग' के नीचे आग सरकाती हुई कंटकी खड़ी थी। कैदी स्त्रियों के वेश के अनुसार घुटने तक का एक मोटा-झोटा लूगरा, सिर में हफ्तों-हफ्तों तक तेल नहीं, कंघी नहीं, सर्वथा अमंगल और नीच कैदी स्त्रियों का सहवास, इन सब कारणों से बालों में जुएँ भरी हुईं, घग-घग करने वाली—बड़ी-बड़ी भट्टियों की आँच में लगातार श्रम करते-करते धूम्रवर्णाक्त एवं स्वेदमलीमस शरीर, पर उस स्थिति में भी मौलिक सुभगता लिए हुए वह युवती कंटकी, मालती, उन अग्नियों द्वारा प्रज्व-लित बड़ी-बड़ी भट्टियों के मध्य भाग में पंचाग्नि साधन में शोभाय-मान मूर्तिमती तपस्या के सदृश सुहा रही थी।

वहाँ उस समय एक और कैदी स्त्री काम कर रही थी। वह जब आटे की थैलियाँ लाने के लिए बाहर चली गई तब कंटकी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए अनुसूया ने चुटकी बजाई। कंटकी ने ऊपर की ओर देखा, थोड़ी आगे बढ़ी, इधर-उधर अच्छी तरह से देखा, अनुसूया के हाथ में से झटपट एक चिट्ठी ली और लकड़ियों के ढेर की आड़ में जा छुपी। अनुसूया दरवाजे ही में खड़ी रही, ताकि कोई अन्दर न आ सके। एक-दो मिनट ही में कंटकी ने वह चिट्ठी पढ़ डाली और आग में फेंक दी। अनसूया ने सिर्फ गर्दन ही के संकेत से पूछा, 'काम हो गया न ?' कंटकी ने भी गर्दन ही के संकेत से उत्तर दिया' 'हाँ !' तब शीघ्र ही अनसूया वहाँ से चली गई।

कंटकी ने वह चिट्ठी पढ़ी, उसका हृदय किसी उत्कट आशा के उद्रेक से तथा साहस-कार्य की भीति से धड़कने लगा। उसका शरीर उस कदखाने में था, पर मन वहाँ से उठाकर कहीं अन्यत्र पहुँचा दिया गया है, ऐसा उसे प्रतीत होने लगा। वह चिट्ठी कोई भयानक किन्तु शुभ सूचना उसे दे गई थी। उस सूचना के अनुसार उसको जो कुछ करना था वह किस तरह पूर्ण किया जाए, इसी उधेड़-बुन में वह पड़ गई।

घड़ी ने तीन बजाए, उसे लगा कि चार ही बज गए हैं। उसने सोचा कि अब बाहर काम पर जाने का उसका समय हो आया। पर जब मालूम पड़ा कि अभी तीन ही बजे हैं, वह थोड़ी निराश हो गई और फिर नीचे बैठ गई। इतने में सचमुच के चार बज गए। अनुसूया जमादारनी ने जेलर के हुक्म के मुताबिक 'कंटकी' कहकर उसे पुकारा। सबके सामने कंटकी को अपने साँझ के काम पर बाहर जाने की आज्ञा मिली।

कैदियों के लिए कैदखाने से बाहर एक प्रेमोद्यान बनाया गया था। वहाँ जाकर झाड़ने-बुहारने का काम कंटकी के ऊपर था। कंटकी का चाल-चलन अच्छा है, यह देखकर वह काम जेलर ने उसी के सुपुर्द किया था। वह हर रोज उस प्रेमोद्यान में जाने के लिए इसी प्रकार जेल के फाटक से बाहर चली जाया करती। साँझ के झाड़ने-

बुहारने का काम खत्म हो चुकने पर जब प्रेमोद्यान बन्द हो जाता तब वह फिर उस फाटक के भीतर आकर कैदखाने में खुद भी बन्द हो जाया करती थी। पर आज···

आज उसका निश्चय था कि कैदखाने से बाहर निकल आने के बाद अब कभी अन्दर वापिस नहीं जाना है। चिट्ठी में जैसा लिखा था उस प्रकार भाग जाने में सफलता मिल गई तब तो ठीक ही, न मिली तो तत्काल पेट में छुरा भोंककर अपने-आपको समाप्त कर लेना है।

जब अच्छे चाल-चलन वाले स्त्री-पुरुषों को विवाह की अनुमति मिल जाती तब वे काले पानी के कैदी अपनी पसन्द की जोड़ी का चुनाव करने के लिए उस बाग में आया करते थे। वे हर रोज की तरह उस दिन भी वहाँ जमा होने लगे; आपस में बातचीत करने, उठने-बैठने में मग्न हो गए। झाड़ना-बुहारना हो चुकने के बाद कंटकी भी उन लोगों के बीच में फिरने लगी। पर उसका चित्त तो सारा उस बाग के सामने से जाने वाली सड़क की तरफ केन्द्रित था। पाँच बजे। पर अभी तक जो आदमी उसे चाहिए था, वह सड़क पर दिखाई ही न दे रहा था। वह बेचैन हो गई।

इतने में उस पुलिस ने स्थिरीकृत संकेत के अनुसार हाथ हिलाया। कंटकी झट से प्रेमोद्यान से बाहर निकलकर सड़क पर आई।

पहला पुलिस वाला कंटक था, दूसरा दोलकाष्ठ। उन दोनों ने पुलिस का भेस बना, कन्धे पर बन्दूक, कमर में सरकारी पुलिस के पट्टे धारण किए, बिलकुल पुलिस वालों की ठसक में सामने आकर कंटकी का हाथ पकड़कर उसे ऊँची आवाज में आज्ञा दी, "तुम्हें चीफ कमिश्नर साहब ने बंगले पर बुलाया है। हम ले जाने के लिए आए हैं।" कंटकी के पीछे-पीछे उस बाग का पहरेदार भी उनके पास आ रहा था। उसे उन दोनों पुलिसवालों ने कहा, 'देखो, इस औरत को हम चीफ कमिश्नर के बँगले पर ले जा रहे हैं!—क्या कहा? जेलर से पूछना होगा? वह हम पहले ही पूछ चुके हैं। चीफ कमिश्नर की अपेक्षा जेलर कोई बड़ा अफसर नहीं है। तुम्हें ज्यादा बात करनी हो

तो हमारे नम्बर नोट कर लो ! चल, कंटकी, आगे चल !'

उन पुलिस वालों की वह सख्त और भीतिशून्य ठसक देखकर वह पहरेदार ठण्डा-सा पड़ गया। इनकार करे तो कैसे ? क्योंकि कमिश्नर ही तो है अण्डमान की मुख्य सरकार ! पुलिस वालों ने कंटकी को आगे करके हुक्म दिया, 'चलो !' उनके हुक्म की राह न देखते हुए कंटकी भी पहले ही से रास्ते पर चलने लग गई थी। पाँच मिनट के अन्दर-अन्दर वे तीनों एक मोड़ पर आकर एक दूसरे ही रास्ते से चले गए।

वह पहरेदार उनके ओझल होने तक उनकी ओर देखता रहा। फिर आधे-पौने घण्टे के बाद उस बाग को ठीक समय पर बन्द करके वह जेलखाने में चला गया। साँझ को जब कैदियों की गिनती हुई तब एक स्त्री कैदी कम ! और वह भी कौन, तो कंटकी ! जेलर ने पहरेदार को बुला भेजा और डाँटकर पूछा। उसने भी तनकर जवाब दिया :

'चीफ कमिश्नर साब को पूछिए। मेरा क्या कसूर ! पुलिस अफसर कंटकी को पकड़कर उसके साथ चल दिया !'

चीफ कमिश्नर के बँगले पर कैदियों के लिए अनेक बार अचानक बुलावा आता रहता है। हिन्दुस्तान का नया वारण्ट, किंवा अन्य किसी प्रकार का छुटकारा आदि काम-काज में इस प्रकार हमेशा हुआ करता है। पर जेलर से पूछे बगैर इधर से उधर ही हथियारबन्द पुलिस को भेजकर एक तरुण स्त्री कैदी को पकड़ मँगवाना तो नियम के सर्वथा विरुद्ध ! अत: जेलर ने कमिश्नर के बँगले पर तत्काल आदमियों को भेजा। नाव में बैठकर उस बँगले तक जाना होता था। उतनी दूर जाकर वे आदमी जब रात को वापस आए तब उन्होंने कमिश्नर का यह संदेशा सुनाया कि, "हमारी ओर से कंटकी नाम की किसी भी स्त्री कैदी के लिए बुलावा नहीं भेजा नहीं गया।'

निश्चय ही से किन्हीं दो पुलिस वालों ने उस तरुण स्त्री कैदी को भगाया होगा—यह बात स्पष्ट होते ही जेलर गड़बड़ में पड़ गया।

जेलखाने का 'संकट घण्टा' एकदम जोर-जोर से बज उठा। जिधर-तिधर सिपाहियों की दौड़-धूप, खोज और नाकेबन्दी का काम शुरू हुआ। विशेषतः पुलिस की बैरकों में वे दोनों पुलिस वाले कौन हैं, इसकी सख्ती से छानबीन होने लगी। कारण, उस लड़की को पकड़कर ले जाने वाले दो पुलिस के सिपाही थे, इसी के सबूत चारों ओर से मिलते चले गए।

इस रीति से कमिश्नर की ओर से विवरण प्राप्त करके दूत रात को जब तक वापिस न आए और कंटकी को भगाया गया है, यह जब तक पक्का नहीं हुआ तब तक कंटक और दोलकाष्ठ को अपना काम पूरा करने के लिए चार-पाँच घण्टे निर्विघ्न रूप से मिल गए। उस समय तक किसी ने उनका पीछा तक नहीं किया था।

कंटक और दोलकाष्ठ के साथ कंटकी जो निकल भागी सो उसे सड़क छोड़कर शीघ्र ही एक वक्र मार्ग से समुद्र-तट पर लाया गया। वहाँ एक 'डुंगी' तैयार ही थी। वृक्ष की एक बड़ी भारी जड़ को काटकर उसे मध्य भाग में खोदकर नाव की तरह खोखली बनाकर, नाव का ही आकार देकर, उस अखण्ड द्रुममूल का जो एक टोकरा-सा वहाँ के लोग बनाते हैं और जिसकी सहायता से वे लोग अत्यन्त द्रुतगति से जल-प्रवास करने में निष्णात हो जाते हैं, उस अत्यन्त प्राक्कालिक नाव को वहाँ 'डुंगी' कहा जाता है। कंटकी को लेकर वे पुलिस के भेसवाले दोनों शस्त्र-हस्त व्यक्ति डुंगी में बैठ गए और डुंगी भी द्रुतगति से समुद्र में प्रविष्ट होने लगी। तट पर रहनेवाले जिन कुछ थोड़े-से लोगों ने उस डुंगी को उस प्रकार एक तरुणी को लेकर दूर जाते हुए देखा, उन्हें भले ही वह दृश्य बहुत आश्चर्यकारक प्रतीत हुआ हो, किन्तु चूँकि उसमें शस्त्र-हस्त पुलिस के आदमी भी बैठे हुए थे, अतः किसी प्रकार का शोर-शराबा करने का ख्याल अथवा साहस नहीं हुआ। थोड़ी ही देर में डुंगी काले पानी के निर्जनातिनिर्जन एवं निविड़तम अरण्य के उपकण्ठवर्ती समुद्र-भाग में प्रविष्ट हुई।

कंटक के शरीर से अपना शरीर सटाए हुए कंटकी बैठी थी। उसे

कंटक की सगी बहन मानने वाले दोलकाष्ठ को उसमें कोई वैचित्र्य नहीं अनुभव हुआ। परन्तु उसकी वह मनोहर तनु-लतिका और वह मिलनसारी का हँसना, बोलना, बतराना आदि देख-देखकर दोलकाष्ठ को बार-बार यह अनुभव हुए बिना नहीं रहा कि यदि यह युवती मेरे शरीर के साथ भी इसी तरह सटकर बैठे तो कितना मीठा अनुभव होगा !

छुटकारे के उस आनन्द के आवेग में मालती मातती ही की भाँति पुनरपि हँसने, रूठने, डोलने और बोलने लगी। किशन भी उसे पुनः किशन ही-सा अनुभूत होने लगा। वह 'डुंगी' उस समुद्र की सलिल-तरंगों पर ऊँची-नीची होती हुई थोड़ी-सी जब एक ओर को झुक जाती तब अपने को सम्भालना कठिन हो गया है ऐसा, प्रणय-मधुर बहाना करके मालती किशन के वक्षस्थल पर अपना भार डालकर गिर पड़ती। किशन उसे अपनी भुजाओं से सम्भालकर घरते समय आलिंगन करके पकड़ता। ऐसे स्वच्छन्दता के सौख्य का आस्वाद करते-करते उसका नशा चढ़ता ही गया। उस नशे में अपने चारों ओर अद्यापि विद्यमान छद्मता के आवरण को मालती ने दूर हटा दिया और असावधान अवस्था में बोल गई :

'किती गोड बोलतोस रे तू', लाड़-भरे हाथों से किशन की पीठ पर हल्की-सी थपकी देते हुए मालती मराठी में बोल गई। उसे लगा कि, दोलकाष्ठ को मराठी नहीं आती होगी। कारण अब तक वे सारे उसी हिन्दी में बातचीत कर रहे थे, जिसमें सारे अन्दमानी बातचीत किया करते हैं।

'पण माझ्या पाठीवर तुम्हीं तसंच लड़िवालपणं थोपटून विचारलं नं, तर भी पण तसंच गोड बोलेन की !' दोलकाष्ठ अपने सैनिक बाने के योग्य उजड्ड विनोद से मराठी भाषा ही में बोला ! इतना ही नहीं तो कपटशून्य घनिष्ठता के कारण मालती की पीठ पर उसने स्वयं भी एक हल्की-सी थपकी मारी।

मालती चौंककर बोली, 'अयें, आपको भी मराठी आती है ?

आपका मूल का घर महाराष्ट्र ही में है क्या ?'

'हाँ, किसी से उसका पूर्व-वृत्तान्त पूछना ठीक नहीं इस तरह ! जो कोई अपने-आप ही जितना कुछ बतला दे उतना सुन लेना ही ठीक है ! कंटक बाबू का और हमारा यह प्रस्ताव पहले ही स्थिर हो चुका है !'

दोलकाष्ठ यह बोल ही रहा था कि इतने में पार्श्ववर्त्ती सिन्धु-तट की ओर के पहाड़ पर 'ऊ ऽ ऽ !' ऐसी किलकारियाँ और तालियाँ सुनाई दीं। पहले ही स्थिरीकृत निश्चय के अनुसार ज्वार-भाटे की दृष्टि से जहाँ सुरक्षित स्थल होगा वहाँ उतरवा लेने के लिए जावरे उस बाजू में आकर इस प्रकार का संकेत करने वाले थे। तदनुसार वे जावरे धनुष-बाण से सज्ज होकर एक ओटवाले उतार के समीप आए हुए थे। वहाँ उस डुंगी के आते ही उन्होंने कंटकी-सहित सबको उतरवा लिया। सघन अरण्य में से होकर अनेक मोड़ पार करते हुए, अँधेरा होने से पूर्व ही सारे लोग राजा नानकोबी की उस अरण्यक राजधानी में आ पहुँचे।

जावरे लोग एक बड़ी-सी आग जलाकर उस समय उसके चारों तरफ बैठे हुए थे। उस आग पर एक अरण्य शूकर का पूरा धड़ का धड़ उल्टा टाँग रखा था। उनका जब सम्मिलित शिकार होता है, उस समय उस प्राणी को इस प्रकार आग पर टाँगे रखते हैं, और जब वह खूब धुआँ खा लेता है, भुन जाता है, तब उसे वहाँ से निकाल-कर उसके उस अधकच्चे मांस के टुकड़े सब लोगों में तकसीम कर दिये जाते हैं। वह जेवनार खत्म हुई कि उस आग के चारों तरफ वे सारे स्त्री-पुरुष मिल-जुलकर तथा नग्नावस्था में अपना नृत्य आरम्भ कर देते हैं।

इसमें भी जिसका देखो, उसका ध्यान कंटकी पर ! राजा नानकोबी को इस साहसपूर्ण गूढ़ अभिसंधि का परिज्ञान था ही। उसके विचार से ही कंटक और दोलकाष्ठ कंटकी को छुड़ा लाने के लिए गए थे। अँग्रेजों के उस कड़े पहरे में से कंटकी को इस तरह उठा लाने से तो अंग्रेजों ही का अवमान हुआ और वह भी अपने

जावरों के साहाय्य से एवंच जावरों के आश्रित व्यक्तियों के हाथों ! इस प्रकार नानकोबी को अपना ही गौरव अनुभूत हुआ। उस विजय की मूर्तिमंत पताका ही बनी हुई थी वह कंटकी।

मालती की ओर वे जावरों की विवस्त्र स्त्रियाँ निरन्तर इशारे करने लगीं, "यह क्या है ? उस स्त्री ने अपने शरीर के चारों तरफ यह क्या अभद्र लपेट रखा है ? यों देखने में वह कितनी सुन्दर दीखती है ! तब शरमा-सकुचाकर अपने को कपड़े में छिपाती काहे को है ? क्या पहना हुआ है जी, उसने ?" ऐसे नाना प्रकार के प्रश्न वे आपस में पूछ रहीं थीं।

दोलकाष्ठ ने उनमें से एक स्त्री को जवाब दिया, "वह साड़ी है, साड़ी !"

यह सुनते ही वे सारी औरतें मुँह पर हाथ रखकर एकदम खिल-खिला पड़ीं और नाक सिकोड़कर बोलीं, "छीः, औरतें क्या कभी साड़ी पहनती हैं ? कुछ मर्यादा !"

विवस्त्र रहनेवाली उन स्त्रियों को स्त्री का वस्त्र पहनना जिस प्रकार स्त्रीत्व के लिए अशोभा उत्पन्न करने वाली एक अमर्यादा प्रतीत हुई, उसकी अपेक्षा भी सौ गुना अधिक उन जावरा स्त्रियों को आपाद-मस्तक नंगी तथा निःसंकोच भाव से पुरुषों में उसी तरह उठती-बैठती देखकर मालती को भी हददर्जे की शरम महसूस हुई। उसने एक-दो बार तो अपनी आँखें ही बन्द कर लीं। तत्पश्चात् नीचे की ओर देखती हुई खड़ी रही।

राजा नानकोबी के सामने भी एक सवाल-सा खड़ा हो गया। उसकी रानी फुली ने आग्रह किया, "कंटकी जब तक अपने यहाँ है, तब तक उसे साड़ी नहीं पहननी चाहिये। उसके इस उदाहरण को देखकर अपनी लड़कियों को भी यह अश्लील आदत पड़ जाएगी !"

रानी फुली ने कंटकी की साड़ी के आँचल को थोड़ा-सा झटका देकर ममतापूर्वक संकेतित किया, "छोड़ दे यह साड़ी और स्त्री को सुहाने वाली विवस्त्रतापूर्वक रहने का शिष्ट जनोचित आचरण का

पालन कर !" पर झटके से उतरे हुए आँचल को फिर से यथास्थान रखकर मालती ने उसे और भी मजबूती से पकड़ लिया।

अब मामला कहीं हद से बाहर न चला जाए, इस डर से दोलकाष्ठ बीच में पड़ा और सब बातों को हँसी में उड़ाकर इस बात का आश्वासन दिया, "कंटकी को कपड़े पहनने की जनम की बुरी आदत है ! एकदम उसमें सुधार कैसे होगा ? दो-चार दिन में सभ्य स्त्रियों की तरह विवस्त्र रहने की आदत उसे भी हर हालत में पड़ जाएगी। तब तक शिष्टाचार के विषय में उस पर सख्ती न की जाए, केवल पहनने के प्रकरण ही में नहीं, अपितु खाने, गाने, नाचने आदि के प्रकरण में भी !"

२१. किशन और मालती

"दोलकाष्ठ के मन में, मेरे सम्बन्ध में जो एक दुराशा उत्पन्न हो गई है, मैं उसकी पत्नी बन जाऊँ, वही जो एक अभिलाषा उसके मन में संचारित हुई है, उसका दुष्परिणाम आज नहीं तो कल शत्रुत्व में परिणत नहीं होगा क्या ?"

"सहसा वैसा नहीं होगा। कारण, उसे तेरी अभिलाषा है भी तो यह उस नराधम रफीउद्दीन की अभिलाषा की तरह राक्षसी स्वरूप की नहीं है। आज तक तो उसका स्वरूप सात्त्विक ही है। हमने जो अपना भाई-बहन का नाता आज तक जोड़ रखा है, उसी को वह सच्चा मान रहा है और केवल इसीलिए वह तुझ जैसी कुमारिका को अपनी पत्नी बनाने की इच्छा प्रदर्शित कर रहा है। वह तुझे अभी तक कुमारिका समझता है। हमारा अपना सच्चा वृत्तांत और सच्चा नाता बतलाने का समय आएगा।"

"तब फिर बता क्यों नहीं देता सारी बातें ? सचमुच किशन, मुझे भी अब तुझे, ऊपरी तौर से क्यों न हो, 'भय्या' कहने में शरम महसूस

होती है !"

'सो क्यों ?' किशन ने उसके चूँटी-सी काटी और हँसा।

'छिः, क्यों की क्या पूछता है ? अपने प्रियतम को भी कोई भाई कहा करता है ? जावरों में भी भाई-बहन की शादी को कोई मनुष्यता की रीति नहीं समझता !'

"जावरों में नहीं समझते होंगे, पर मनुष्य-समाज में बहिन की भाई के साथ शादी कभी हुई नहीं, ऐसा मत समझ ! मनुष्य-समाज ने सब तरह के विवाहों को और स्वच्छंद सम्भोगों को भी, जिन-जिन परिस्थितियों में वे इष्ट अथवा अपरिहार्य प्रतीत होंगे, उन-उन परिस्थितियों में धर्म्य माना हुआ है। प्रत्यक्ष गौतम बुद्ध का जन्म जिस कुल में हुआ उसी कुल की कथा ग्रन्थान्तर में यों लिखी हुई है कि सूर्य-कुल के एक राजकुमार को और उसकी बहिन को संकटावस्था के कारण एक निर्जन अरण्य में जन्म व्यतीत करना पड़ा। तब उन भाई-बहनों ने आपस में विवाह किया और उनकी संतति के उदर से ही आगे चलकर अनेक पीढ़ियों के पश्चात् बुद्ध सदृश महात्मा उत्पन्न हुआ।

'राजकुल का रक्तबीज दैवी ! उसका मनुष्यों से सम्बन्ध नहीं होना चाहिए, ऐसी आनुवंशिकता की अतिरेकयुक्त शुद्धता की रक्षा के लिए ब्रह्मदेश के, मेक्सिको के, और अनेक स्थानों के प्रख्यात 'दैवी' राजवंशों में राजपुत्र का विवाह उसकी सगी बहन ही से होना चाहिए ऐसी 'धर्माज्ञा' थी, शिष्टजन-सम्मत प्रथा ही थी !'

'सच-सच बता, कल वह क्या कह रहा था तुझसे, मेरी ओर इतना अधिक हँसते-हँसते उंगली का इशारा करते हुए ?'

"अरी, वह दोलकाष्ठ सचमुच एक सैनिक की तबीयत का खुले दिल का मनुष्य है ! छक्का-पजा उसे मालूम ही नहीं है। ज्योंही वह नाव कल तैयार हो गई त्योंही बड़े आनन्द से उसने मुझे वह दिखाई और पूछा :

' 'इस नाव से तुझे और तेरी उस गोरी बहन को यदि मैंने सुर-

क्षित रूप से स्वदेश में पहुँचा दिया, तो इस मल्लाह को तू इस नाव का किराया क्या देगा ?'

'मैंने कहा, 'क्या चाहिए तुझे ?'

'तब उसने तेरी तरफ उँगली करके कहा, 'सिर्फ वह सोने की प्रतिमा मुझे चाहिए !'

'मैं हँसा, मैंने कहा, 'मुझे कोई आपत्ति नहीं। यदि उसके मन को तू वश कर सका तो, तीर पर पहुँचाते ही, मैं तुम दोनों का विवाह कर डालूँगा।'

'तब एकदम छाती पर हाथ मारकर वह दोलकाष्ठ हँसा, 'वह काम मेरा। मेरे सीटी देते ही यदि वह पंछी मेरे हाथ पर आकर नहीं बैठा तो मैं अपना नाम ही बदल डालूँगा !'

'तत्काल उसने मुझसे वचन भी ले लिया कि यदि कण्टकी अनुकूल हो गई तो मैं उसे दोलकाष्ठ को आनन्द से अर्पित कर डालूँगा।'

'वाह रे तू, और वाह रे तेरा वचन ! किशन !' उसकी ओर रुष्ट दृष्टि से देखती हुई मालती बोली, 'किशन, सारा बुरापन और उत्तरदायित्व मुझपर डालकर तू अपना अलग-थलग हो गया ! पर क्यों रे, यदि वह अब से सचमुच ही मेरे साथ लाड़-प्यार करने लग गया और मैं उसकी हो गई तो···?'

'तो क्या ? तेरी इच्छा पूर्ण करके तुझे आनन्दयुक्त देखने के लिए मैं अपने-आपको उसके पश्चात् सचमुच का तेरा सगा भाई समझने लगूँगा और उसके साथ तेरा विवाह अपने हाथों से कर दूँगा !'

क्रोध के एक झटके के साथ उसकी गोद में से उठने की इच्छा वाली मालती को हाथ पकड़कर उसी तरह से बैठाते हुए किशन समझाने-बुझाने लगा :

"इस तरह गुस्सा क्यों करती है ? जब तूने सवाल किया था, तब तुझे किस तरह अच्छा लगा था ? तो जैसे दो वैसे लो ! पर मालती, मैं बिल्कुल हृदय से कहता हूँ तुझसे, कि तुझ जैसी सुन्दर

और गोरीपान तरुणी के लिए मेरे जैसा काला-कलूटा, कुरूप और किसी भी प्रकार की विशेषता से हीन प्रियतम अनुरूप नहीं है, यह मैं अपने मन में पहले ही से जानता हूँ। मुझे यदि तेरा स्नेह ही मिल गया, तेरी संगति में सेवक के रूप से भी यदि मैं रह सका, तो भी मेरी योग्यता के अनुसार मुझे जो मिलना चाहिए वह मिल जाएगा, ऐसा मैं मानता चला आया हूँ। मेरी अपेक्षा भी जो तेरे लिए अधिक अनरूप है, उस प्रियतम के चुनने में तू सर्वथा स्वतन्त्र है।"

'ठीक है न ? मैं स्वतन्त्र हूँ तभी तो मैंने चुनाव किया है। चुनाव तेरी आंखों अथवा मपैने से न करके मैंने अपनी आंखों और मपैने से इसी तरह के प्रियतम का किया है ! मेरे किशन ! मेरे प्रियतम !'

इतने में पुनः 'ऊ ऽ ऽ ऽ ! कण्टक बाबू ऽ ऽ' ऐसी किलकारियां सुनाई दीं।

'उठ-उठ ! वे जावरे फिर अपने को बुलाने चले आए हैं, अब जाना ही चाहिए उनके साथ समारम्भपूर्वक रोने के लिए !'

कण्टक और कण्टकी जब जावरों की खोह पर पहुँचे तब उन जावरों का मृतक संस्कार अपने पूरे जोर पर था। वह मृत जावरा राजा नानकोबी का एक विशेष स्नेही और जावरों का एक 'दादा' था, अतः उसके मृतक संस्कार के लिए वे सारे जावरे आए हुए थे। बैठे उस शव को बीच में रखकर सब लोग उसके चारों ओर एक वृत्त में बैठे हुए थे। उस मृत व्यक्ति की पत्नी और बच्चों को स्वभावतः ही दुःख ने पहले ही से विह्वल कर रखा था। उसके साथ ही एक खास स्वर और ताल पर वे सारे जावरे भी रोने लग गए।

वह सार्वजनिक संगीत-मिश्र आक्रन्द असंवरणीय-सा हो गया। इस बीच, उनमें से कुछ वृद्धों ने उस शव की एक गठरी बांधी और उसे लेकर वे सब एक वृक्ष की ओर चले। उस वृक्ष में ऊंचाई पर एक खोखल थी। उसमें उस शव की गठरी इस ढंग से बिठाई गई कि, मानो वह मनुष्य पालथी मारकर मुंह उठाकर सजीव मनुष्य की तरह

सबकी ओर देख रहा हो। जावरों की ठिगनी जाति के लिए यह वृक्ष उतना ऊंचा प्रतीत हुआ, कि उनमें से कोई भी इतनी ऊंचाई तक उस शव को उठाकर नहीं रख सकता था। अतः यह काम दोलकाष्ठ के सुपुर्द किया गया। उसने स्वयं उस मुर्दे को उस खोखल में ले जाकर बिठा दिया। जावरों के मृतक संस्कार की जब यह विधि पूरी की जा रही थी, उस समय सबने तालबद्ध आक्रोश की परमावधि कर डाली।

एक बूढ़ा अगुआ उस वक्त आगे आया और टूटे-फूटे चार-पांच शब्दों में अनेक हावभावों की भर्ती डालकर उसने जो भाव व्यक्त किया, उसे यदि शब्दों ही में कहना हो तो यों कहा जा सकेगा :

'अब इस अपने मृत सम्बन्धी की ओर तीन महीनों तक कोई भूलकर भी न देखे। उसका यदि एकांतवास भंग हो गया तो उसका भूत गुस्सा करेगा। हम उसे भूल तो नहीं जाते, उसकी प्रीति के प्रति कृतघ्न तो नहीं हो जाते, यह सब उसका भूत इस ऊंची खोखल में बैठा-बैठा देखता रहेगा। इसलिए इन तीन महीनों में कोई भी शृंगार-सज्जा अथवा आमोद-प्रमोद न करे। नाच-रंग तीन महीने तक बन्द! रंगीन मिट्टी के नखरे बन्द!—भूरी मिट्टी ही सिर्फ शरीर पर मलनी चाहिए, कारण जहरीले मच्छर वगैरह जो जंगल में नंगे जावरों को काट खाते हैं, उनसे देह-संरक्षण के लिए किसी न किसी मिट्टी का लेप आवश्यक होता है।'

एक विशिष्ट आवाज में सब जावरों न इस आदेश को स्वीकार किया और सब अपनी खोह की ओर वापिस चले गए।

किशन और मालती भी अपनी स्वतन्त्र गुफा की ओर चल पड़े। जाते समय बड़ी आजिजी से उन्होंने दोलकाष्ठ को भी अपने साथ चलने के लिए कहा और पूछा : 'जो नाव तूने उस दिन मुझे दिखाई थी अब उसे किस दिन समुद्र में ढकेलना है? परसों तूने कहा था कि अब सारी तैयारी पूरी हो चुकी है।'

'बिल्कुल निश्चित दिन बतलाता हूँ। तीन महीने और तीन दिन

समाप्त होते ही जो दिन उदित होगा, उसी दिन नाव को समुद्र में ढकेलना है !...

'राजा नानकोबी ने मुझे अभी जताकर कहा है कि, जब तक इस जावरे का सूतक समाप्त न हो तब तक नौका समुद्र में नहीं छोड़नी। तुझे होगी सादी जल्दबाजी, पर मुझे तो भय्या, शादी की जल्दबाजी है न ! क्यों कण्टकी, ठीक है या नहीं ? कण्टक ने पर-तीर पर पहुँचाने के बदले में जो दाम देना मंजूर किया है उसकी हुण्डी सकारी जाने-वाली है तेरे ही प्रम के साहूकारे पर, समझी !" ढिठाई के साथ दोलकाष्ठ ने हंसते-हंसते कण्टकी के गाल पर एक लाड़भरी चुटकी मारी।

'पर, काम होने के बाद दाम का सवाल ! कण्टक द्वारा दी गई हुण्डी सकारी जाएगी तो उसी दिन सकारी जाएगी, यह बात मल्लाह को भी भुलानी नहीं चाहिए !" मछली की आमिषमात्र दिखाई दे सके, इस चतुरता से मालती ने अपना जाल फेंका।

२२. भाई बहिन का मिलन

'किशन ! ए किशन !" अपनी गुहा के द्वार पर खड़ी मालती ने मन ही मन दो-तीन बार पुकारा। वह कुछ हताश-सा मुंह किए खड़ी थी। फिर मन ही मन गुनगुनायी—बोलते-बोलते जाने किधर चला गया। सवेरे का गया इतनी देर होने पर भी अभी तक नहीं लौटा। उन जावरों ही की धुन में उधर का उधर ही अटक गया मालूम पड़ता है !—पर यह कौन आ रहा है, उन बांस की झाड़ियों में से बांस जैसा ही ऊंचा ? दोलकाष्ठ ! और कौन ? मेरा मन बस में करने के लिए कितना प्रयत्न करता रहता है बेचारा ! इतना प्रम-युक्त और साफ हृदय का मनुष्य है यह कि सचमुच ही उसके ऊपर मुझे तरस आता हैं। पर क्या करूँ ? उसके प्रम को मैं स्वीकार भी

नहीं सकती और इनकार भी नहीं सकती। आज महीनों से सवेरा हुआ कि इस अरण्य के ताजे-ताजे फूल और ताजा-ताजा शहद लेकर मुझे उपहार देने में एक दिन का भी इसने नागा नहीं किया। मैं इसे पति मान लूं ऐसा जो एक असंवरणीय मोह इसके मन में उत्पन्न हुआ है, उसे त्यागकर यह यदि मुझसे कहे कि तू मुझे भाई मान ले तो मैं अभी इसी क्षण अपने अन्तःकरण से उसे अपना भाई बना लूंगी, कारण अब मुझे सचमुच ही वह पसन्द आने लगा है।

मालती इतना मन में बोल ही रही थी कि दोलकाष्ठ उस गुहा के समीप आ पहुँचा। उसके एक हाथ में एक सुन्दर शंख था। उसके दूसरे हाथ में एक अत्यन्त हरे पत्तों का द्रोण था। उसमें ताजे फूल थे।

'कितने सुन्दर फूल हैं ये ! मैं आपकी आभारी हूँ !'

'पर कण्टकी, इन सब फूलों से बढ़कर सुन्दर एक फूल और है इस अरण्य में ; पर वही अभी कुछ मेरे हाथ में नहीं आया है !"

"काहे का है जी, वह इतना सुन्दर फूल ?'

'तेरे सौन्दर्य का ! कण्टकी···' दोलकाष्ठ ने उद्दंडतापूर्वक अपना मांसल हाथ उसकी कोमल ठोड़ी पर लगाने के लिए आगे बढ़ाया।

'छिः' ठोड़ी बचाकर पीछे की ओर हटकर पर क्रोध न जताती हुई कण्टकी प्रत्युत्तर में बोली, "अं हं। वह फूल समुद्र के इस अण्डमानी तट के जंगल का भले ही रहे, पर हाथ में यदि आता हुआ तो आएगा समुद्र के उस परली ओर के भारतीय तट के जंगल ही में !'

'उसी आशा पर तो मैं जीवित हूँ। और मेरी नाव भी यदि तैरेगी तो उसी आशा पर तैरेगी। बस, अब सिर्फ तीन दिन बाकी हैं। आज ही जावरों के तीन महीनों का सूतक समाप्त होने वाला है। अपने को अब उधर ही चलना है। वह खत्म हुआ कि चौथी को हमने अपने साहस की नाव समुद्र में ढकेल ही दी समझो ! देश की तरफ ले जानेवाली हवाएं भी अब अनुकूल वह रही हैं। अब इतने पर जो कुछ परमेश्वर करेगा वही सत्य है।'

'जो भलाई की बात हो बिल्कुल वही करेगा परमेश्वर ! आज

मुझे ऐसा शुभ शकुन दीखा है कि मुझे अब किसी प्रकार का सन्देह ही नहीं रह गया। मैंने कण्टक भय्या से सब किस्सा सवेरे ही कह दिया था।'

'वह कौन किस्सा है, क्या मैं जान सकता हूँ ? शकुन बिल्कुल सत्य हुआ करते हैं, समझी !'

"अच्छा तो सुनाती हूँ। कल रात मेरी लाडली मां सपने में दिखाई दी। अपने दोनों हाथ फैलाकर वह मुझसे कह रही है, 'अरी चल न, देखती क्या है, आ, मेरी भुजाओं में घुसकर आलिंगनपूर्वक भेंट मुझसे ! मार छलांग, डर मत, मैं तुझे सहारा दूंगी !' मां के ये शब्द सुनते ही मैंने, एक जोर की छलांग मारी, पानी की छोटी-सी धारा को जिस तरह लांघते हैं, उसी तरह समुद्र को लांघकर मैं झट से अपनी मां की भुजाओं में समा गई। इतने में मानो दृश्य-परिवर्तन हो गया। मैं अपने घर में हूँ; झूले पर मैं और मेरी मां बैठी हैं। मुझे जो गाने पसन्द हैं, वह मेरी मां मुझे गा-गाकर सुनाती है। सचमुच दोलकाष्ठ, उस स्वप्न के बाद से मैं अधीर हो गई हूँ; मेरी मां के वे गाने मेरे कानों में गूंज रहे हैं; मेरी मां ! हाय, अब वह मुझे कब मिलेगी !" कण्टकी रोने लगी।

'चूप हो, चुप हो। रो मत, तुझे अपनी मां की स्मृति जिस प्रकार विह्वल कर देती है, ठीक उसी तरह मुझे भी अपनी मां की स्मृति विह्वल करती है। मेरी मां—मेरी एक छोटी-सी दस-बारह बरस की लाडली बहन ! मेर अतिरिक्त उनके लिए अन्य कोई आधार नहीं था ! वे लोग भी मेरी इसी प्रकार राह देखा करते होंगे ! मेरा और उनका इसी प्रकार बिछोह हो गया है ! उनसे मैं कब जाकर मिलूंगा, यही मैं भी सोचता रहता हूँ।" इतना बोलते-बोलते दोलकाष्ठ का भी गला भर आया और आंखों से अश्रुओं की धारा बहने लगी।

विशालकाय, रूक्ष और मुस्टण्डा दिखाई देने वाले उस दोलकाष्ठ को इस तरह भावाविष्ट देखकर कण्टकी को कौतुक-सा प्रतीत हुआ।

उसकी ओर क्षणभर दत्तैक-दृष्टि निहारते रहने के पश्चात् उसने पूछा :

'तुम्हारी वह छोटी बहन अब बड़ी हो गई होगी !'

'काहे की बड़ी हो गई होगी ! होगी कोई बीस-एक बरस की। उसे परेशान करना हो तो बस उसे यों दोनों हाथों पर उठाया और जब तक वह चिल्लाने न लग जाए तब तक उसे जोर से फिराते रहे। तेरे भाई ने कभी सारे जनम में इतना लाड़ किया है ?'

'सच कहूँ क्या...'' मालती भावना के आवेश में एकदम बोल बैठी, ''मेरा एक इकलौता ऐसा ही प्रमी भाई-था...'

'क्या मतलब ?'' दोलकाष्ठ ने बीच ही में टोककर कहा, ''था के क्या मानी ? तब यह कण्टक कौन लगता है तेरा ?'

मालती यह प्रश्न सुनते ही इतनी चकरा गई कि चेहरा एकदम फक्क पड़ गया। पर इतने में कण्टक ही उधर आता दिखाई दिया। वह विषय स्वभावतः ही बन्द हो गया।

'वह देख कण्टक ! नाम लेते ही चला आया ! सौ बरस की उम्र है तेरी !'' हँसते-हँसते दौड़कर वह कण्टक से लिपट गई।

''शाबास, दोलकाष्ठ, शाबास ! भले मानस, मैंने तुझे इधर भेजा कण्टकी को बुला लाने के लिए, सो तू यहाँ आकर गप्पें ही छाँटने लगा ! सूतक-समाप्ति के संस्कार के लिए वे सारे जावरे चल पड़े न उधर ! राजा नानकोबी हमारी ही राह देख रहा है। चलो-चलो झटपट !'

'कण्टक बाबू, मैं जो ताजा शहद लाया हूँ, उसे खाए बगैर यहां से आगे एक कदम नहीं रखना। कण्टकी, वह शहद ले आ !'

दोलकाष्ठ के आग्रह को सिर माथे करके मालती शहद ले आई। हरे-हरे पत्तों पर उस शंख के सुन्दर गंगासागर से वह शहद परोसा गया और उस मधुर आरण्यक प्रातराश के समाप्त होते ही वे तीनों जावरों की उस खोह की ओर चले गए।

सूतक के कारण गत तीन महीनों से उनकी जो नृत्यलिप्सा संचित

होती चली आई थी, उसकी पूर्ति करने के ख्याल से सूतक-समाप्ति का जो सार्वजनिक नृत्य आज सिन्धु-तट पर होने वाला था, उधर सारे नग्नकाय आबालवृद्ध स्त्री-पुरुष मिल-जुलकर जाने लगे। और इधर, 'अच्छा, अभी थोड़ी देर में हमभी आते हैं नाच में शरीक होने के लिए।' इस प्रकार राजा नानकोबी से कहकर कण्टक-कण्टकी दोलकाष्ठ सहित अपनी गुहा की ओर चले।

गुहा के समीप जाकर वहां के शिलातक्त पर वे तीनों बैठे। कण्टकी कुछ फल, कच्चे नारियल, शहद और भुना हुआ मांस ले आई। भूख तो लग ही रही थी। सबने उस वन्य भोजन को अत्यन्त रसास्वादनपूर्वक खाया।

'बस ! अब इन वन्य मिष्टान्नों के खाने के और दो दिन ही बाकी रह गए। परसों से वन-भोजन समाप्त करके समुद्र-भोजन का आरम्भ करना होगा।' दोलकाष्ठ कण्टक की पीठ पर थपकी देकर आश्वासन देने लगा।

'और परमेश्वर की अनुकम्पा रही तो अगले महीने की इसी तारीख को हमारा अपने घर में, अपने देश में प्रियजनों के मध्य हंसते-खेलते प्रिय भोजन चल रहा होगा !' कण्टक ने कण्टकी की पीठ पर स्नेहभरी थपकी मारी।

'परमेश्वर की अनुकम्पा रही तो, ऐसा क्यों कहता है अब ?" दोलकाष्ठ ने अत्यन्त उल्लसित वृत्ति से कण्टक को बीच ही में टोक दिया, 'परमेश्वर की अनुकम्पा भी हो ही गई है न आज ! कण्टक-बाबू, मैंने नाव अच्छी तैयार की है, पुलिस के कपड़े, बन्दूक, गोला बारूद भी हमने तैयार रख लिया है। जावरों के प्रवीण नाविकों की डुंगियां दूर तक साथ आने वाली हैं। नाव में मांस, मधु, फल, मद्य, भरपूर अन्न-जल संगृहीत करके रखा है। मछलियां पकड़ने के लिए जाले ले लिए हैं। देश पहुँचते ही जो धन संग्रह चाहिए सो वह भी हमने एकत्र कर ही लिया है। लाडली कण्टकी, जो-जो पुरुष-प्रयत्न-साध्य वस्तु थी वह-वह हमने जुटा ली। पर यह नटखट समुद्र है,

जिसे यों ही काला पानी नहीं कहा जाता। उस काल के मुंह में सीधी-सादी हवा से चलने वाली नाव ढकेलकर जाना है, उसमें सफलता तो दैव ही के अधीन रहेगी, परमेश्वर की कृपा अपेक्षित है, इस कल्पना से मेरी छाती सदा धड़कती रहती थी। पर आज समुद्र के उस 'जुरुविन' नामक भूत पर प्रतिबन्धक का काम करने वाला वह मन्त्र और यह प्रत्यौबन्ध जब मुझे उस चेटकी ने दिया, तब मुझे सचमुच बहुत सन्तोष हुआ। दैवी कृपा की यह देख वह लिखित वचन चिट्ठी !' ऐसा कहते हुए दोलकाष्ठ ने उस मृत जावरे का चेटकी द्वारा प्रदत्त उंगली की पोर जितना मन्त्रित अस्थिखण्ड निकालकर गम्भीरतापूर्वक कंटक के सामने रख दिया और कहा :

'मेरी जो लाडली है न कंटकी, तेरी बहन और मेरी प्रियतमा ···वह यदि सुरक्षित और सुखी रही तो बस हम भी सुरक्षित और सुखी रहेंगे। अतएव यह ताईत मुझे उसी के गले में बाँधना है और मुझे दीक्षा देते समय चेटकी ने जिस मन्त्र का उपदेश दिया था, उसीका मैं भी उसके कान में उपदेश देने वाला हूँ। चल आ इधर, उस आँचल को थोड़ा-सा नीचे की ओर सरका ले।'

दोलकाष्ठ संकोचशून्य प्रेमभाव से कंटकी के कंधे पर हाथ रखकर उसके अधूरे किंतु शान के साथ कसकर बाँधे हुए आँचल को ढीला करके नीचे की ओर सरकाने लगा।

उसकी इस छेड़छाड़ में उपद्रवकारी लंपट वृत्ति नहीं थी। इस लिए कंटकी को दोलकाष्ठ पर गुस्सा नहीं आता था प्रत्युत सहानुभूति और करुणा ही प्रतीत होने लगी थी। किन्तु वह इस बात को समझती थी कि यदि वह इसके आतुर प्रणय को अनिबंध रूप से बढ़ने दे तो देश में पहुँचने पर उसके प्रणय एवंच विवाह-विषयक आग्रह का अनादर करने के लिए कोई मार्ग नहीं रह जाएगा, पुनश्च उसे संशय में न रखकर यदि वह वाणी से तथा अपने व्यवहार से यह पक्का जतला दे कि वह उसका पति रूप में वरण करेगी तो देश पहुँचने के बाद उससे विवाह करने से इन्कार करने पर दोलकाष्ठ के मन में विश्वास-

घात की जानकारी के कारण भयंकर वैरबुद्धि के जाग उठने की भी सम्भावना है, उस भीति के कारण ही उसने दोलकाष्ठ के हाथ को थोड़ा-सा परे करते हुए और आँचल को अपनी कमर में फिर खोंसते हुए कृतककोपपूर्ण स्वर में कहा :

'ताईत ही बाँधना है न, तो वह मेरा कंटक भइया बाँध देगा, तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं है बेकार की इस छेड़छाड़ करने के लिए !'

कंटकी की उस भर्त्सना से दोलकाष्ठ के प्रणयी मन को ऐसी गहरी चोट पहुँची कि उसकी आँखों से आँसू ही टपक पड़े—साथ ही शब्दों में से क्रोध भी ! वह कंटकी के पास से दूर हटकर खड़ा हो गया। उस अपमान को मज़ाक के रूप में न लेकर उसने कंटकी से अत्यन्त विह्वल-से स्वर में कहा :

'कंटकी, अभी तक तू मुझे पराया ही समझती है न ! तेरे स्वयंवर का एक पण समझकर ही टटपूँजी नाव को समुद्र में डालकर तुम्हें इस काले पानी से उस पार पहुँचाने के लिए मैं अपनी जान की बाजी लड़ा रहा हूँ यह तो मुझे मालूम नहीं, किन्तु तेरे मन में मेरे सम्बन्ध में अब भी इतना प्रभाव हो तो जबरदस्ती तेरे सामने नाचते हुए, तुझे तकलीफ पहुँचाते हुए अपनी पगड़ी उछलवाने वाला आदमी कम अज़ कम यह दोलकाष्ठ तो नहीं है। तू अगर आज तक मुझसे आगे चलकर विवाह करने की बातें बनाकर मुझे उल्लू ही बनाती आई हो, तो वह तेरे लिए कोई शोभाजनक बात नहीं है। उसका परिणाम···'

कंटक ने दोलकाष्ठ को आज तक इतने गम्भीर एवं विषादपूर्ण स्वर में बोलते हुए नहीं देखा था। अतः दोलकाष्ठ का ऐसा बिगड़ा हुआ राग-रंग देखते ही कंटक सहम-सा गया, और दोलकाष्ठ के आगे के कोप-परिपूर्ण उद्गारों के व्यक्त होने से पूर्व ही उसे ठण्डा करने के विचार से अत्यन्त नरमाई से बोलने लगा :

'कैसा परिणाम, मेरे मित्र ? ऐसे स्त्री-सुलभ संकोच को देखकर

गुस्सा आना चाहिए ? या आनन्द प्रतीत होना चाहिए ? प्रेयसी की अनुरंजना कैसे करनी चाहिए, यह उन जंगली जानवरों को जितना मालूम है उतना भी तुझे मालूम नहीं, ऐसा प्रतीत होता है। बाँध वह ताईत तू ही कंटकी के गले में ! मैं उसका बड़ा भाई हूँ। मेरा कोई अधिकार नहीं है क्या उस पर ? इसलिए यह चतुर लड़की जब तक भाई के नाते मैं उसे आज्ञा न दूँ, तब तक ऊपरी तौर पर अस्वीकार जतलाती रही ? हँ, बहन, बाँधने दे दोलकाष्ठ को अपने गले में ताईत !'

'गुस्से में आ गए इतने ही में ! बिलकुल पगले हो तुम !" कंटकी ने समय-सूचकता प्रदर्शित करते हुए एक आकर्षक मुस्कराहट के साथ दोलकाष्ठ की उँगली पकड़कर खींच ली। उस उँगली पकड़-कर खींचते ही परवश हाथी की भाँति वह दोलकाष्ठ झट से उसके समीप खिंचा चला आया और वह पुनः प्रसन्न-वृत्ति से उससे कहने लगा :

'अब यह ताईत बाँधना है न तेरे गले में ! ऐसे ! हाँ, सामने हो इस तरह से ! गले को ठीक से ऊपर उठा। गिरने दे उस आँचल को ! बार-बार उसको ठीक करने के लिए हाथ क्यों लाती है बीच में ! ···हाँ, यों ! तनकर खड़ी रह, समझी !'

उसके सामने बिलकुल समीप खड़े होकर उसने ताईत उसके वक्षस्थल पर ठीक से लटकता रहे, इस अन्दाज़ से बाँधना शुरू किया।

इतने में उसके वक्षस्थल पर और गले के मध्यभाग में कुछ लाल-लाल से चिह्न उसे दिखाई दिये।

'यह क्या ? ये लाल-लाल खरोंचें कैसी हैं तेरे गले के नीचे ? कुछ अक्षर गोदे गए हैं ?'

'क्या ? मा—ल—ती ? मालती ?'

ज्योंही उसने ये शब्द जोर से पढ़े, त्योंही दोलकाष्ठ के शरीर पर रोमांच खड़े हो गए। वह कंटकी को निर्निमेष दृष्टि से निहारने लगा। क्षणार्ध ही में उसने अत्यन्त स्निग्ध किन्तु अत्यन्त विस्मयपूर्ण स्वर में

कंटकी से पूछा :

'सच बता, सौगन्ध है तेरी लाड़ली माँ की ! यही तेरा सच्चा नाम है न ? तू मालती ही है न ? किसने गोदा था यह नाम तेरे वक्षस्थल पर ?'

कंटकी को जब मालूम पड़ा कि, उसका असली नाम इस प्रकार अचानक दोलकाष्ठ को मालूम पड़ गया है, तब वह थोड़ी-सी सहम गई, तो भी किसी प्रकार की हानि की कोई सम्भावना दृष्टिगत न होने के कारण और इस कारण भी कि दोलकाष्ठ ने अत्यन्त स्नेहाकुल स्वर में उसकी अपनी ही माँ की सौगन्ध दिलाई थी, अतः उस अपनी माँ की स्मृति के ताज़ा होते ही थोड़ी-सी भावमूर्च्छित होकर बोल गई :

'वह जो नाम है न, वह मेरा बचपन का प्यार का नाम है। मेरे बड़े भैया ने प्रेम में आकर गोदा था एक दफा ! पर मेरा मूल का नाम तो कंटकी ही है।'

'नहीं ! मालती, तू मालती ही है। यह देख, उस नाम के चारों ओर कढ़े हुए बेल-बूटे, वह देख उस नाम को गोदते-गोदते मेरे हाथ से भूल से 'ल' को लगी हुई 'आ' की काना ! वह गलत रूप 'मालाती' ! —सब गलत ! सब असम्भव !' गद्गद स्वर से मालती को नखशिखान्त तक निहारता हुआ दोलकाष्ठ बोला, 'कंटक बाबू, आप कोई भी क्यों न हो, पर यह कंटकी मेरी सगी बहन मालती है ! सत्य कहिये, यह सारा किस्सा क्या है ?'

कंटक आश्चर्य से सोचने लगा। बहुत बरसों पहले मालती का बड़ा भाई सज़ा पाकर काले पानी गया था, यह उसे तत्काल स्मृत हो आया। परन्तु यदि दोलकाष्ठ मालती का सच्चा भाई ही है तब तो उसके मार्ग की एक और बड़ी बाधा अपने-आप ही अपसारित हो गई। दोलकाष्ठ के मन में अब मालती के विषय में न तो कोई विषय-लालसा निर्माण होगी और न वैर-भावना उत्पन्न होने का कोई भय रह जाएगा। यह उसके ध्यान में आ गया और वह दोलकाष्ठ से

बोला :

'मित्र, जो सत्यवार्ता है, तुझे वही मैं सुनाऊँगा, पर···पर··· थोड़ा ठहर, इस मेरी मालती का बड़ा भाई लड़ाई पर गया और वहाँ उसके सिर पर एक चोट आ गई। वैसी कोई निशानी तेरे सिर पर···'

कंटक अपना वाक्य अभी पूरा भी नहीं कर पाया था कि, दोलकाष्ठ ने अपने माथे पर आए हुए बालों के गुच्छे को दोनों हाथों से हटाकर अपने माथे को कंटक के सामने कर दिया। दो अंगुल चौड़े घाव की निशानी स्पष्ट रूप से उसके माथे पर दिखाई देती थी। निशानी मिल गई!

कंटक ने अपनी अब तक की सारी कथा कह सुनाई। उन्हें कंटक और कंटकी—ये बनावटी नाम क्यों लेने पड़े, यह तथा अन्य सारा वृत्तान्त कह दिया।

कंटक बोला, 'तुम्हारे लड़के के सिर पर लड़ाई में एक चोट आई होगी ऐसा मुझे अन्तर्ज्ञान द्वारा दीख रहा है' कहकर उस अधम रफीउद्दीन ने साधु के भेस में जब कहा, तभी मालती की माता की उस पर श्रद्धा बैठी। इस संकट के चक्र में पड़ने के लिए एक दृष्टि से जो मूल कारण बनी, वही यह तेरी चोट की निशानी आज तुम भाई-बहनों के पुनर्मिलन का भी कारण बनी। उसी प्रकार उस अधम कतव को तेरे ही हाथों प्राणदण्ड भोगना पड़ा और इस प्रकार अविज्ञात रूप से मालती के भाई ने मालती के अवमान का बदला चुकाया, यह योगायोग जितना ही आह्लाददायक है, उतना ही आश्चर्यकारक भी है!'

'अरे, क्या कहता है! उस रफीउद्दीन को तो मैंने अपना बदला समझकर मारा है। मेरी बहन का बदला लेने के लिए उसका गला एक बार और इस तरह घोंटकर एक बार फिर उसे इस तरह जान से मारना चाहिए!' क्रोध के आवेश में हवा का ही गला दोलकाष्ठ ने कसकर दबाया।

'रहने दे भय्या, अब उस गुस्से को !' अपने भाई की तथा बचपन से लेकर अब तक के सारे सुख-दुःखों की स्मृति से मालती के नेत्र भर आए थे। उसने अपने भाई का हाथ पकड़कर धीमे से नीचे की ओर खींचा और अपने हाथ से उसे दबाती हुई लाड़-भरे कंठ से उसके क्रोध को शान्त करने लगी।

'मालू बहन !···मेरे हाथों तेरा कुछ भी तो कल्याण नहीं हुआ। तेरे मन के अनुकूल···'

'भय्या, अब तू मुझसे मिल गया, इसी में मेरा सब-कुछ मनज्जुकूल हो गया है ! कुछ और होना बाकी रहा है तो वह अपनी माँ की भेंट ! भय्या, मुझे एक बार अपने पेट में छिपा ले न !'

'मालू ! बहन !' अपने गले से लिपटी हुई उस अपनी बहन को सहलाता हुआ, उसके बालों के ऊपर से हाथ फेरता हुआ मिलन की उस मधुर अचेतावस्था में वह बीच-बीच में योंही पुकार उठता, 'मालू !' 'मेरी बहन !' और वह भी लाड़-भरे कंठ से उत्तर देती– 'ऊँ !' 'हाँ !' 'भय्या !'

क्षण-भर बाद मालती की भुजाओं को छुड़ाकर उसका बड़ा भाई किशन की ओर मुड़ा।

'किशन, मेरी बहन को अनेक संटकों में से तूने बचाया है। तूने मेरी बहन मुझे वापस दी; मैं भी यह ले, तेरी प्रेयसी तुझे वापस देता हूँ ! अपने आशीर्वाद के दहेज के साथ इस अपनी भगिनी का मैं यथाशास्त्र कन्यादान कर रहा हूँ !'

'विवाह के पश्चात् न ?' किशन हँसा।

तत्पश्चात् उस निश्चित किए हुए दिन उन आतिथ्यशील जावरों ने बड़े साजबाज से उन तीनों को विदा दी। जिस समय किशन, मालती और उसका भय्या (दोलकाष्ठ को अब सब लोग 'बड़े भय्या' कहने लगे थे) उस नाव में बैठे, चाँदनी रात के समय चुपचाप तट का परित्याग किया, उस समय समुद्र के भूत को, 'जुरुविन' को प्रसन्न करने के लिए जावरों ने नानाविध चेटक कृत्य किए ! और दो-

तीन डुंगियों को साथ ले जावरों में से कुछ प्रवीण नाविक अंग्रेज़ों के पहरे के स्थानों से बचाकर काले पानी के भरे समुद्र में उन्हें पहुँचा आए।

काले पानी के भरे समुद्र में !—वह केवल वाताश्रित तरी ! रात के अन्धकार में तो चारों दिशाओं में साक्षात् काल ही अपनी जंभा खोले खड़ा रहता ! मध्य रात्रि काले कुट्ट करोखे में वह अशाख विस्तीर्ण समुद्र जब गरजता तब ऐसा प्रतीत होता मानो मृत्यु ही खर्राटे भर रही हो ! पर आजन्म कारावास के बन्धनों में सड़ते रहने की अपेक्षा यह साहस—यह मृत्यु का आलिंगन—ये महाकाल के भुज-पाश—सचमुच इसमें कितना अधिक सुख है !

काले पानी के समुद्र में वह नाव भी अनाटंक गति से चली जा रही थी।

अनुकूल वायु उनके पाल में भरी हुई थी। पर उसी के आधार पर कुछ वह तरी निष्कंटक रूप से नहीं जा रही थी। आजन्म कारा-वास के पद-बन्धनों को तोड़कर हम काले पानी से भागे जा रहे हैं, इस कल्पना के आनन्द का पवन जो उनके हृदय के पाल में भरा हुआ था, मुख्यतः उसीके आधार पर वह तरी इस तरह बे-लगाम चली जा रही थी।

मनुष्य की आशा-निराशा,पाप-पुण्य, न्याय-अन्याय, साध्य-असाध्य आदि की कसौटी पर जग की गतिविधियों को कुछ परखकर देखते नहीं बनता। उस विचार की कोई खास गिनती भी नहीं की जाती। अपने को जो वस्तु संभव प्रतीत होती है वह अकस्मात् असंभव हो जाती है, और जो असंभव प्रतीत होती है वही कभी-कभी अकस्मात् संभव हो जाती है। इसी को हम योगायोग कहते हैं। निश्चय से उन गतिविधियों का हमारी इच्छा और हमारे तर्क के अनुरोध से कुछ भी खुलासा नहीं हो पाता ऐसा हम माना करते हैं।

सर्वथा राजमहल में सैकड़ों दास-दासियों द्वारा लालित-पालित होते समय अथवा प्रत्यक्ष राजरानी द्वारा गोदी में लेकर खिलाए जाते

समय मनौती के आयास से प्राप्त हुआ-हुआ राजकीय पिंडवाला बच्चा ऊँचे प्रासाद पर से, रानी की अथवा राजा की गोद में से फिसलकर नीचे फर्श पर गिर पड़ता है और चकनाचूर हो जाता है! इसके विपरीत भीषण भूकंप के धक्के के समकाल जब नगर के नगर ढहकर ज़मीन में बिला जाते हैं और उसीमें खुदाई करने पर किसी माँ का दूधपीता बच्चा दो पत्थरों के तंबू के नीचे सुरक्षित रूप में मिल जाता है—यही है योगायोग! दैव! जिसके कार्यकारण की उलझन को हम सुलझा नहीं पाते अथवा जो हमारी इच्छा के अनुरूप सुलझ नहीं पाती, उसी को हम दैव कहते हैं।

दैव, योगायोग का दूसरे शब्दों में कहें तो अर्थ ही है हमारा अज्ञान, हमारी निराशा!

काले पानी के भरे सागर में हवा के आधार पर चलने वाली इस छोटी-सी नाव में बैठे हुए प्रतिक्षण मृत्यु की चट्टान पर टक्कर खाने की संभावना वाले इन तीन जीवों के दैव में उस उलटे-सुलटे योगायोगों में से कौन-सा योगायोग आनेवाला है?

आज आठवाँ दिन जैसे-तैसे करके उग आया। संकटों का मुकाबला करते-करते उनका भय भी कुछ न्यून हो चुका था। केवल यही एक अप्रिय बात थी कि अन्न तथा पानी का संग्रह खत्म होने के करीब आ गया था, पर यात्रा भी तो आधे से अधिक समाप्त हो चुकी थी। वे लोग बीच-बीच में मछलियाँ पकड़ते थे और खाते थे, उससे उनका कुछ निभाव हो जाता था। पर अशक्ति बढ़ गई। उसमें भी मालती तो बहुत ही श्रांत हो चुकी थी। तथापि उसका बड़ा भय्या उसे बताता था कि, अब आधे से अधिक यात्रा खत्म हो चुकी है।

आठवाँ दिन भी निर्विघ्न रूप से व्यतीत हुआ। उस संध्याकाल के सूर्यास्त की शोभा और उस शांत समुद्र के आश्वासनपूर्ण व्यवहार के कारण उन तीनों को विपुल उल्लास प्रतीत होने लगा। उल्लास-आवेग में किशन ने एक नाविकों का गाना गाना आरम्भ किया, तथा मध्य-मध्य मालती की ओर देखते हुए विनोद-भरी हँसी हँसने

लगा।

उसके बड़े भैया ने भी उसके सुर में अपना सुर मिला दिया और ताल की गति पर चप्पू चलाने लगा, तथा स्वयमपि ज़ोर-जोर से गाने लगा :

वायु रे, पवन रे,
बढ़ाये जा तरी को इस,
नाविक रे,
चलाए जा सवेग चप्पुओं को तू।
करती स्मरण आज स्वजनों के स्नेह को,
साँवली सलोनी बाला चली मातृगेह को ;
साँवली सलोनी बाला चली मातृगेह को।

एक चरण एक बोलता तो दूसरा चरण दूसरा। इस प्रकार गाते चले उस गाने को सुनते-सुनते और उस नाव के झूलते हुए पलंग पर किशन की गोद को सिरहाना बनाए मालती कब सो गई, यह उसे भी नहीं मालूम हो सका।

हवा फिर अनुकूल दिशा में वह उठी। पाल भर गई, चप्पू का चलाना मन्द पड़ गया। मध्यरात्रि का समय, आकाश में चन्द्रमा—इतने ही में नाव से कुछ दूर के अन्तर पर खलबलाहट की बड़ी भारी आवाज़ हुई और एक ऊँचा सा पानी का भारी-भरकम खंभा ऊपर को उठ आया ! ···

बड़े भैया ने ठीक से निहारकर देखा, तो एक प्रचंड मत्स्य आध से अधिक ऊपर उठ आया हो, ऐसा चमकने लगा। समुद्र में अनेक बार अनुभव प्राप्त किये हुए दोलकाष्ठ ने तत्काल पहचान लिया कि यह मत्स्य एक महाभयानक जाति का मत्स्य है। तत्काल उसने बन्दूक उठाई। त्योंही पुनः पानी के बीच खलबलाहट की आवाज़ हुई और यह मत्स्य पानी में डुबकी मारकर विलुप्त हो गया। एक बड़ी विपत्ति टल गई, ऐसा सोच दोलकाष्ठ तथा किशन ने निश्चिन्तता की साँस ली।

उस भीषण मत्स्य के ऊपर से उसी प्रकार की मछलियों की बातों का प्रसंग छिड़ा। दोलकाष्ठ सुनाने लगा, 'समुद्र-यात्री लोग बताते हैं कि कभी-कभी ऐसे मच्छों से पाला पड़ता है जिनकी पूंछ में बिजली भरी रहती है, और उसके प्रहार से वे बोट की बोट को उलटा डालते हैं। छोटी-मोटी पवनवाह नौकाओं का तो अनेक मत्स्य वक्रमार्गों से होकर पीछा करते हैं, जिनमें कितने ही मत्स्य नरभक्षक जाति के भी होते हैं।'

किशन के शरीर पर रोंगटे खड़े हो गए : 'नरभक्षक ! तू सच कहता है ?'

पर किशन के इस प्रश्न का उत्तर देने की दोलकाष्ठ को आवश्यकता ही नहीं हुई—

कारण, किशन वह पूछ रहा था उतने में उस छोटी-सी नाव के एक पार्श्व को एक करारी चपत लगी और जिस तरह कोई कटोरी उलट जाए, उस तरह वह नाव एक ही झटके से सुलटी से उलटी हो गई !!

नाव के उलटते समय उस चपेट के साथ किशन दूर फेंक दिया गया। उस राक्षसी मत्स्य ने उस पर झपट्टा मारा और उसे समुद्र के अन्दर खींच ले गया।

इधर दोलकाष्ठ ने अपने पर उलटी हुई उस नाव से बाहर निकलने का प्रयत्न किया। पर उतने में वह भी समाप्त हो गया। नाक पर, मुँह पर लहरों के थप्पड़ पड़ने लगे, दम घुट गया, देखते-देखते दोलकाष्ठ समुद्र के उदर में समा गया ! ···

और मालती ? वह डूब गई है, यह तक उसे विदित नहीं हो पाया ! वह गाढ़ निद्रा में थी। उसे उस आन्दोल्यमान तरी के कारण सुख-स्वप्न आ रहे थे, कि वह अपने बचपन के उसी झूले पर बैठी हुई है, उसकी माँ उसके लिए स्नेह-भरे गाने गा रही है, झूले के ऊँचे-ऊँचे जाकर नीचे की ओर आने की अनुभूति उसे अत्यधिक मधुर प्रतीत हो रही है !

उस मधुस्वप्न में, वह जिस तरह सोई हुई थी, वैसी की वैसी ही नाव के उलटने पर, समुद्र की ऊर्मियों के झूले पर सुला दी गई ! वह सुखस्वप्न ही उसकी अन्तिम जाग थी। अपने विचार से वह तो घर पर जाकर अपनी माँ से मिली ! उसके लिए तो उसकी अनुभूति की वह अन्तिम रेखा सुखान्त रही !!

ग्रन्थ-सार

वास्तविक अधिक और काल्पनिक कम, इस उपन्यास में स्वातन्त्र्य वीर सावरकर ने अपनी शक्तिशाली चतुरंगिणी लेखनी से जिस बात को पाठकों के हृदय के अन्तरतम में बिठाने का प्रयत्न किया है उसे यदि एक पंक्ति में लिखा जाय तो वह पंक्ति यह होगी—

"हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति और हिन्दू राष्ट्र की विजयपताका सदा फहराती रहे। प्रत्येक भारतीय में मनुष्यत्व की भावना का चरम विकास हो।" प्रत्येक दृष्टि से हिन्दू शब्द भारतीय एवं हिन्दुस्तानी का पर्यायवाची है यह भी सर्वसिद्ध तथ्य है।

"सन् सत्तावन के विद्रोही अप्पा जी के मुख से, मृत्यु से कुछ दिन पूर्व कण्टक को दिया गया तत्वज्ञान श्री सावरकर के सम्पूर्ण क्रान्तिकारी, कर्मठ और संघर्षरत जीवन का तत्त्वसार है। यह भगवान श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को और भीष्म पितामह द्वारा युधिष्ठिर को दिये गए तत्त्वज्ञान के समान ही महान् है।

उनका यह कथन राष्ट्र का ध्येय वाक्य बन सकता है :

'यदि आपमें परोपकार की, राष्ट्रीय सेवा की भूख है, तो आप कभी भूखे नहीं रहेंगे। पतितों के उद्धार का, उन्हें सुधारने का कार्य राष्ट्रीय और धार्मिक सेवा का ही महत्वपूर्ण अंग है। यदि परोपकार या किसी भी राष्ट्रीय एवं उदार कर्तव्य-कर्म को अपने जीवन का लक्ष्य बनाना चाहते हों तो यह आपके अपने मनुष्यत्व का विकास होगा।

आजन्म कारावास की जब्ती के बाद रत्नागिरि की नज़रबन्दी के

दिनों में उपन्यास का रूप देकर वीरजी ने इसे लिखा था। १८३० में अन्दमान के सैनिक महत्व को बड़ी निकटता से देख लिया था। उन्होंने इसे पूर्वी समुद्र को जागरुक प्रहरी की संज्ञा दी थी, किसको पता था? पन्द्रह वर्ष बाद ही भारत की स्वाधीनता के लिए उसका एक यशस्वी पुत्र नेता जी सुभाष—आज़ाद हिन्द सेना नाम से वहाँ आक्रमण करके भारत की आज़ादी के प्रवेशद्वार का काम लेगा।

अन्दमान उनके लिए हिन्दू राष्ट्र की सीमाओं में सम्मिलित एक नया राष्ट्रीय जनपद है, जिसकी भूमिका स्वयं प्रकृति ने १८५७ के सेनानियों—आजन्म बन्दियों के निमित्त तैयार की है—अंग्रेजी शासकों ने इसको रहस्य बनाये रखा वरना वास्तविकता यह है कि उन्हीं के लिए इस काला पानी जेल का निर्माण किया गया और जो कैदी वहाँ गये उनमें से कोई लौटकर वापस नहीं आया या वहाँ बस गये। इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि उन देशभक्त सैनिकों ने अपने रक्त से अपने देह की राख की खाद से इस द्वीप का निर्माण किया है। अन्दमान द्वीप की जेल एवं वहाँ के प्रवासी बंदियों एवं बनवासी लोगों ने सावरकर की दृष्टि में एक उन्नत भावी हिन्दू समाज के निर्माण की पृष्ठभूमि तैयार की है। दुर्दैव से हिन्दू समाज में व्याप्त भ्रान्त धारणाओं एवं रूढ़ियों का निषेध किया है एवं उसे क्रियात्मक रूप देकर सिद्ध कर दिया है कि स्पर्श बन्दी—रोटी—बेटी बन्दी के बन्धनों से वैदिक सनातन समाज की बड़ी हानि हुई है। वह धर्म नहीं अधर्म होता है जिससे समाज की प्रगति अवरुद्ध हो।

अन्दमान में न जाति-भेद है न प्रान्त-भेद, न भाषा-भेद एवं न अन्य अलगाव हैं। वे सब एक हिन्दू समाज के अंग एवं हिन्दी भाषी बनकर हमें सबक सिखला रहे हैं कि 'हम केवल हिन्दुस्तानी अर्थात् हिन्दू हैं'। मानो अन्दमान भावात्मक राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है—वीर जी एक राष्ट्रकवि के रूप में मानो अवतरित हुए जो 'कालिदास' के मेघदूत की तरह देश की एकता एवं अखण्डता की कल्पना अपनी ओजस्वी लेखनी में करते आये हैं।

अन्दमान द्वीप एवं सैल्यूलर जेल के कई पक्ष हैं। पहला पक्ष स्वयं उसका निर्माण करने वाला शासक एवं उसके द्वारा निर्मित कठोर जेल

नियम एवं यातनाएँ। दूसरा पक्ष है बन्दी—जिसमें उमर कैद भुगतने वाले देशभक्त क्रान्तिकारी, नये पुराने एवं उसी के बाद नैतिक अपराध वाले बन्दी। तीसरा पक्ष है उस द्वीप के कतिपय आदिवासी (बनवासी) किन्तु एक देशभक्त द्वारा लिखित उपन्यास में क्रान्तिकारी बन्दियों का उल्लेख बहुत कम यानी नाममात्र है। वह अपनी अन्य रचनाओं में वीर जी ने दिया है। उनका मत है कि यह समाज स्वयं पढ़ा-लिखा है, प्रत्येक क्रान्तिकारी अपना आत्म-चरित्र लिखने की योग्यता रखता है। किन्तु अपराधी बन्दी प्रायः सभी अनपढ़ हैं एवं दूसरा यहाँ के वनों में बसे लोग बनवासी तथा यह उपेक्षित समाज क्या उपेक्षित ही रह जायेगा? इसी कारण उन्होंने इन पक्षों को लिया है।

उनको एक हिन्दू बन्दी ने बतलाया कि यहाँ का अंग्रेज़ शासक मुसलमान बन्दियों को शह देकर सीधे-सादे हिन्दू बन्दियों का धर्म-परिवर्तन कराते हैं एवं जेल में कई ऐसी बातों को लेकर हिन्दू-मुस्लिम दंगे भी हुए हैं, तो उनका माथा ठनका और कई राजनीतिक देशभक्त बन्दियों ने जेलर 'बेरी' से इसकी शिकायत भी की कि अंग्रेज़ अपने शासन को निष्पक्ष न्यायप्रिय कहता है किन्तु नैतिक अपराधियों के एक गुट को रहस्यपूर्ण ढंग से प्रोत्साहित करना कहाँ तक उचित है। इस प्रश्न को लेकर भारत एवं इंग्लैण्ड तक के लोगों को जानकारी देंगे—कि जेल के अन्दर सरकार जेल नियमों का स्वयं उल्लंघन करती है। यद्यपि यह इस उपन्यास से नहीं लिया गया किन्तु मुसलमान अपराधी बन्दी क्या गुल खिलाते हैं इसकी चर्चा इस उपन्यास में विशद् रूप में दी गई है। इस प्रकार के वाद-विवाद भी जेल-रेकार्ड में हैं। किन्तु सभी तरह का रेकार्ड अन्दमान पर आज़ाद हिन्द सेना का कब्ज़ा होने से पूर्व ही अंग्रेज़ी सत्ता ने नष्ट कर दिया था—आज इस तथ्य को सभी जानते हैं। यह तथ्य यद्यपि साधारण लगते हैं। किन्तु कई राजनैतिक बातें रेकार्ड एवं संस्मरण कितने महत्त्व के सिद्ध हो सकते थे।

अन्दमान द्वीप समूह के बारे में हिन्दू और मुस्लिम बन्दियों में गपशप-वार्तालाप में औलिया की कहानी—तब प्रत्युत्तर में अगस्त्य ऋषि की बात

पर झंझट खड़ा होना यथातथ्य है।

भारत के इस पूर्वी समुद्र (गंगा सागर) में अन्दमान आदि द्वीपों को वशवर्ती करने के प्रमाण के रूप में बहुत अधिक सामग्री लिखित रूप में नहीं मिलती यद्यपि भारत के निकट होने से यह द्वीप समूह भारत के माने जाने लगे, वरन ऐसी दन्तकथाओं का आधार भी रहे हैं, किन्तु सावरकर ने एक ठोस प्रमाण का सहारा लिया है जो एक पत्रक में है, एक भारतीय राजा 'पाण्ड्य' का प्रशस्ति पत्र है। अर्थात् अपने अधीन क्षेत्रों के बड़े राजा अपने निकटतम एवं अधीन क्षेत्रों के उप-शासकों को देते थे।

वीरजी स्वयं क्रान्तिकारी ही नहीं—क्रान्तिकारी ओजस्वी लेखक भी है—उनकी रचनाओं एवं क्रियाकलापों का एक आधार-विन्दु है 'अन्याय का प्रतिकार' चाहे वह किसी की राजनैतिक पराधीनता हो या सामाजिक भेद-भाव, धार्मिक अलगाववादी नीति या आर्थिक शोषण, वे हरक्षण न्याय के पक्षधर हैं, एक विद्रोही का अन्याय को समाप्त करना उनकी विचार-धारा का सार-सूत्र है जिसे वे मानव-जीवन की सार्थकता मानते हैं। किन्तु यह प्रतिकार किसी उपाय से—हिंसा अथवा अहिंसा द्वारा हो—वे अपनी खाल बचाने के लिए अहिंसा की पलायनवादी नीति का सहारा नहीं लेते। वीर जी का मत है अन्याय को सहन करना महापाप है, दुराचारी शोषक एवं क्रूर शासक से उसी प्रकार निपटो जैसे गीता में योगिराज श्रीकृष्ण कहते हैं 'वरना वह अन्यायी तात्कालिक रूप से क्षमा-दया की शरण पाकर पुनः दूसरे को डस लेगा।' अहिंसा एवं हिंसा परस्पर निर्भर बातें हैं (relevant)। हिंसा एवं अहिंसा समाज के हित में परिस्थिति-सापेक्ष हैं। व्यक्तिगत जीवन में जैसे कोई हिंसा करता है तो राजदण्ड से उसे दण्ड मिलता है किन्तु वही व्यक्ति यदि सेना में शूरवीरता से शत्रु के सैनिक मारता है तो उसे सभ्य मानव समाज पुरस्कृत करता है। अतः अन्याय का प्रतिकार मात्र शब्दों से नहीं, पराक्रम से होता है। शूरवीर, क्षत्री एवं क्रांतिकारी पहले अपने प्राण हथेली पर रखता है तब अन्याय का प्रतिकार करके, न्याय की स्थापना करके विजयश्री का वरण करता है। इसी उपन्यास के एक पात्र कण्टक के यह कहने पर—भगवान

न्यायकारी है, अन्तिम विजय न्याय की होगी ! अप्पाजी भड़क जाते हैं, सावरकर ने सत्तावन के स्वाधीनता सेनानी के मुख से कहलवाया है ! न्याय-अन्याय का जय-पराजय से कोई सम्बन्ध नहीं । कंटक तुझे यह बात जल्दी समझ लेनी चाहिए कि जय-पराजय का सम्बन्ध तेरे पराक्रम से है । शान्ति एवं न्याय की स्थापना होना उसका मनोरथ एवं उपलब्धि है । यदि न्याय स्वतः कोई ईश्वरीय चमत्कार होता तो वर्षों तक विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा निर्दोष भारतवासियों की विडम्बना न होती, सावरकर हर स्थान पर एक नीतिकार के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं । किन्तु उसका जीवन एवं लेखनी जो कुछ है, वे राष्ट्र-मूलक हैं । किसी राष्ट्रीय इकाई को समूचे मानव-समाज से अलग नहीं किया जा सकता । किसी स्थान पर यदि मानव समाज की इकाई से किसी प्रकार का अन्याय होता है, तो वह मानवता के विरुद्ध है । इसलिए न्याय एवं अन्याय के लिए दो मापदण्ड रखने वाले स्वयं न्याय, सत्य एवं शान्ति से बलात्कार करते हैं, न्यायप्रिय लोगों का मापदण्ड एक होना ही वांछनीय है । ऐसी कितनी सिद्धान्तमूलक बातों के अलावा साम्राज्यवादी षड्यंत्र और रोचक प्रसंग इस रचना में पाठकों को मिलेंगे ।

□

काला पानी (उपन्यास)
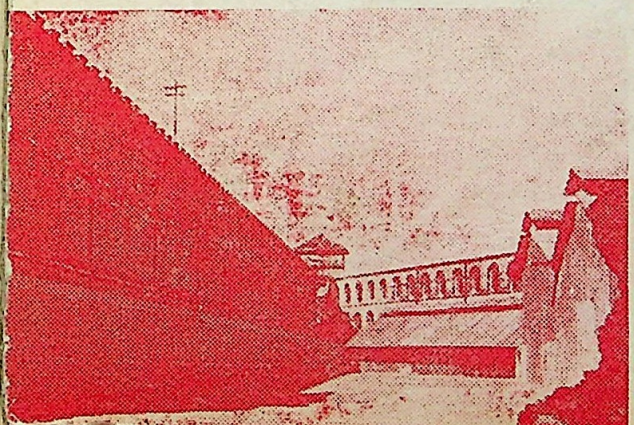
ान में आजीवन, कारावासी क्रान्ति-
यों के बन्दी जीवन की घटनाओं के
पहलुओं का चित्रण—उपन्यास के
में—एक आजन्म कारावासी द्वारा
त—रोचक शैली में।